विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु
बिक्रम थापा

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date..............

हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग - 793022
मेघालय

2009

Thesis

[illegible] LIBRARY
Acc No. 103957
Acc By ...
Date 11-5-10
...ing by
Entered by
Transcribed by

विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ. दिनेश कुमार चौबे
उपाचार्य
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

अनुसंधित्सु
बिक्रम थापा

हिन्दी विभाग

द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी के लिए अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रस्तुत ।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

घोषणा

मैं बिक्रम थापा एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस शोध प्रबन्ध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है । इस शोध सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह शोध-प्रबन्ध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/ संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

अध्यक्ष | निर्देशक | अनुसंधित्सु

शोध-संक्षिप्तिका

प्रस्तुत शोध-प्रबंध विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन सात अध्यायों में विभक्त है, जिसके माध्यम से विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं के विविध पक्षों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों की कृतियों का मूल्यांकन न करके उनकी विचारधाराओं पर विवेचन करने का कारण है विषय की मौलिकता, अध्ययन की नवीनता और प्राथमिकता ताकि राष्ट्र की भावात्मक और सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भाविक और वैचारिक समानता और पुनरावृत्ति से बचकर विषय के साथ न्याय किया जा सके । अतः विभिन्न अध्यायों में दोनों भक्त कवियों की दार्शनिक, भक्ति, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक, राजनैतिक तथा काव्य विषयक विचारधाराओं पर विवेचन किया गया है ।

दोनों हिन्दी भक्ति काव्य के महान कवि हैं । अंतर इतना है कि विष्णुदास मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के आरंभिक दौर के कवि है । इसके विपरीत तुलसीदास उत्तरमध्यकालीन भक्ति आंदोलन के चरमोत्कर्ष समय में हुए । दोनों वैष्णव भक्त, विचारक और कवि थे । उनकी वैचारिक प्रतिभा ने तत्कालीन समाज को नई चेतना दी, साथ ही असंख्य भारतवासियों को भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का संदेश भी दिया । आदर्श समाज की परिकल्पना को चरितार्थ किया । लोगों में अपनी संस्कृति एवं भाषा के प्रति जागरूकता फैलायी ।

शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय का शीर्षक है विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास का सामान्य परिचय, जिसमें दोनों कवियों के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्वों पर विचार किया गया है । वहीं उनकी कृतियों के प्रेरक और प्रभावक तत्त्वों को भी स्पष्ट किया है। व्यक्तित्व के विचार से अध्ययनीय कवियों में साम्य और वैषम्य दोनों ही मिलते हैं । दोनों अतीव लोकप्रिय कवि थे । दोनों कथावाचक, अतः व्यास थे । सगुण वैष्णव भक्ति का

प्रतिपादन दोनों का लक्ष्य था। दोनों जनभाषा के कवि थे । सम्प्रदाय सहिष्णु दोनों थे । श्रुतिपथ की अवहेलना के दोनों विरोधी थे । संत-समागम और इष्टदेव का कीर्तन दोनों करते थे, एवं इस पर दोनो ने अधिक बल दिया है । विष्णुदास की कृतियाँ राम और कृष्ण परम्परा की प्रायः पहली मौलिक हिन्दी रचनाएँ हैं । 'रामायन कथा' और 'महाभारत' अपने विषय की हिन्दी में पहली पूर्ण और ऐतिहासिक महत्त्व की रचनाएँ हैं । तुलसीदास का 'रामचरितमानस' हिन्दी की ही नहीं, समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की रामायणों की मुकुटमणि है । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' और 'महाभारत' की रचना 'धर्महित' को ध्यान में रखकर की है और तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की 'सुरसरि सम सब कर हित होई' को ध्यान में रखकर। अतः दोनों का लक्ष्य लोकहित और लोकरक्षण था ।

विष्णुदास को भौतिक सुख-सुविधा तुलसीदास से अधिक प्राप्त थी । आत्मगोपन दोनों की विशेषता है, पर तुलसीदास की अपेक्षा विष्णुदास में आत्मकथात्मक उक्तियाँ अधिक मिलती हैं । विष्णुदास के पिता व्यास थे । कथावाचन की परम्परा उन्हें पिता से मिली थी। तुलसीदास ने कथावाचन की कला संभवतः गुरू से सीखी होगी । विष्णुदास राजाश्रित कवि थे, पर तुलसीदास पूर्णतः धर्माश्रित ।

कृतित्व की दृष्टि से दोनों ने राम-कृष्ण विषयक प्रचुर काव्य रचना की है । दोनों की कई कृतियाँ सर्वथा प्रामाणिक हैं । विष्णुदास की अद्यावधि केवल तीन कृतियाँ पूरी तरह एवं शेष के अंश रूप ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं । पुनः वे सर्वसुलभ भी नहीं हैं । तुलसीदास की कृतियों के लिए सत्य इससे भिन्न है । उनकी प्रामाणिक मानी जाने वाली सभी कृतियाँ प्रकाशित और सर्वत्र सुलभ हैं । विष्णुदास की अधिकांश कृति कृष्ण-अवतार विषयक हैं । केवल 'रामायन कथा' ही राम विषयक है । उसके विपरीत तुलसीदास की केवल एक कृति 'कृष्ण गीतावली' कृष्ण विषयक है और शेष सभी राम विषयक । दोनों की कृतियों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि उनमें कालगत अन्तर

होने के बावजूद परिवेशगत बहुत भिन्नता नहीं थी । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि दृष्टियों से अकबर पूर्व शासन में जैसा अंतर है, वैसा ही अंतर आलोच्य कवियों के परिवेश में भी मानना अनुचित नहीं होगा । पुनः विष्णुदास चूँकि हिन्दू शासक के अधीन थे, इसलिए भी वे दिल्ली सुलतानों के फौजी शासन से प्रभावित नहीं हुए थे । महाराज डूँगरेन्द्र सिंह का जो औदार्य उन्हें राजाश्रित कवि होने के कारण प्राप्त हुआ था, बहुत कुछ वैसा ही उदार और सहिष्णु वातावरण तुलसीदास को भी अकबर कालीन भारत में प्राप्त हुआ था । हिन्दी की साहित्यिक परम्परा तुलसीदास को विष्णुदास से अधिक मिली थी । 'रामचरितमानस' की प्रौढ़ता का एक कारण यह भी माना जायेगा । यों युगीन परिस्थितियों और गतिविधियों ने दोनों के कृतित्वों को समान रूप में दिशा दी है, पर सांस्कृतिक पीठिका और साहित्यिक परम्परा का लाभ दोनों ने सर्वथा निजी और वैयक्तिक रूचि से ही लिया है।

द्वितीय अध्याय कवि द्वय की दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, माया एवं मोक्षादि विषयक विचारधाराओं पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन हुआ है । विष्णुदास और तुलसीदास की दार्शनिक विचारधाराओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनमें वैषम्य नहीं के बराबर है । दोनों ही अद्वैत दर्शन के अनुयायी हैं । उनके काव्यों में अद्वैतवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप मिलता है । दोनों को दार्शनिक स्तर पर ब्रह्म के दो रूप मान्य हैं । पहला, शुद्ध परब्रह्म रूप जो निर्गुण, निराकार है । दूसरा है अवतार रूप जो सगुण-साकार है और मानवीय गुणों से युक्त होकर लीला में प्रवृत्त होता है । सिद्धान्ततः निर्गुण और सगुण में भेद नहीं मानने पर भी दोनों को सगुण लीलामय रूप ही अधिक मान्य है । दोनों के आराध्य सगुण ब्रह्म ही हैं। दोनों कवियों ने जीव को ब्रह्म का चिदंश स्वीकारा है, जो माया के अधीन होने के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है । दोनों की दृष्टि में जगत् और संसार एक नहीं है । जगत्

सत्य है, संसार मिथ्या, यह दोनों को स्वीकार्य है । तुलसीदास ने जगत् के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से चर्चा की है । दोनों के मतानुसार माया ईश्वर की दासी है । माया के दो रूप हैं -- विद्या और अविद्या । माया के अविद्या रूप से मुक्त होना मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है । दोनों ने मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया । भक्तों को मुक्ति की अपेक्षा भक्ति ही प्रिय है । नाम नहीं लेते हुए भी दोनों ने राम द्वारा विभिन्न पात्रों को विभिन्न प्रकार की मुक्तियाँ देने के कथन किये हैं ।

तृतीय अध्याय उभय कवि की भक्ति विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है । इसमें संक्षेप में भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए कवि द्वय की भक्ति विषयक मान्यताओं को तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययनीय बनाया गया है । विष्णुदास और तुलसीदास ने ईश्वर प्राप्ति के सभी साधनों में भक्ति मार्ग को अतीव महत्त्व दिया है । विष्णुदास की रचनाओं में भक्ति विषयक विचार भी तुलसीदास की तुलना में बहुत कम मिलते हैं । विष्णुदास के लिए भक्ति परम्परा का पालन अधिक है, पर तुलसीदास के लिए भक्ति ही सब कुछ है । दोनों ही भगवान के ऐश्वर्य रूप से प्रभावित हैं, पर तुलसीदास की कृतियों में इसका अंकन अपेक्षया अधिक हुआ है ।

विष्णुदास और तुलसीदास ने आराध्य के रूप में राम और कृष्ण को प्रायः समान महत्त्व दिया है । किन्तु विष्णुदास का झुकाव जहाँ कृष्ण की ओर अधिक प्रतीत होता है, तुलसीदास का झुकाव राम के प्रति । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' में जहाँ राम को आराध्य देव के रूप में स्वीकारा है, वहीं 'सनेहलीला', 'विष्णुपदी' एवं 'स्वर्गारोहण' और 'महाभारत' में राम की अपेक्षा कृष्ण को अधिक महत्त्व दिया है । तुलसीदास ने एकमात्र रचना 'श्रीकृष्णगीतावली' में कृष्ण को अपने आराध्यदेव राम के समान ही महत्त्व दिया है । शेष सभी रचनाओं में राम ही आराध्यदेव रूप में स्वीकृत एवं वर्णित हैं । भक्ति और उसके विभिन्न भेद दोनों को मान्य है । तुलसीदास ने भक्तों की कोटियों का उल्लेख

किया है एवं आदर्श भक्ति भाव के वर्णन द्वारा उन्होंने भक्त के सम्बन्ध में भी बातें व्यक्त कर दी है । स्वरूप सेवा दोनों को मान्य है । तुलसीदास निर्गुणोपासना और सगुणोपासना को समान महत्त्व देने के बावजूद सगुण के ही अधिक विश्वासी हैं । विष्णुदास ने निर्गुणोपासना का उल्लेख प्रायः किया ही नहीं है । दोनों भक्ति का लक्ष्य भगवान की शरणागत प्राप्ति करना मानते हैं । भक्ति के मूल आदर्श और लक्ष्य में दोनों में किसी प्रकार का वैषम्य नहीं हैं । भगवान और भक्त के मध्य स्वामी-सेवक सम्बन्ध ही दोनों को मान्य है। दोनों दास्य भाव की भक्ति के हिमायती हैं ।

चतुर्थ अध्याय दोनों कवियों की धार्मिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। जिसके अन्तर्गत धर्म के स्वरूप का संक्षिप्त उल्लेख करने के पश्चात् कवि द्वय की धार्मिक विचारधाराओं पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । विष्णुदास और तुलसीदास के समय परम्परागत धार्मिक मान्यताओं का ह्रास हो गया था । तद्युगीन हिन्दू जाति एक प्रकार से सांस्कृतिक अपसारण का शिकार बनी हुई थी । धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के आडम्बर, वामाचारिता, तांत्रिकता, साम्प्रदायिकता, कटुता, भूत-प्रेतादि की पूजा के चलन थे । दोनों ने धार्मिक बाह्याडम्बर और आचारभ्रष्टता पर करारा चोट किया। ह्रासोन्मुखी धार्मिक चेतना को पुनः व्यवस्थित कर सही दिशा देने की कोशिश दोनों ने की है । विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास के प्रयत्न इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । तद्युगीन समाज में व्याप्त विभिन्न पंथ-उपपंथ, पूजा-उपासना, बाह्याडम्बर, कोरे शास्त्रज्ञान की निरर्थकता, जन्म के आधार पर श्रेष्ठता आदि को त्यागने एवं कर्तव्यनिष्ठा, आत्मा-परमात्मा की एकता, योगमार्ग की प्रासंगिकता आदि की बातें कहीं। धार्मिक चेतना के विकास परिष्कार के लिए गुरू-कृपा, संत से प्रेम, सत्संगति, नाम स्मरण आदि को दोनों ने महत्त्वपूर्ण माना । आचरण की पवित्रता पर समान रूप में दोनों ने बल दिया । दोनों ने 'श्रुतिसम्मत हरि भक्ति पथ' के लिए नैतिक आधार को सर्वाधिक महत्त्व दिया है, जो उनके

धार्मिक विचारधाराओं का मूलादर्श है । दोनों पांथिकता के पक्ष में नहीं थे । उनके विचारों में किसी पंथ विशेष की झलक दिखाई नहीं पड़ती है । विष्णुदास ने राम और कृष्ण दोनों की भक्ति के गीत गाये हैं, पर तुलसीदास की तुलना में वे संख्या और महत्त्व की दृष्टि से कम हैं । विष्णुदास को कभी किसी भी वैष्णव पंथ से जोड़ा नहीं गया, न उन्होंने इस बारे में किसी प्रकार का संकेत ही किया है । उन्होंने 'रामायन कथा' में जिस राम को जनता का ईश्वर बनाया, बाद में तुलसीदास ने उन्हें 'रामचरितमानस' के माध्यम से घर-घर तक पहुँचाया । तुलसीदास को न तो रामानंदी, न वैरागी अथवा किसी अन्य वैष्णव पंथ का अनुगामी माना जाता है ; तब भी उनका 'रामचरितमानस' सभी वैष्णव पंथों में समान भाव से पढ़ा जाता है । उसे सर्वत्र समान आदरभाव से देखा जाता है । वस्तुतः धार्मिक विचारों की दृष्टि से विष्णुदास और तुलसीदास में मूलतः समानता होते हुए भी तुलसीदास की विशिष्टता इसमें निहित है कि उन्होंने प्रत्येक बिन्दु पर अधिक विस्तार से विचार किया है। दोनो के आदर्श प्रायः एक समान ही हैं । दोनों की सार्थकता यह भी है कि उनके व्यक्तित्व किसी प्रदेश से मुद्रांकित नहीं है । दोनों के भक्तिमूलक सौहार्द्र रूप ने भारत में राष्ट्रीय जागरण एवं मानव एकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान किया । राष्ट्रीय एकता और आवश्यकता दोनों उनकी भक्त दृष्टि के पूरक हैं ।

पंचम अध्याय कवि द्वय की सामाजिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत समाज के स्वरूप की संक्षिप्त चर्चा करते हुए दोनों कवियों की समाज विषयक विचारधारा अध्ययनीय बनी है । इसी के अन्तर्गत परिवार विषयक विचार भी किये गये हैं । विष्णुदास और तुलसीदास की सामाजिक विचारधाराओं पर युगीन परिस्थितियों से अधिक धार्मिक और पारम्परीण पुराण कथाओं का प्रभाव है । उनकी रचनाओं में सामाजिक मान्यताएँ दो रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं -- यथार्थ रूप में और आदर्श रूप में । यथार्थ रूप में दोनों ह्रासोन्मुखी सामाजिक व्यवस्था का अंकन करते हैं, जिसे वे कलियुग के प्रभाव के

रूप में देखते हैं । वर्ण और आश्रम पर आधारित प्राचीन सामाजिक व्यवस्था सब प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है । दोनों कवि रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति भी समान रूप में चिन्तित दिखायी पड़ते हैं । धार्मिक और नैतिक दृष्टि से खोखले बने पतनोन्मुखी समाज को धर्मप्राण, निष्ठावान और सब प्रकार से उन्नत बनाने के लिए दोनों ने प्रायः समान प्रकार के उपाय सुझाये । दोनों की चेष्टा आदर्श समाज की स्थापना करना है। दोनों ने आदर्श समाज के लिए जनता की आर्थिक समृद्धि पर आवश्यक बल दिया है। दोनों ने वैयक्तिक स्तर पर आय-व्यय के समुचित समायोजन अर्थात् आय के अनुरूप ही व्यय के सिद्धान्त को स्वीकार किया है । विष्णुदास और तुलसीदास सही अर्थो में न तो सामाजिक चिंतक थे और न अर्थशास्त्री । अतः उनकी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक दृष्टि भक्त कवि के दृष्टिकोण के अनुरूप है । इसके बावजूद यह मानना पड़ता है कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास की सामाजिक आर्थिक विचारधारा अधिक व्यावहारिक है । आदर्श मानव और आदर्श समाज की कल्पना दोनों ने की एवं इस निमित्त दोनों ने अपने-अपने समयों की त्रासदी को दरकिनार करते हुए नवीन आदर्श और पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया । समन्वयी मार्ग द्वारा उन परम्परागत विचारों, मान्यताओं, सिद्धान्तों को संशोधित करने पर बल दिया । भक्ति मार्ग के रूप में समता-स्थापित करने का राजमार्ग दोनों ने स्वीकार किया । समाज में जो कतिपय कुरीतियाँ, भ्रान्तियाँ, आत्मविस्मृतियाँ आदि घर कर गयी थीं, उन्हें भक्ति-पथ से दूर करने के प्रयत्न तो दोनों ने किये ही, समाज को बाहरी और असंस्कृत आक्रमणों से छुटकारा दिलाने के प्रयत्न भी किये ।

षष्ठ अध्याय आलोच्य कवियों की राजनैतिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है । इसके अन्तर्गत कवि द्वय की राजनीति सम्बन्धी विचारधाराओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है । विष्णुदास और तुलसीदास भक्त कवि थे, राजनैतिक

विचारक नहीं । विष्णुदास राजाश्रित कवि होने के बावजूद राजनीति से बहुत परिचित नहीं लगते । भक्त कवि होने के बावजूद तुलसीदास को राजनीति की समझ विष्णुदास से ज्यादा थी । तत्कालीन राजनीति को उन्होंने निकट से देखा-समझा और भोगा भी था । विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूँगरेन्द्र सिंह की राजनीति से परिचित थे और तुलसीदास तत्कालीन मुगल राजनीति के भोक्ता थे । उनकी खूबियों और खामियों को उन्होंने गंभीरता से परखा था । उन्होंने तद्युगीन कलयुगी राजनीति और शासन नीति को पुराण वर्णित कलियुग की स्थिति के अनुरूप ही समझा । रावण और दुर्योधन की शासन नीतियों का प्रक्षेपण कर तद्युगीन स्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया है । दोनों ने उस कलयुगी शासन नीति को समाप्त कर आदर्श और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने के प्रयत्न किये थे । उन्होंने प्रजारक्षक और प्रजारंजक राजनीति को आदर्श राजनीति माना । दोनों की दृष्टि में योग्य राजा साक्षात् ईश्वर अथवा ईश्वर का प्रतिनिधि परम वैष्णव ही हो सकता है । दोनों ने राम की शासन नीति को आदर्श नीति, उनके राज्य (रामराज्य) को आदर्श राज्य और सर्वोपरि आदर्श राजा राम को स्वीकारा है । दोनों की दृष्टि में रामराज्य ही जनकल्याणकारी राज्य है ।

सप्तम अध्याय कवि द्वय की काव्य विषयक विचारधाराओं से सम्बन्धित है । इसके अन्तर्गत उभय कवियों की काव्य विषयक मान्यताएँ तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययनीय बनी हैं । विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में व्यक्त काव्य सम्बन्धी विचार परम्परागत काव्य सिद्धांतों को भक्तिकाव्य बनाने की संभावना में निहित हैं । दोनों रसवादी कवि हैं । वे शुद्ध काव्य नहीं, भक्ति काव्य की रचना कर रहे थे । उनके काव्यों की प्रवृत्तियों पर विचार करने से विदित होता है कि उनके सम्पूर्ण काव्य मानवीय भावभूमि पर आधारित हैं। उनके काव्य हैं भक्तिकाव्य, इसके बावजूद सम्पूर्ण मानवता के उत्थान में लिखे गये हैं । कविता का केन्द्र बिन्दु भक्ति के माध्यम से मानव और मानवता को सही दिशा देना है ।

उनकी दृष्टि में काव्य का तात्पर्य ईश्वर के नाम, गुण, यश, चरित्र आदि का वर्णन या कीर्तन करना है । कवि का अर्थ उनके यहाँ ईश्वर का गुणगायक अर्थात् भक्त है । दोनों ने काव्य के प्रयोजन रूप में पुण्य की प्राप्ति, पाप का नाश, भक्ति में प्रवृत्ति मोक्ष लाभ आदि को स्वीकार किया है । काव्य-हेतु अथवा काव्य स्वरूप की प्रेरक शक्ति के रूप में दोनों कवियों को भगवत्कृपा, गुरुकृपा एवं भक्तिकाव्य और भक्तिशास्त्र आदि का अध्ययन मान्य है। काव्यरूपो के सम्बन्धों में उनमें विचारों का प्रायः अभाव है, पर उनके द्वारा प्रयुक्त काव्यरूप पारम्परीण काव्यरूपों से किंचित नवीन अवश्य हैं ।

माना जाता है कि काल की कठोर आवश्यकताएँ महापुरुषों, महात्माओं, महान कवियों को जन्म देती हैं । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों वैसे ही महापुरुष, महात्मा, वैष्णव भक्त और महान कवि थे । आज का भारतीय जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है उसमें भय, आतंक, त्रासदी, लुंठन, बैर-भाव, साम्प्रदायिकता आदि विद्रूपताओं का सामना करने वाला, एक ही देश का नागरिक होते हुए भी एक प्रदेश का व्यक्ति दूसरे प्रदेश के व्यक्ति के साथ नफरत करता हुआ दिखायी पड़ता है । इन सबके निषेध अथवा इनके परिष्करण में विष्णुदास और तुलसीदास के काव्य आज भी उतने ही प्रासंगिक बने हैं, जितने प्रासंगिक तब थे । सांसारिकता को नकारने के बावजूद दोनों ने सामाजिकता को पूरा महत्त्व दिया । प्रादेशिक संकीर्णता से उनके काव्य अछूत और पूरी तरह राष्ट्रीय हैं । वे आज भी सर्वभारतीयता के संदेशवाहक बने हैं । यह उनके काव्यों की विशेष प्रासंगिकता ही मानी जायेगी ।

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : बिक्रम थापा

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी), बी. एड.

विभाग : हिन्दी

शोध-प्रबंध का शीर्षक : विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि : 01.09.2003

शोध प्रस्ताव की संस्तुति :

(i) बी. पी. जी. एस : 08.10.2003

(ii) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि : 780 दिनांक : 16.10.2003

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

NEHU LIBRARY
Acc No. 103957
Acc By...
Date 11-5-10
Class by...
Sub.Heading by...
Enter by...
Transcribed by...

विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु
बिक्रम थापा

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date......

हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग - 793022
मेघालय

2009

Thesis

LIBRARY
Acc No. 103957
Acc By...
Date... 11-5-10
Cl...
Su...
Enter...
Transcri...

विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ. दिनेश कुमार चौबे
उपाचार्य
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

अनुसंधित्सु
बिक्रम थापा

हिन्दी विभाग

द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी के लिए अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रस्तुत ।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग

घोषणा

मैं बिक्रम थापा एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस शोध प्रबन्ध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है । इस शोध सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह शोध-प्रबन्ध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/ संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

28.4.09   28-4.09

अध्यक्ष   निर्देशक   अनुसंधित्सु

अध्यक्ष Head
हिन्दी विभाग
पू.प.वि.वि. शिलांग
N.E.H.U, Shillong

प्राक्कथन

विद्यार्थी जीवन में आरम्भ से स्नातकोत्तर अध्ययन क्रम में गोस्वामी तुलसीदास के काव्य को पढ़ता आ रहा हूँ, जिससे मेरे मन में उनके काव्य के प्रति एक विशेष लगाव-सा हो गया । उनके काव्य में व्यक्त विचारों को समझने की चेष्टा मैं शुरू से ही करता रहा। मैंने मन ही मन संकल्प किया था कि अगर विशेष अध्ययन का अवसर मिला तो गोस्वामी तुलसीदास के विचारों का अध्ययन मनन करुँगा । एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मैंने अपनी एतद्विषयक जिज्ञासा गुरूवर डॉ. दिनेश कुमार चौबे के समक्ष प्रकट की। उन्होंने मेरी रूचि को ध्यान में रखते हुए मुझे जहाँ कार्य के निमित्त उत्साहित किया, वहीं यह भी स्पष्ट किया कि गोस्वामी तुलसीदास के भक्त, कवि और विचारक आदि रूपों पर उपाधिपरक और गैरउपाधिपरक प्रणीत ग्रंथों की संख्या सैकड़ों हैं । कोई भी पक्ष अछूता नहीं है । अस्तु, किसी अन्य समान धर्मी भक्त कवि के विचारों के साथ तुलसीदास के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करना उचित रहेगा । अनुभवगरिष्ठ गुरूजी की बात मुझे भी जँची । मेरे समक्ष तुलसीदास के समान ही किसी वैसे भक्त कवि का नाम स्थिर करने में कठिनाई हो रही थी । इस समस्या का निदान भी किया गुरूवर डॉ. दिनेश कुमार चौबे जी ने ही । उन्होंने ही विष्णुदास का नाम सुझाया एवं मुझे गोस्वामी तुलसीदास और विष्णुदास के काव्यों का इस दृष्टि से आद्यन्त धैर्यपूर्वक गंभीरता से पढ़ने की सलाह दी । मैंने उनके आदेश को शिरोधार्य कर दोनों कवियों की रचनाएँ आद्यन्त पढ़ी एवं उनसे पुनः मिला । विचार-विमर्श के उपरान्त ही प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय **'विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन'** निर्धारित हुआ । इस प्रकार विषय-चयन हेतु गुरूवर ने राह ही नहीं दिखायी, वरन् शोध-विषय के निर्धारण की सभी बाधाएँ भी दूर कीं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में प्राक्कथन और उपसंहार के अतिरिक्त कुल सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्वों

पर विचार किया गया है । वहीं उनकी कृतियों के प्रेरक और प्रभावक तत्वों को भी स्पष्ट किया गया है ।

द्वितीय अध्याय कवि द्वय की दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, माया एवं मोक्षादि विषयक दार्शनिक विचारधाराओं पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन हुआ है ।

तृतीय अध्याय उभय कवियों की भक्ति विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है । इसमें संक्षेप में भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए कवि द्वय की भक्ति विषयक मान्यताओं को तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययनीय बनाया गया है ।

चतुर्थ अध्याय दोनों कवियों की धार्मिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। जिसके अन्तर्गत धर्म के स्वरूप का संक्षिप्त उल्लेख करने के पश्चात् कवि द्वय की धार्मिक विचारधाराओं पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय कवि द्वय की सामाजिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत समाज के स्वरूप की संक्षिप्त चर्चा करते हुए दोनों कवियों की समाज विषयक विचारधारा अध्ययनीय बनी है । इसी के अन्तर्गत परिवार विषयक विचार भी किए गये हैं ।

षष्ठ अध्याय आलोच्य कवियों की राजनैतिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत कवि द्वय की राजनीति सम्बन्धी विचारधाराओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है ।

सप्तम अध्याय कवि द्वय की काव्य विषयक विचारधाराओं से सम्बन्धित है । इसके अन्तर्गत उभय कवियों की काव्य विषयक मान्यताएँ तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययनीय बनी हैं ।

शोध-प्रबंध के प्रत्येक अध्याय के अंत में निष्कर्ष भी रखा गया है । उससे

अध्याय विशेष के अध्ययन-अनुशीलन से प्राप्त निष्कर्षों को वहीं उपस्थित कर देने की सुविधा मिली है । पुनः अंतिम अध्याय 'उपसंहार' में शोध विषयक समस्त उपलब्धियों का एकत्र आकलन करते हुए निष्कर्ष रूप में प्राप्त तथ्यों का समाहार किया गया है ।

परिशिष्ट में आधार एवं सहायक ग्रंथों की तालिका प्रस्तुत की गयी है । पत्र-पत्रिकाओं को उक्त तालिका में सम्मिलित कर शोध-प्रबंध को पूरा किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-विषय के अध्ययन की आवश्यकता, अब तक हुए कार्य, शोध-विषय की सीमा, शोध-सामग्री, शोध प्रक्रिया आदि के सम्बन्ध में भी यहीं आवश्यक विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

अवतार-कथाओं में राम और कृष्ण की कथाओं को सर्वाधिक महत्त्व और लोकप्रियता प्राप्त है । दादी-नानी की कहानियों और लोरियों में भी उनके शास्त्रीय रूपों में लोकजन्य अनेक विश्वास घुल-मिल गये हैं । इससे भारतीयों में आरम्भ से ही राम और कृष्ण के चरित्रों के प्रति न केवल आकर्षण बढ़ता है, वरन् उनके मानवीय मूल्य भी जीवन में ढलते चलते हैं । 'रामायन कथा' शीलाचार स्थापित करनेवाला और 'महाभारत' को धर्म की व्याख्या (यतो धर्मः ततो जयः) करने वाला कहा गया है । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' के साथ ही 'महाभारत' को भी प्रत्यक्ष किया और गोस्वामी तुलसीदास रामवृत्त के प्रणेता, गायक और वाचक रहे। इस प्रकार दोनों महाकवियों ने शीलाचार और धर्म के आदर्श को ध्यान में रख कर ही काव्य-प्रणयन किया । विष्णुदास कृत 'रामायन कथा' (सन् 1443 ई.) की प्रस्तावना 'जीव संतोषु' की परिणति जैसे 'व्याधि पीर न होइ' में होती है, वैसे ही उसके एक सौ इकतीस वर्ष बाद तुलसीदास के 'रामचरितमानस' (सन् 1574 ई.) में 'स्वान्तः सुखाय' रघुनाथ गाथा की समाप्ति 'तमःशान्तये' से होती है । विष्णुदास के 'सन्तोष' और तुलसीदास के 'सुख' में बहुत अन्तर नहीं है । दोनों समधरातलीय हैं । तात्पर्य यह है कि दोनों का रचनागत लक्ष्य बहुत भिन्न नहीं था । पुनः विष्णुदास ने

'महाभारत' में धर्म के आचरणीय पक्ष की ओर ध्यान दिया । अस्तु, रचनागत समान उद्देश्य धर्मिता के स्पष्टीकरण की दृष्टि से दोनों की कृतियों में व्यक्त विचारों का तुलनामूलक अध्ययन किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है । पुनः समान विषय पर प्रणीत एक से अधिक कृतियों में व्यक्त विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, रचयिता की विशेषता आदि की दृष्टि से भी करणीय है । इस मान्यता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध-विषय "विष्णुदास एवं गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन" स्वीकार किया गया है ।

कोई भी रचना पाठक को जिस दिन सुलभ होती है, उसी दिन से उस रचना एवं उसके रचयिता का मूल्यांकन आरम्भ हो जाता है । पाठकों की प्रतिक्रिया लिखित रूप में उपलबध भले ही नहीं हो, पर मौखिक रूप में वह प्रचलित और प्रचारित हो चलता है । आलोच्य कवि द्वय की रचनाओं के लिए भी यही सत्य है । 'रामचरितमानस' को जनप्रियता प्राप्त होने के पूर्व बुन्देलखण्ड में 'रामायन कथा' और 'महाभारत' की पंक्तियों का प्रचलित होना इसी का पोषक है । इधर विष्णुदास और तुलसीदास के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक अध्येताओं ने विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन-अनुशीलन किया है । तब भी शोध का क्षेत्र समाप्त नहीं हुआ है । यह सत्य है कि तुलसीदास और उनकी रचनाओं पर जितना शोधकार्य हुआ है, उसकी तुलना में विष्णुदास पर काम बहुत कम हुआ है, कहना चाहिए कि काम नगण्य है । इसके कारण तो कई हैं, पर सर्व प्रमुख कारण है उनकी अधिकांश कृतियों का अब तक अप्रकाशित और पाठकों के लिए सुलभ नहीं होना।

विष्णुदास और तुलसीदास पर जो भी कार्य अब तक हुए हैं उनके सम्बन्ध में आवश्यक सूचना आगे दी जाती है । यथा --

क. विष्णुदास सम्बन्धी कार्य :

1. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन कथा- डॉ. बलभद्र तिवारी, इलाहाबाद, 1976ई.

2. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन कथा - डॉ. मोहन सिंह तोमर, इंदौर, 1977 ई.

3. विष्णुदास, व्यक्तित्व और कृतित्व - सुषमा चावला, मेरठ, 1978 ई.

4. महाकवि विष्णुदास - साहित्यिक तथा भाषागत अध्ययन - ओम प्रकाश आर्य, ग्वालियर, 1979 ई.

5. *रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन* - डॉ. रमा श्रीवास्तव, मणिपुर, 1988 ई.

6. हिन्दी और असमिया की प्रथम रामायण - डॉ. दिनेश कुमार चौबे, वाराणसी, 2001 ई.

ख. तुलसीदास सम्बन्धी कार्य :

तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व पर समग्ररूप में तुलसीदास की अलग-अलग कृतियों पर (रामचरितमानस पर विशेष रूप से) एवं विभिन्न कवियों एवं उनकी कृतियों के साथ तुलनामूलक (Comparative) और वैषम्यमूलक (Contrastic) सैकड़ों कार्य हुए हैं । इनके विवरण गिरिराजशरण अग्रवाल और मीणा अग्रवाल द्वारा सम्पादित **'शोध-सन्दर्भ'** के चारो खंडों में उपलब्ध हैं । इस पर हुए शोधपरक कार्यों की संख्या आठ सौ से भी अधिक है । साथ ही बीसों गैर उपाधिकपरक शोधकार्य भी प्रकाशित हैं । इधर कुछ और भी शोधकार्य हुए होंगे । यहाँ उनमें से किसी का भी उल्लेख नहीं करते हुए इतना ही सूचित करना पर्याप्त है कि इसके बावजूद अभी तक विष्णुदास की कृतियों की तुलना तुलसीदास की सभी कृतियों के साथ किसी भी पक्ष को ध्यान में रखकर नहीं की गयी है । मेरी जानकारी में अभी तक दोनों कवियों का समग्ररूपेण तुलनामूलक अथवा वैषम्यमूलक अध्ययन नहीं हुआ है । इस दिशा में किया गया प्रस्तुत शोध-कार्य ही पहला विनीत प्रयास है । अतः प्रस्तुत शोधकार्य की आवश्यकता, उपयोगिता, महत्ता, मौलिकता आदि स्वतः स्पष्ट हो जाती है । इसकी मैलिकता कवि द्वय की विचारधाराओं के

तुलनात्मक अध्ययन तक ही सीमित है ।

शोध-प्रबन्ध के शीर्षक 'विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन' से शोधकार्य की सीमा स्वयं निर्धारित हो जाती है कि इसमें विष्णुदास कृत सभी कृतियों में व्यक्त दर्शन, भक्ति, धर्म, समाज, राजनीति, काव्य आदि विषयक विचारधाराओं का तुलसीदास कृत रचनाओं में व्यक्त एतद्विषयक व्यक्त विचारधाराओं से तुलनामूलक *अध्ययन किया जाना अभीष्ट है । तात्पर्य यह कि आलोच्य कवियों के* जीवन, व्यक्तित्त्व आदि अथवा किसी रचना विशेष का अध्ययन करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। तुलनात्मक रूप में अध्ययनीय है केवल दोनों कवियों की विचारधाराएँ ।

अध्ययन की सीमा निर्धारित होने के कारण अध्ययनीय सामग्री स्वयं ही निर्धारित हो गयी है । अध्ययनीय सामग्री मोटे तौर पर दो वर्गों में रखी जायेगी । यथा -- (क) आधार सामग्री और (ख) सहायक सामग्री । आधार सामग्री के अन्तर्गत विष्णुदास और तुलसीदास की सभी कृतियाँ आती हैं इनकी संख्या निर्धारित है । विष्णुदास की कुल छह और तुलसीदास की कुल तेरह प्रामाणिक मानी जाने वाली कृतियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। सहायक सामग्री के अन्तर्गत उन पुस्तकों आदि को यहाँ स्थान मिला है जो आलोच्य कवियों से सम्बद्ध हैं । तुलसीदास के सम्बन्ध में वैसी सामग्री विपुल रूप में उपलब्ध है, पर विष्णुदास से सम्बन्धित सामग्री का प्रायः अभाव-सा है । यहाँ इतना ही संकेत करना पर्याप्त होगा कि लेखक को जो भी सामग्री प्रकाशित-अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हुई है उसका यथास्थान समुचित उल्लेख करते हुए उपयोग किया गया है ।

शोध-प्रक्रिया के सम्बंध में यहाँ इतना ही संकेत करना पर्याप्त होगा कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं के तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में किया गया पहला विनीत प्रयत्न है । यह अध्ययन तुलनामूलक है, वैषम्यमूलक नहीं । इसमें विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत सभी समान और तुलनीय इकाइयों को ब्यौरेवार

रूप में एकत्र कर उनकी भिन्नता-अभिन्नता उत्कर्षापकर्ष का अनुशीलन-विश्लेषण किया गया है । इस निमित्त प्रबन्ध-लेखन में लेखक की दृष्टि मूलतः वैसे तथ्यों के संधान और निदान पर टिकी है जिनके द्वारा तुलनीय इकाइयाँ एक दूसरे से भिन्न-अभिन्न सिद्ध हुई हैं । लेखक ने आवश्यक तटस्थता बरतते हुए वस्तुनिष्ठ-विश्लेषण परीक्षण को ही सर्वत्र महत्त्व दिया है जिससे निष्कर्ष सर्वत्र सहज और अनारोपित रूप में स्थिर हो सके हैं ।

शोध-प्रबन्ध-लेखन में लेखक ने विषय से सम्बद्ध जिस भी प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया है, जिन विद्वानों के विचारों आदि का लाभ मिला है, उन सबका यथास्थान उल्लेख-निर्देश किया गया है । लेखक उन सब का ऋणी है ।

शोध की अधिकांश सहायक सामग्री पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, के केन्द्रीय पुस्तकालय से प्राप्त हुई । इसके अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों के मुख्य तथा विभागीय पुस्तकालयों यथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, मणिपुर विश्वविद्यालय से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई । इस निमित्त पुस्तकालय के कर्मचारियों को लेखक यथायोग्य धन्यवाद देता है ।

प्रस्तुत शोध-कार्य और शोध-प्रबन्ध लेखन के क्रम में मुझे अनेक व्यक्तियों से स्नेह आशीर्वाद मिले, सहायता मिली, उन सबके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना आवश्यक है । मैं सर्वाधिक ऋणी हूँ अपने शोध-निर्देशक परम आदरणीय डॉ. दिनेश कुमार चौबे जी, रीडर, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग का । उन्होंने ही शोध का विषय सुझाया, दिशा दी, प्रबन्ध की रूप-रेखा स्पष्ट की एवं पदे-पदे उत्साहित कर गति दी, पढ़ा-बताया और सारी सुविधाएँ सुलभ कर दी । वे प्रबन्ध-लेखन के समवाय कारण रहे हैं, मैं तो केवल संकेत ग्रहण करता रहा हूँ । तब भी प्रबन्ध में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो, तो वह मेरी है और उपलब्धियाँ गुरूवर डॉ. दिनेश कुमार चौबे जी की हैं । उनके स्नेह आशीर्वाद के लिए कृतज्ञता-ज्ञापनार्थ शब्द कम पड़ते हैं ।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग के अन्य सभी अध्यापकों का भी लेखक को स्नेह-आशीर्वाद और सुझाव मिलता रहा है । डॉ. सुशील कुमार शर्मा, डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, श्री भरत प्रसाद त्रिपाठी जी के सुझावों का लेखक ने सदा लाभ उठाया है । लेखक इन सभी गुरूजनों के प्रति हार्दिक आभारी और स्नेह आशीर्वाद का आकांक्षी है ।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, के हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने के निमित्त बाहर से आये विद्वानों से भी लेखक को स्नेह-आशीर्वाद मिलते रहे हैं । इस दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत में स्नातकोत्तर हिन्दी-अध्यापन के आरम्भकर्त्ता एवं हिन्दी असमिया के अधीत विद्वान् प्रो. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', प्रो. अरुण प्रकाश मिश्र, प्रो. देवराज, प्रो. शोभा कान्त मिश्र, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, प्रो. अनंत कुमार नाथ, प्रो. तुकाराम पाटिल, डॉ. माधव पंडित, डॉ. बजरंग तिवारी आदि के प्रति लेखक आभार व्यक्त करता है ।

शोध-प्रबन्ध को गन्तव्य तक पहुँचाने में मुझे अपने परिवार के सभी व्यक्तियों का अतीव सहयोग प्राप्त हुआ है । विशेष रूप से माता श्रीमती शोभा थापा एवं पत्नी सुश्री माधवी कुमारी थापा के योगदान महत्त्वपूर्ण रहे हैं । परिवार जनो के अतिरिक्त प्रो. जे. पी. परसाई, श्री मनोज राना, श्री नारायन, श्री जगप्रसाद उपाध्याय के योगदान, त्याग और सहयोग के लिए मैं सदा ऋणी रहूँगा ।

ज्ञात-अज्ञात रूप में जिनसे भी मुझे किसी प्रकार का स्नेह-सहयोग मिला है, जिन विद्वानों के विचारों का लाभ मैंने पाया है, मैं उन सभी के प्रति आभार प्रकट करते हुए इस शोध प्रबन्ध को मुल्यांकन हेतु अतीव विनम्र भाव से प्रस्तुत करता हूँ ।

बिक्रम थापा

दिनांक : 27.4. 2009

स्थान : शिलांग, मेघालय

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन		I - VIII
प्रथम अध्याय :	**विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास का सामान्य परिचय**	1 - 53
1.	उपक्रम	
1. क.	विष्णुदास	
1. क. I	विष्णुदास की जीवनी	
1. क. II	विष्णुदास की कृतियाँ	
1. ख. I	तुलसीदास	
1. ख. II	तुलसीदास की कृतियाँ	
1. ग.	कृतियों के कारक तत्त्व	
1. ग. I	राजनीतिक परिस्थिति	
1. ग. II	सामाजिक परिस्थिति	
1. ग. III	धार्मिक परिस्थिति	
1. घ.	प्रेरक स्रोत	
1. घ. I	कवि की जीवनी	
1. घ. II	सांस्कृतिक पीठिका	
1. घ. III	साहित्यिक परम्परा	
1. ङ.	निष्कर्ष	
	संदर्भ	
द्वितीय अध्याय :	**कवि द्वय की दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन**	54-75
2. I	उपक्रम	
2. II	ब्रह्म	
2. III	जीव	
2. IV	जगत और संसार	
2. V	माया	
2. VI	मुक्ति और मुक्ति-साधन	
2. VII	निष्कर्ष	
	संदर्भ	

तृतीय अध्याय :	**कवि द्वय की भक्ति विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन**	**76-93**
3. I	उपक्रम	
3. II	भक्ति	
3. III	भक्ति की महत्ता	
3. IV	भक्ति के साधन	
3. V	भक्ति के बाधक तत्त्व	
3. VI	भक्ति के भेद	
3. VII	भक्ति का साधन क्रम	
3. VIII	भगवान और भक्त की मनोभूमि	
3. IX	भक्ति के अधिकारी	
3. X	भक्त	
3. XI	निष्कर्ष	
	संदर्भ	
चतुर्थ अध्याय :	**कवि द्वय की धार्मिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन**	**94-130**
4. I	उपक्रम	
4. II	तत्युगीन ह्रासोन्मुखी धार्मिक चेतना	
4. III	धार्मिक जीवन के प्रतिमान	
4. IV	धार्मिक उपासना और सम्प्रदाय	
4. V	निष्कर्ष	
	संदर्भ	
पंचम अध्याय :	**कवि द्वय की सामाजिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन**	**131-195**
5. I	उपक्रम	
5. II	सामाजिक प्रतिबिम्बन	
5. क. II	सामान्य जन-जीवन	
5. ख. II	नारी	
5. ग. II	गुरू	
5. घ. II	दैनन्दिन उपकरण	
5. III	प्रकृति मानव की सहचरी	
5. IV	रीति-रिवाज एवं आचार-व्यवहार	
5. क. IV	अभिवादन	
5. ख. IV	शिष्टाचार	
5. ग. IV	भोजन	
5. घ. IV	संस्कार	

5. V पर्व त्यौहार और विश्वास
5. VI मनोरंजन
5. VII प्रसाधन एवं वस्त्राभूषण
5. V III आदर्श कल्पना
5. क VIII परिवार
5. ख.VIII समाज
5. ग. VIII अर्थ
5. IX निष्कर्ष
संदर्भ

षष्ठ अध्याय : कवि द्वय की राजनैतिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन **196-232**

6. I उपक्रम
6. II तत्कालीन राजनीति
6. क.II राजा
6. ख.II प्रजा
6. III राजनैतिक आदर्श
6. क.III राजनीति का आधार राजधर्म
6. ख.III मंत्रि परिषद
6. ग.III पुरोहित
6. घ.III राज्य का भू-भाग : ग्राम और नगर
6. ङ.III राजकोष
6. च.III दण्ड और न्याय
6. छ.III युद्ध और योधन नीति
6. IV आदर्श राजा और आदर्श राज्य
6. V निष्कर्ष
संदर्भ

सप्तम अध्याय : कवि द्वय की काव्य विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन **233-257**

7. I उपक्रम
7. II काव्य का कर्त्ता : कवि
7. III काव्य लक्षण
7. IV काव्य का ग्रहीता
7. V काव्य की आत्मा

7. VI काव्य-प्रयोजन
7. VII काव्य-हेतु
7. VIII काव्य का वर्ण्य-विषय
7. IX काव्यांग
7. X काव्य रूप
7. XI निष्कर्ष
संदर्भ
उपसंहार **258-265**
परिशिष्ट **266-271**

प्रथम अध्याय

विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास का सामान्य परिचय

प्रथम अध्याय

विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास का सामान्य परिचय

1. उपक्रम

रामकाव्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ वाल्मीकि कृत 'रामायण' है । उसके पूर्व भी कुछ छोटे रामाख्यानक काव्यों के प्रणीत होने के उल्लेख मिलते हैं, पर वे संप्रति अनुपलब्ध हैं । पालि-प्राकृत अपभ्रंश के अतिरिक्त संस्कृत में अनेक रचनाएँ हुई हैं । संस्कृत में रामकथा वाले प्रबंधकाव्यों और नाटकों की रचनाएँ मिलती हैं ।

मध्ययुग में रामकाव्य का स्वरूप दो रूपों में विकसित हुआ । एक रूप साम्प्रदायिक रहा जो महन्तों और उपासको की रचनाओं में प्रकट हुआ । वह साहित्य प्रायः मठों और मन्दिरो तक सीमित एवं वहीं सुरक्षित रहा । दूसरा रूप असाम्प्रदायिक और ललित रहा । यह स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ । इसका प्रचार-प्रसार जनसाधारण के बीच हुआ । यह सर्वजनसुलभ था और कवित्व की दृष्टि से भी इसमें व्यापक विशेषताएँ विद्यमान थीं ।[1]

हिन्दी में रामकाव्य के विकास में एक ओर संस्कृत की रामकाव्यधारा का और दूसरी ओर दक्षिण के आलवार भक्तों एवं वैष्णव आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । रामभक्ति का उत्तरभारत में प्रचार दक्षिण भारत से ही हुआ । दक्षिण में रामभक्ति के बीज आलवार भक्तों और वैष्णव आचार्यों में मिलते हैं । आलवारों में पाँचवें अर्थात् नम्यालवार या शठकोप रामभक्ति के प्रथम आचार्य माने जाते हैं । वे राम की पादुका के अवतार कहे जाते हैं । वैष्णवों के चार सम्प्रदायों में श्रीसम्प्रदाय और ब्रह्म सम्प्रदाय रामभक्ति से सम्बद्ध स्वीकार किये गये हैं । श्री सम्प्रदाय में श्रीरामानुजाचार्य का स्थान सर्वोपरि हैं । श्री रामानुजाचार्य की तेरहवीं पीढ़ी में हुए श्री राघवानंद श्री हर्यानंद के शिष्य थे । वे अपने गुरु के आदेश से उत्तर भारत में रामभक्ति के प्रचार के लिए आये और काशी (पंचगंगा

घाट) को उन्होंने स्थायी निवास बनाया । 'हरिभक्ति सिन्धुवेला' में अनन्तस्वामी ने लिखा है --

वन्दे श्रीराघवाचार्य रामानुजकलोद्‌भवम् ।
याम्यादुतरमागत्य राममंत्र प्रचारकम् ।।

मंत्र प्रकरण, चतुर्थ तरंग ।

तात्पर्य यह कि श्रीराघवानंद जी (तेरहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) न केवल दक्षिण और उत्तर भारत के भक्ति-आंदोलन संयोजक सेतु थे, वरन हिन्दी क्षेत्र में मध्ययुगीन वैष्णवभक्ति-आंदोलन के वास्तविक के प्रवर्त्तक एवं सामान्यजन के नेतृत्वकर्त्ता थे । हिन्दी क्षेत्र में उन्होंने ही पहली बार सब के लिए भक्ति मार्ग प्रस्तुत किया -- 'चारिबरन आश्रम सबहीं कौ भक्ति दृढ़ाई ।' उनके योग्य पट्‌टशिष्य थे रामानंदजी जिन्होंने 'जाँति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' के उद्‌घोष और आचरण से उस ओर अधिक उदार एवं लोकाकर्षक बनाया । "परिणामतः उत्तरभारत में सम्प्रदायबद्ध रामभक्ति-गंगा के भगीरथ बने राघवानंद और गोमुख हुए उनके योग्य शिष्य स्वामी रामानंद (1299-1410 ई.) । हिन्दी रामभक्ति-काव्य का सम्बंध मुख्यतः स्वामी राघवानंद और स्वामी रामानंद द्वारा प्रचारित रामभक्ति से ही है ।"[2]

हिन्दी में रामचरित का प्रथम वर्णन 'पृथ्वीराज रासो' के द्वितीय प्रस्ताव (दशम) में मिलता है । हिन्दी रामकाव्य-परम्परा का पहला कवि चंदबरदायी है और पहली कृति है 'पृथ्वीराज रासो' । दशम के तेरह छन्दों (18-30) में राम-स्तुति और अड़तीस छन्दों (264-301) में सम्पूर्ण रामकथा वर्णित हुई है । 'दशम' के अतिरिक्त 'संयोगिता पूर्वजन्म प्रस्ताव' - 45 में श्रीरामकथा वर्णित है । डॉ. भगीरथ मिश्र चंदबरदायी -- प्रणीत 'पृथ्वीराजरासो (दशम) में हिन्दी रामकाव्य का प्रथमोन्मेष मानते हैं[3], जो सर्वथा उचित है । हिन्दी में पहली बार पूरी रामायण अर्थात् सम्पूर्ण रामकथा का विस्तारपूर्वक रचना करते हैं

विष्णुदास । अर्थात् हिन्दी रामकाव्य परम्परा में प्रथम और पूर्णरामायणकार के रूप में विष्णुदास का नाम ही उल्लेखनीय है । उनकी रचना 'रामायन कथा' (सन् 1443 ई.) हिन्दी में प्रणीत पहली रामायण है । गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रणीत 'रामचरितमानस' (सन् 1574 ई.) हिन्दी की ही नहीं, अपितु सभी भारतीय भाषाओं में प्रणीत रामायणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है । वह विष्णुदास की 'रामायन कथा' के एक सौ इकतीस वर्षो वाद रची गयी थी । विष्णुदास हिन्दी के केवल प्रथम रामायणकार हीं नहीं, प्रथम महाभारतकार भी हैं । उनकी कई और छोटी रचनाएँ भी मिलती हैं, जिनमें वे कृष्णकाव्यकार के रूप में प्रत्यक्ष हुए हैं । तुलसीदास की एक छोटी रचना कृष्णचरित विषयक है । एक रचना पार्वती विषयक भी है एवं शेष सभी रचनाएँ रामचरित से सम्बन्धित हैं । इस प्रकार दोनों हिन्दी के प्रमुख कवि हैं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में विष्णुदास एवं तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन करना अभीष्ट है । दोनों कवियों द्वारा प्रणीत रामाख्यानक कृतियाँ ('रामायन कथा' और 'रामचरितमानस') सर्वाधिक महत्त्व की हैं । दोनों कवियों ने रामचरित लोकभाषा क्रमशः बुन्देली और अवधी में लिखकर उसे जन-जन तक पहुँचाया है । रामकथा एवं रामचरित के माध्यम से आदर्श की स्थापना के सचेष्ट प्रयास दोनो की कृतियों में हुए हैं । 'रामायनकथा' एवं 'रामचरितमानस' दोनों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व है । दोनों कवियों ने ऐसे जीवनादर्श को प्रस्तुत किया जो जन-साधारण के लिए सुगम होने के साथ-साथ अभिप्रेत भी था । तुलनात्मक दृष्टि से दोनों कवियों के विचारधाराओं के सम्यक अनुशीलन के लिए जीवन, व्यक्तित्त्व, कृतित्व और तत्युगीन परिस्थितियों का आवश्यक परिचय देना ही यहाँ अभीष्ट है । अस्तु, आगामी पृष्ठों में क्रमशः विष्णुदास और तुलसीदास के जीवन आदि पर विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत आवश्यक विचार प्रस्तुत किये जाते हैं ।

1. क. विष्णुदास

1. क. I विष्णुदास की जीवनी :

आत्मगोपन की प्रवृत्ति के कारण महापुरुषों के जीवनवृत्त की सही जानकारी नहीं मिल पाती है । जीवन की घटनाओं, तिथियों, कार्यों परिस्थितियों आदि का स्पष्ट उल्लेख नहीं होने के कारण प्रामाणिक अथवा निर्णयात्मक रूप में कुछ भी कह पाना मुश्किल हो जाता है । आत्मलघिमा की प्रवृत्ति भी उन्हें अपने बारे में कुछ भी कहने से रोकती है ।

विष्णुदास के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में बहिर्साक्ष्य का प्रायः अभाव है । कहीं से किसी प्रकार की सूचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है । उनकी रचनाओं अर्थात् अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ही विभिन्न अध्येताओं ने थोड़े निष्कर्ष प्राप्त कर जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने की कोशिश की है । विष्णुदास और उनकी कृतियों के मान्य आधिकारिक अध्येता पं. हरिहरनाथ द्विवेदी द्वारा प्रकाशित अप्रकाशित सामग्री के आधार पर ही बलभद्र तिवारी[4] एवं मोहन सिंह तोमर[5] ने विष्णुदास के जीवनवृत्त को क्रम दिया है । मेरे इस अध्ययन के आधार भी वे ही हैं ।

श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने विष्णुदास का जन्म स्थान ग्वालियर कहा है एवं अनुमानतः उनका जन्म 1470 विक्रमाब्द माना है । हरिहर निवास द्विवेदी को विष्णुदास का यह जन्मसंवत् स्वीकार्य नहीं है । उनका कथन है कि -- "यद्यपि श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने इनका जन्म संवत् 1470 वि. और जन्मस्थान ग्वालियर लिखा है, तथापि ये दोनों कथन अनुमान के आधार पर किये गये ज्ञात होते हैं । केवल अनुमान के आधार पर उनका जन्मस्थान ग्वालियर अथवा तँवरघाट माना जा सकता है, तथापि उपर्युक्त जन्म संवत् 1470 वि. (सन 1413 ई.) निश्चय ही अशुद्ध है । उनका महाभारत वि. सं. 1492 (सन 1435 ई.) की रचना है । यह रचना 22 वर्ष की वय में नहीं की जा सकती थी और न

इस वय में उन्हें डूँगरेन्द्र सिंह तोमर का सभा कवि बनाया जा सकता था । अनुमान के आधार पर उनका जन्म कभी सन् 1400 ई. के पूर्व होना चाहिए ।"[6] हरिहरनिवास द्विवेदी का यह अनुमान अतार्किक नहीं लगता । अतः इसे स्वीकार किया जाना चाहिए ।

विष्णुदास ने अपने पिता का नामोल्लेख "महाभारत" और 'रामायन कथा' दोनों में किया है, यथा --

महाभारत : श्री करन लावन कौ पूतू ।
सुमिरत कवि जसु होइ बहुतू ।। पृ. 5/10

रामायन कथा: लावन श्री करन भयौ व्यासु ।
ता सुत विष्णुदास कौ दासु ।। पृ. 1/10

इस अन्तःसाक्ष्य के आधार पर विष्णुदास के पिता का नाम लावण्य श्री कर्ण (व्यास) स्थिर होता है । वे व्यास अर्थात् कथावाचक (पुराण आदि की कथा का वाचन करने वाले) थे । डॉ. भगीरथ मिश्र ने 'करन' पाठ का संशोधन कर 'कर्म' स्वीकार करते हुए विष्णुदास के पिता का नाम 'श्री कर्मव्यास' लिखा है[7], किन्तु संशोधन के किसी आधार का उल्लेख नहीं किया है । यदि उनका यह संशोधन (करन का करम) मान भी लिया जाये तो 'लावन' का क्या होगा, उसकी समस्या तो रहेगी ही । अस्तु, डॉ. भगीरथ मिश्र का संशोधन स्वीकार नहीं करते हुए विष्णुदास के पिता का नाम लावण्य श्री कर्ण (व्यास) ही मानना संगत है । वे पुराण, महाभारत आदि के आधार पर कथाओं का वाचन करते थे । कवि को पैतृक दाय के रूप में कथा-वाचन मिला होगा । इसी कारण उनकी रूचि पौराणिक कथाओं आदि के प्रति हुई होगी । उनकी रचनाएँ इसका उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

विष्णुदास नाम में 'दास' शब्द कवि का वैष्णवत्व बोधक माना जायेगा । डॉ. मोहन सिंह तोमर ने अनुमान किया है कि 'दास' शब्द कवि के वैष्णवत्व घराने में नाम के

साथ 'दास' लगाने की परिपाटी का द्योतक है ।[8] अद्यावधि खोज के आधार पर "केवल यह ज्ञात हो सका है कि विष्णुदास ब्राह्मण थे । उनके पिता श्री कर्ण व्यास का जन्म आस या आसन नदी के किनारे बसे हुए कुतबार ग्राम में हुआ था । विष्णुदास का जन्म गोपाचल नगर में हुआ था । वह गोपाचल नगर गोपाद्रिगढ़ के नीचे उत्तर पूर्व की ओर बसा हुआ था।"[9] कवि विष्णुदास क्या मूलतः ग्वालियर के थे या वे अथवा उनके पिता कहीं बाहर से आकर बसे थे ? कवि की वंश परम्परा का मूल उत्स कहाँ था ? इन प्रश्नों का समाधान हृदयराम मिश्र कृत 'रस-रत्नाकर' (सन् 1674 ई.) में वर्णित 'कविवंश वर्णनम्' से होता है। उसके अनुसार उनका मूलनाम विष्णुदत्त था । उनके पूर्व पुरुष कुरुक्षेत्र के निकट धरोड़ा गाँव के निवासी थे । वे ब्राह्मण यजुर्वेद माध्यंदिनी शाखा के सुजाति भटानिया जोशी थे । विष्णुदास नाम बाद में प्रचलित हुआ । उनके पुत्र का नाम नारायण (नारायण दास) था । विष्णुदास की छठी पीढ़ी में रस-रत्नाकर के प्रणेता हृदयराम हुए थे ।[10] उनका वंश-वृक्ष अग्रांकित है –

लावण्य श्री कर्ण (व्यास)

↓

विष्णुदत्त (दास)

↓

नारायण (दास)

↓

दामोदर

↓

रामकृष्ण

↓

↓	↓	↓
तुलसीराम	माधवराम	गंगाराम
	↓	
	हृदयराम	

इस वंश परम्परा से स्पष्ट है कि 'छिताई चरित' (1526 ई.) के रचयिता नारायण दास के पिता विष्णुदास थे । हरिहर-निवास द्विवेदी एवं डॉ. भगीरथ मिश्र आदि को भी यही मान्य है ।

विष्णुदास के दीक्षा गुरु सुन्दरनाथ जी थे । उनके गुरु सुन्दरनाथ जी सब प्रकार के पापों से रक्षा करनेवाले, भविष्यद्रष्टा और दूसरी सृष्टि तक करने की सामर्थ्य वाले थे । उनकी घोषणा है --

सुन्दरनाथ पास लई दछ्या । हरत परत सब पातक रछ्या।।
भूत भविष्य मान जो रहै । निसिदिन जा कहँ अवगत रहै ।।
तैसी समरथ सृष्टि दूसरी । ता सिष विष्नुदास कवि करी ।।
ता गुन बरनि सकै कवि कौन । जिहि थिर राखि सकहि मनु पौना ।।[11]

कवि ने गुरु सुन्दरनाथ के साथ ही सहजनाथ जी का भी स्मरण किया है । सहजनाथ जी गोपाचल की नाथ गद्दी के संस्थापक अर्थात् आदि गुरु थे । कवि ने उनका भी सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है --

वचन जो सहजनाथ पहँ लहौं । सरस वचन रमाइनु कहों ।[12]

'स्वर्गारोहण' में यह कथन अग्रांकित रूप में प्राप्त होता है --

अरु जो सहजनाथ बरुन लहौं । स्वर्गारोहन विस्तरि कहौं ।[13]

दीक्षागुरु सुन्दरनाथ जी की प्रशंसा में कवि ने 'महाभारत' में लिखा है --

कुमति पटल मो छाये नैना । उघरे सुनति गुरुनि के बैना ।।
ता गुरु चरन सीसु हौं धरऊँ । पान-फूल बहु सेवा करऊँ ।।[14]

सुन्दरदास का प्रभाव कवि विष्णुदास पर कितना था, इस सम्बंध में कुछ कहा नहीं जा सकता, पर जीवन के अन्तिम दिनों में उनका नाम शायद विष्णुनाथ हो गया था। 'स्वर्गारोहण' की एक प्रति में उनका नाम 'विष्णुनाथ' के रूप में मिलता है --

और सहजनाथ जोगी बर करउ । स्वर्गारोहण विस्तर कहेऊँ ।।

विष्णुनाथ कवि बिने कराई । देहु बुद्धि जो कथा कहाई ।[15]

विष्णुदास के आश्रयदाता ग्वालियर के पाण्डववंशी राजा महाराज डूँगरेन्द्र सिंह (सन् 1425-1454 ई.) थे । उनका विस्तारपूर्वक उल्लेख कवि ने महाभारत में किया है--

पंडु-वंस तोवर धुर-धीरू । डौंगरसिंधु राउ बर बीरू ।

गढ़ गोपाचल बैरिनि सालू । हय-गय-नर-पति टोडर-मालू ।।

भुजबल भीउ न मंकै कासू । असिवर आनि दिखावै त्रासू ।

ता सिर सेतु छत्रु फरहरई । कोउ समर उभारू न करई ।।[16]

उन्हीं के आदेश से कवि ने 'महाभारत' की रचना भी की थी --

पंडुवस तौवर धुर-धीरू । डौंगरसिंधु राउ बर बीरू ।।

तिहि तमोरू दियौ कवि हाथा । पूनि पूँछैं डोंगरु नर-नाथा ।।[17]

विष्णुदास 'भाखा' (भाषा) और संस्कृत के विद्वान एवं कुशल 'भाखा-कवि' थे। हरिहर निवास द्विवेदी ने उनका कवि कर्म सन् 1430 ई. से सन् 1450 ई. तक स्वीकार किया है । उन्हें लोकमानस की गहरी पकड़ थी । उन्होंने संस्कृत ग्रंथों के आधार पर पैतृक दाय पौराणिक कथावाचन का दायित्व सँभालते हुए अपने विष्णुपदों के माध्यम से ध्रुपद एवं ख्याल गायकी को विस्तार और नया आयाम प्रदान किया था । उनकी मृत्यु तिथि का भी उल्लेख नहीं मिलता है । अनुमान के आधार पर विद्वानों ने पंद्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उनका देहावसान होना स्वीकार किया है ।

उपरि विवरण से स्पष्ट है कि विष्णुदास के जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी का अभाव है । उनकी जन्म और मृत्यु की तिथि भी ज्ञात नहीं है । अनुमान किया गया है कि उनका जन्म कभी सन् 1400 ई. के पूर्व हुआ होगा एवं मृत्यु कभी पंद्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में हुई होगी । उनका रचना काल स्थूलतः सन् 1430 ई. से सन्

1450 ई. स्वीकार किया गया है । उनके पिता लावण्य श्रीकर्ण व्यास थे । पुराण, महाभारत आदि की कथाओं का वे वाचन करते थे । विष्णुदास ने भी पैतृक दाय के रूप में कथावाचन किया होगा । उन्होंने नाथपंथी साधु-सुन्दरनाथ से दीक्षा ली थी । सुन्दरनाथ जी गोपाचल गद्दी के संस्थापक सहजनाथ की परम्परा में थे । विष्णुदास ने सहजनाथ के प्रति भी अपनी श्रद्धा व्यक्त की है । उन्होंने 'महाभारत', 'रामायन-कथा' आदि ग्वालियरी (बुंदेली) भाषा में रचना कर राम एवं कृष्ण के प्रति अपनी सहज भक्ति भावना प्रकाशित की है । राम-कृष्ण के चरित्रों के माध्यम से उन्होंने समाज में एक विशिष्ट आदर्श की परिकल्पना की है । नाथपंथ में दीक्षित होने के बावजुद वे साम्प्रदायिक सीमाओं में बद्ध नहीं थे । वे उदार और सहिष्णु वैष्णव थे । उन्होंने हिन्दी में पहली रामायण 'रामायन-कथा' और 'महाभारत' की रचना की एवं ध्रुपद गायकी को आगे बढ़ाया । अपने विष्णुपदों के माध्यम से उन्होंने वैष्णव भक्ति को अग्रसारित किया ।

1. क ll विष्णुदास की कृतियाँ :

विभिन्न विद्वानों और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोट[18] के अध्ययन-अनुसंधान के परिणाम स्वरूप विष्णुदास की निम्नांकित कृतियों का पता चला है --

1. महाभारत
2. स्वर्गारोहण / स्वर्गारोहण पर्व
3. रामायन कथा
4. रूक्मिणी मंगल
5. सनेहलीला
6. मकरध्वज कथा
7. फुटकल पद्य (विष्णुपद)
8. बारहखड़ी

9. चौबीस एकादशी

10. एकादश महात्म्य

ऊपरि लिखित कृतियों में 'स्वर्गारोहण / स्वर्गारोहण पर्व' दोनों संभवतः एक ही कृति है, किन्तु उल्लेख अलग-अलग मिलते हैं । यह 'महाभारत कथा' का ही अंग है । हरिहर निवास द्विवेदी ने स्वर्गारोहण को महाभारत का ही अंग माना है ।[19] लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी तीनों क्रमशः 'महाभारत कथा', 'स्वर्गारोहण' और 'स्वर्गारोहण पर्व' को एक ही रचना मानते हैं ।[20]

हरिहर निवास द्विवेदी ने विष्णुदास के केवल तीन क्रमशः महाभारत कथा, स्वर्गारोहण पर्व और रामायन कथा का ही परिचय दिया है ।[21] डॉ. बलभद्र तिवारी ने भी द्विवेदी का अनुसरण करते हुए इन्हीं तीन ग्रंथों का उल्लेख किया है ।[22] उनके विपरीत डॉ. मोहन सिंह तोमर ने 'मकरध्वज' के अतिरिक्त 'महाभारत कथा', 'स्वर्गारोहण', 'स्वर्गारोहण पर्व', 'रूक्मिणी मंगल', 'सनेहलीला' और 'रामायन कथा' कुल सात रचनाओं की चर्चा की है ।[23] डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' स्वर्गारोहण और स्वर्गारोहण पर्व को एक ही कृति मानते हुए कुल छह ग्रंथों का उल्लेख किया है ।[24] क्रमशः महाभारत कथा, स्वर्गारोहण/स्वर्गारोहण पर्व, रूक्मिणी मंगल, सनेहलीला, रामायन कथा, मकरध्वज कथा । डॉ. दिनेश कुमार चौबे ने ऊपरिलिखित दसों रचनाओं को प्रामाणिक मानकर उनका परिचय दिया है ।[25]

उपरि विवेचन से स्पष्ट है कि विद्वानों में विष्णुदास की कृतियों को लेकर मतभेद है । इस संदर्भ में मेरा विचार है कि विष्णुदास के नाम से उपलब्ध ग्रंथों में गहन शोधकार्य का अभाव, साथ ही उनके ग्रंथों का अप्रकाशित होना, प्रामाणिक तथ्यों की अभावात्मकता एवं मान्य विद्वानों की उदासीनता के कारण अध्येताओं में मतैक्य नहीं है ।

विष्णुदास की सभी कृतियों के अध्ययन-अनुशीलन के पश्चात् ही हमें प्रामाणिक जानकारी मिल पायेगी । उपलब्ध जानकारी के आधार पर विष्णुदास की कृतियों का आगे संक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।

1. महाभारत :

विष्णुदास की सर्वप्रथम रचना 'महाभारत' है इसका रचना काल वि. 1492 सं (सन् 1435 ई.) है । कवि ने महाभारत में इसका उल्लेख किया है --

चौदह सै रु बानवै आना / पंडु चरितु में सुन्यौ पुराना ।

कातिक कृस्न भई तिथि ग्यासी, बासरू सुक्र सिंघ की रासी ।।[26]

कवि ने 'महाभारत' को 'पांडव चरित', 'भारत' या 'महाभारत' के नाम से अभिहित किया है--

बरनौ पांडव-चरितु अभेऊ / जो परसाद करै गुरुदेऊ ।[27]

इसमें कुल पर्वों की संख्या नौ है । यह कुल 2082 छंदों (आदि पर्व 775 + सभा पर्व 254 + वन पर्व 189 + विराट पर्व 482 + उद्योग पर्व 53 + पितामह पर्व 114 + द्रोण पर्व 112 + कर्ण पर्व 22 + शाल्य पर्व 9 + उपसंहार 46 + राज्यरोहण 16) में पूर्ण हुआ है । परिशिष्ट के अन्तर्गत 'स्वर्गारोहन' भी संलग्न है । कवि ने सम्पूर्ण कथा को कहीं अधिक अध्यायों और छंदों में विन्यस्त किया है तो कहीं एक ही अध्याय में एवं कम छंदों में वर्णन किया है ।

विष्णुदास रचित महाभारत का आधार ग्रंथ मूल 'महाभारत' है, किन्तु कवि ने महाभारत का आक्षरिक अनुवाद नहीं किया है । मूलकथा की रक्षा करते हुए अपनी रूचि से कतिपय प्रसंगों को संक्षिप्त कर दिया है, अनेक प्रसंग छोड़ दिये हैं, कुछ प्रसंगों में कल्पना का सहारा लेते हुए विस्तार किया है । इस प्रकार उन्होंने अपनी कृति को मौलिक रचना बनाने का प्रयास किया है । वस्तुतः वह मौलिक कृति है ।

महाभारत में विष्णुदास ने पांडवों और कृष्ण के चरित्रों के माध्यम से अधर्म पर धर्म की विजय को दर्शाया है । विष्णुदास की रूचि भीम, अर्जुन और कृष्ण के प्रति अधिक दिखती है । वे कौरव पक्ष की हार, दुर्योधन की निराशा और शकुनि की विफलता, पारिवारिक जीवन के साथ-साथ देशी कृतघ्न राजाओं की पराजय को प्रस्तुत करते हैं । विष्णुदास का उद्देश्य न सिर्फ पांडित्य प्रदर्शन करना था । अपितु अपने युग एवं परिवेश का यथार्थ चित्रण जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत करना था । डॉ. बलभद्र तिवारी लिखते हैं -- "महाभारत वास्तव में शासन और शासक वर्ग के सदस्यों में व्याप्त कलह, द्वेष और छल का विज्ञापन करता है । कवि युग के प्रति उदासीन नहीं है । स्थान-स्थान पर विभिन्न पात्रों के माध्यम से उसने तत्कालीन समाज, नीति, राजनीति, रणनीति और इसके परिवेश का परिचय दिया है ।"[28]

कवि ने श्लोकों के अतिरिक्त दोहरा, चौपाई, पाल्हुरी, आदि छंदों के कुशल प्रयोग किए है । अलंकृत शैली का अभाव होते हुए भी इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों के सहज प्रयोग दिखाई पड़ते हैं । सम्पूर्ण ग्रंथ में वीर और श्रृंगार रस की प्रधानता है । वीर रस के चित्रण में पांडवों और कृष्ण का, श्रृंगार में कुंती, द्रौपदी, हिडिम्बा, नागकन्या, सुभद्रा आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है ।

डॉ. रमा श्रीवास्तव लिखती है कि -- "महाभारतीय कथा को समग्रता में उपस्थित करने वाला यह मात्र हिन्दी का ही नहीं, वरन आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रथम ग्रंथ है।"[29] महाभारत में विष्णुदास ने तत्कालीन जनभाषा को अपनाकर उस युग की भाषा को एक नई पहचान दी है । "जनभाषा में रचित 'महाभारत' मध्ययुगीन समाज को उसके अतीत से परिचित कराता है और वर्णित पात्रों से शिक्षा ग्रहण करने की ओर प्रेरित करता है इस प्रकार महाभारत का जन भाषा में काव्यबद्ध होना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तो है, भाषा के विकास के अध्ययन के लिए भी अमूल्य है ।"[30]

2. स्वर्गारोहण/स्वर्गारोहण पर्व :

विष्णुदास की दूसरी कृति स्वर्गारोहण/स्वर्गारोहण पर्व है । इस कृति की अब तक सात प्रतियों का पता चला है ।[31] हरिहर निवास द्विवेदी इस कृति को महाभारत का अंग ही मानते है, स्वतंत्र कृति नहीं ।[32] उनके विपरीत शिव प्रसाद सिंह[33], कृष्णनारायण प्रसाद मागध[34], डॉ. बलभद्र तिवारी[35], डॉ. मोहन सिंह तोमर[36], गणपतिचन्द्र गुप्त[37], डॉ. दिनेश कुमार चौबे[38], रमा श्रीवास्तव[39] आदि इसे स्वतंत्र कृति मानने के पक्षधर हैं ।

विष्णुदास रचित 'स्वर्गारोहण' का वर्ण्य-विषय पांडवों का हिमालय में जाकर गल जाना है । कवि ने इसमें कलियुग के माध्यम से आधुनिक युग की महत्वपूर्ण बातों की ओर सामान्य जनों का ध्यान आकर्षित किया है । इसकी रचना दोहा-चौपाई, छंद में की गई है । काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी यह ग्रंथ सफल एवं उत्तम है । इस ग्रंथ के सम्बंध में डॉ. बलभद्र तिवारी का कथन है -- "आधुनिक युग के जीवन की भविष्यवाणी भी कवि ने इस कृति में कर दी है । समाज की अव्यवस्था, शासन के दोष, धर्महीनता और पापाचार की चर्चा करते हुए कवि व्यापक रूप में समाज के प्रत्येक सदस्य पर अपने विचार देता है ।"[40] स्वतंत्र मंगलाचरण से प्रारंभ होने के कारण इसे स्वतंत्र कृति ही मानना चाहिए ।

3. रामायन कथा :

विष्णुदास की कृति 'रामायनकथा' की सूचना पहली बार नागरी प्रचारिणी सभा के सन. 1941-1943 ई. खोज विवरण से मिली । इसकी दो प्रतियों की जानकारी उपलब्ध हुई है ।[41] सागर विश्वविद्यालय में उपलब्ध एक प्रति का संपादन एवं प्रकाशन हो चुका है ।[42] प्रस्तुत शोध प्रबंध में अध्ययन हेतु प्रकाशित प्रति को ही आधार ग्रंथ बनाया गया है । रामायन कथा के रचनाकाल के संदर्भ में कवि ने स्वयं ही लिखा है --

चौदह सत निन्यानव लियौ । पून्यौ पवित्त रमाइनु कियौ ।

गुरु वासर रेवती (स्वेती) नछत्रु । माघ मास किवि क्यौ कवित्तु ।।[43]

इस आधार पर इसका रचनाकाल सं. 1499 वि. (सन 1442 ई.) का माघ माह ठहरता है । सम्पूर्ण रामकथा कुल तीन कांडों क्रमशः बालकांड, सुन्दरकांड और उत्तरकांड में पूरी की गयी है । बालकांड में प्रारंभ से लेकर किष्किंधा तक की, सुंदरकांड में राम राज्याभिषेक तक की तथा उत्तरकांड में राक्षस वंश और राम स्वर्गारोहण की कथा कही गई है । कथा कहने का ढंग बड़ा रोचक एवं उत्तम है । 'रामायनकथा' के पूर्व अध्येताओं में अधिकांश का ध्यान इस ओर नहीं गया है कि पं. लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी द्वारा सम्पादित 'रामायनकथा' में सर्गों के नाम मुद्रण में त्रुटि रह गयी है जिस कारण उसमें प्रथम दृष्टि में केवल 53 सर्ग (बालकांड - 31 + सुन्दरकांड - 13 + उत्तरकांड - 9) ही प्रतीत होते है । जबकि सर्गों की वास्तविक संख्या 58 है । इस ओर सर्वप्रथम प्रो. कृष्णनारायण प्रसाद मागध ने ही अपने निबंध 'अल्पज्ञात कवि विष्णुदास' में स्पष्ट किया है उनके अनुसार सुन्दरकांड में चार और उत्तरकांड में एक कुल पाँच सर्गों के नामोल्लेख नहीं हुए है । इसी प्रकार उनमें प्रयुक्त संस्कृत श्लोकों और हिन्दी छंदों की संख्या की गणना में लोगों ने भूल की है । डॉ. दिनेश कुमार चौबे ने कुल 75 श्लोकों एवं 3410 हिन्दी छंदों का उल्लेख किया है । डॉ. रमा श्रीवास्तव ने छंदों की संख्या 3422 लिखी है, किन्तु डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध के अनुसार उनकी संख्या अग्रांकित है --

काण्ड	सर्ग	श्लोक	छंद
1. बालकाण्ड	31	43	1186
2. सुन्दरकाण्ड	17	27	1630
3. उत्तरकाण्ड	10	04	598
योग :	58	74	3414

वस्तुतः प्रो. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध की गणना ही सही है ।

विष्णुदास कृत 'रामायन कथा' का आधार ग्रंथ वाल्मीकि रामायण है । किंतु यह उसका भावानुवाद नहीं है । अपनी अनोखी विशेषता के कारण यह अपने आप में एक स्वतंत्र मौलिक कृति है । यह हिन्दी भाषा में रचित प्रथम पूर्णांग रामकथा-काव्य अर्थात् हिन्दी की पहली रामायण है ।[44] हिन्दी साहित्येतिहास में 'रामायनकथा' का विशिष्ट महत्व है । विष्णुदास को 'रामायन कथा' की रचना करने के कारण हिन्दी रामकाव्यकारों में सर्वाप्रेक्षया प्रथम महाकवि एवं भक्त कवियों का पथ प्रदर्शक बनने का गौरव मिला है ।[45] रामायन कथा के प्रकाशन से कई मान्यताएँ खण्डित हुईं । इस सम्बंध में बलभद्र तिवारी का कथन ध्यातव्य है कि -- "इस ग्रंथ से हिन्दी साहित्य के राम काव्य को एक और आधार स्तंभ मिलता है । अब तक ऐसा माना जाता था कि राम काव्य में तुलसी का ग्रंथ ही प्रमुख है । परन्तु 'रामायन कथा' के सामने आने से तुलसी के पहले भी अन्य कवियों की संभावना की जा सकती है ।"[46]

विष्णुदास ने क्षेत्रीय जनभाषा बुन्देली को 'रामायन कथा' की काव्यभाषा के रूप में अपनाया है । 'रामायन कथा' में महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं । यह कथन सटीक है कि -- "विष्णुदास कृत 'रामायन कथा' वास्तव में एक महाकाव्य है कथानक, चरित्र-चित्रण, रस-स्थापना, अंतरंग और बहिरंग प्रकृति के यथार्थ अंकन और भाषा के प्रांजल भावमय प्रवाह के साथ परिनिष्ठित स्वरूप के गठन और संस्थापन, तथा धर्म, समाज और नीति आदि के वर्णन और कथोपकथन आदि सभी दृष्टियों से विष्णुदास की यह रचना प्रौढ़ और प्रशंसनीय है ।"[47] निश्चय ही यह हिन्दी रामायणों में प्रथम स्थानीय और ऐतिहासिक महत्त्व की कृति है ।

4. रूक्मिणी मंगल :

विष्णुदास रचित 'रूक्मिणी मंगल' हिन्दी का पहला मंगलकाव्य है । इसकी

North-Eastern Hill University Library 103957 Date..........

प्रथम सूचना नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, सन् 1912 ई. में प्रकाशित हुई । इसका हस्तलेख आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित है ।[48] इसका वर्ण्य विषय है -- श्रीकृष्ण और रूक्मिणी के विवाह का वर्णन करना । यह गेय-शैली में लिखी गई है । यह भागवत पुराण को आधार बनाकर लिखी गई एक उत्कृष्ट रचना है । कथा का वर्णन पदों में किया गया है । सम्पूर्ण रचना 46 विष्णुपदों की है कुल 513 पंक्तियाँ हे । कथा को एकसूत्रता प्रदान करने के लिए प्रत्येक विष्णुपद के पूर्व दो दोहे भी रखे गये हैं । सभी विष्णुपद रागबद्ध और भक्त्यात्मक है ।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह बड़ी प्रौढ़ और सरस कृति है । इसमें भक्ति और श्रृंगार के गीतों का समन्वय देखा जा सकता है । मंगलाचरण के पश्चात् कवि ने रचना का आरम्भ करते हुए इसमें 'भाषा काव्य' की रचना करने के लिए कोसा भी है --

भीषम नृप की लाडली, कृष्ण ब्रह्म अवतार ।
जिनकी अस्तुति कहत हौं, सुन लीजै नरनार ।।
तुछ मति मोरी थोरी सी बौराई भाषा-काव्य बनाई ।
रोम-रोम रसना जो पाऊँ महिमा वर्पा नहिं जाई ।।

सूरपूर्व ब्रजभाषा और कृष्ण भक्ति काव्य की पीठिका को समझने की दृष्टि से इस रचना का अपना अलग अस्तित्व है । एक संक्षिप्त उदाहरण द्रष्टव्य है --

रूक्मिणी अपने मन की खेलत-बोलत राजदुलारी
हमारे पति तौं स्त्री नंदनंदन मनमोहन गिरधारी
चौदव भुवन के राव सुनी जो बरहुँ कृष्ण मुरारी ।
विघन निवारन काज सँवारन संतन को हितकारी ।।

हिन्दी के मंगल-काव्यों में 'रूक्मिणी मंगल' एक महत्त्वपूर्ण रचना है ।

5. सनेह-लीला :

इस कृति का आधार श्रीमद्भागवत पुराण (10/47/11-52) के दशम स्कंध में वर्णित भ्रमरगीत प्रसंग है । इसमें कुल 122 दोहे हैं । इसमें श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज में भेजना, विरहिणी गोपियों के साथ ज्ञानयोग तथा प्रेमयोग के संबंध में उत्तर-प्रत्युत्तर से उद्धव का ज्ञान गर्व को भूलकर प्रेम में मग्न हो गोपी प्रेम की महिमा गाने का सरस वर्णन किया गया है । सूरदास आदि परवर्ती कवियों ने इस प्रसंग को ही भ्रमरगीत का रूप दिया है। इससे यह ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट होता है कि सगुण कृष्णभक्ति का प्रारम्भ वल्लभाचार्य के वृन्दावन जाने से कम से कम 80-90 वर्ष पूर्व ही हिन्दी कवि विष्णुदास द्वारा किया जा चुका था ।[49] इस ग्रंथ का कुछ अंश राधेश्याम द्विवेदी ने उद्धृत किया है ।[50] वस्तुतः 'सनेहलीला' हिन्दी में भ्रमरगीत को आधार बनाकर लिखे जाने वाला न केवल प्रथम कृति है, बल्कि बड़ी सफल और सरस कृति है ।

जब हम तुमसों बिछुरें आये मथुरा माँझ ।
हौं कबहूँ नाहिन पियौ, महियो प्रात न साँझ ।।
तब ऊधौ आये यहाँ कृष्णचंद्र के धाम ।
पाय लागि बंदन कियौ बोलत लै लै नाम ।।
ग्वालबाल सब गोपिका ब्रज के जीव अनन्य ।
तुमहि पायं लागन कहयौ सुनो देव ब्रह्मन्य ।।

(सनेह-लीला)

6. बारह खड़ी :

यह रचना कृष्णभक्ति एवं कृष्णचरित पर आधारित है इसमें कुल 45 कुंडलिया हैं । जो व्यंजन वर्णो के क्रम से रचित है । यह अपने आप में एक सफल और सरस कृति है जो वर्णमालाश्रित काव्यरूप का उदाहरण प्रस्तुत करती है --

इहा हरि जब ते गये तलफल ब्रज की नारि ।
सुपनैनन कबहूँ मिलै जागत नाहिं मुरारि ।।
जागत नाहिं पिया कूँ निरखत आँखियन हारी ।
दिवस निसा येहि भावती कब उभटै गिरधारी ।।
नेह लगाइ भये निरमोही अब गति कौन हमारी ।
विष्णुदास सुख तभी होइहौं उभटि मिलैं बनवारी ।।

7. मकरध्वज कथा :

विष्णुदास रचित इस लघु कथाकाव्य की सूचना प्रथम बार हरिहर निवास द्विवेदी ने उपलब्ध करायी थी । इसकी एक हस्तलिखित प्रति दतिया के राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है । पहले हरिहर निवास द्विवेदी इसे 'महाभारत' के रचयिता की कृति मानने के पक्ष में थे, पर बाद में उन्होंने विचार बदल दिया है । इसके भाषिक प्रयोग उन्हें 15 वीं शती के बाद के प्रतीत होते हैं । भाषिक प्रयोग की प्रौढ़ता आदि के कारण वे इसे किसी भिन्न विष्णुदास कृत मानने के पक्षधर है ।[51] इसमें वाल्मीकीय रामायण में वर्णित अहिरावण के एक द्वारपाल हनुमान-पुत्र मकरध्वज के प्रसंग को काव्य का वर्ण्य विषय बनाया गया है । इसमें मकरध्वज के जन्म और उसकी वीरता का उत्तम वर्णन हुआ है । 'मकरध्वज कथा' रामायण में वर्णित अहिरावण प्रसंग पर आधारित होकर भी स्वतंत्र कृति ठहरती है क्योंकि इसका प्रारंभ स्वतंत्र मंगलाचरण से किया गया है ।

8. फुटकल पद (विष्णुपद) :

विष्णुदास कृत फुटकल पद (विष्णुपद) की अलग से कोई स्वतंत्र हस्तलिखित प्रति नहीं मिलती है । विष्णुदास की भणिता से युक्त कीर्तन के रूप में गाये जाने वाले कुछ फुटकल पद भी विभिन्न हस्तलेखों में प्राप्त होते है । ये पद कीर्तन के रूप में गाए जाते रहे हैं । इन पदों का वर्ण्य विषय भी कृष्ण भक्ति ही है । व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए कवि ने

समय-समय पर इन पदों की रचना की होगी । विष्णुपद के नाम से चर्चित ये पद जनसमाज में अधिक लोकप्रिय रहे हैं । 'आसकरण वार्ता' में इन पदों की लोकप्रियता के संकेत मिलते है ।[52] उस समय 'संगीत पदों के पूर्वाधार के रूप में विष्णुदास के विष्णुपदों के संगीत की गूँज थी' ।[53] ग्वालियर क्षेत्र में ये पद 'ध्रुपद' शैली में गाये जाते थे । इन्हीं से प्रेरित होकर जौनपुर में ख्याल गायकी का प्रारंभ हुआ ।ब्रज क्षेत्र में पहुँचकर इन पदों में कृष्णभक्ति शाखा को तथा राम भक्ति शाखा को पदों द्वारा अपने-अपने आराध्यस्तवन के लिए मार्ग प्रशस्त किया ।[54] विष्णुपदों की सही संख्या की जानकारी नही मिल पाती है। यह सम्प्रति ग्वालियर और उसके आसपास की जनता के कण्ठों में वर्तमान है ।

9. चौबीस एकादशी और एकादशी माहात्म्य :

विष्णुदास की अंतिम दो रचनाएँ चौबीस एकादशी और एकादशी माहात्म्य है। ये गद्यपरक रचनाएँ है । गद्य के विकास को जानने के लिए इन ग्रंथों का ऐतिहासिक महत्त्व है । इन ग्रंथों के माध्यम से कवि की धार्मिक प्रवृति को भी जाना जा सकता है । ये सम्प्रति अप्रकाशित है । अतः इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता ।

उपरि विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि विष्णुदास की रचनाओं को लेकर अध्येताओं में मतभेद है । पुनः ये सम्प्रति अप्रकाशित भी हैं । शेष रचनाएँ 'महाभारत ', 'स्वर्गारोहण' अथवा 'स्वर्गारोहण पर्व', 'रामायनकथा', 'रुक्मिणी-मंगल', 'सनेहलीला', बारहखड़ी' एवंविष्णुपद प्रमाणिक मानी गयी हैं । प्रस्तुत शोध प्रबंध में ये कृतियाँ ही आधार बनी हैं । विष्णुदास की कृतियों में 'मकरध्वज कथा', 'चौबीस एकादशी' और एकादशी माहात्म्य के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना मुश्किल है । इन रचनाओं को प्रायः विष्णुदास की रचना नहीं मानने के तर्क दिये जाते रहे हैं ।

उपर्युक्त चर्चित कृतियों के आधार पर विष्णुदास ने राम और कृष्ण के चरित्रों

को जनभाषा ग्वालियरी अथवा सूरपूर्व ब्रजभाषा के माध्यम से सर्वसाधारण जनता तक पहुँचाया । इस कारण उनमें नयी चेतना का संचार हुआ । विष्णुदास मूलतः प्रबंधकार कवि है । विष्णुपदों (फुटकल पदों) के अतिरिक्त सभी कृतियाँ प्रबंधात्मक हैं । वे राममार्गी और कृष्णमार्गी दोनों धाराओं के कवि है । उन क्षेत्रों में पथ-प्रदर्शक कवि हैं । उन्होंने 'महाभारत', 'श्रीमद्भागवत' और 'रामायण' को अपनी कविता का मूल उपजीव्य बनाया है। उनकी 'रामायन कथा' और 'महाभारत' अपने विषय की प्रथम रचनाएँ हैं । 'सनेहलीला' का महत्त्व भी इसी प्रकार का है ।

1. ख. । गोस्वामी तुलसीदास

कालजयी एवम् भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने भी आत्मगोपन की भारतीय परम्परा के अनुरूप ही अपने बारे में कुछ भी स्पष्ट तौर पर नहीं कहा है । इसके बावजूद विभिन्न विद्वानों द्वारा उनकी जीवनी, प्रामाणिक रचनाओं आदि पर शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत कर निश्चित मत स्थिर करने के प्रयत्न हुए हैं ।[55] उनका "जन्मवर्ष, जन्मस्थान, वंश, माता-पिता, विवाह, पत्नी, दीक्षागुरु, सम्प्रदाय, शिष्य, कृतित्व आदि विषय अनुसंधित्सुओं के लिए अब भी कल्पनोर्वर बने हुए हैं ।"[56] अस्तु, इस सम्बंध में नया कुछ नहीं कहते हुए, विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर मात्र सार संचयन प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा ।

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर स्थिर है कि तुलसीदास 'रामचरितमानस' की रचना सन् 1574 ई. (विक्रमाब्द 1631) और 'पार्वतीमंगल' की रचना सन् 1586 ई. (जयसंवत 1643) में की थी । इनके अतिरिक्त सभी परम्पराएँ सहमत हैं कि उनका शरीरान्त सन् 1623 ई. में हुआ था । इन तीन तिथियों की निश्चितता के आधार पर उनका जन्म वर्ष सन् 1532 ई. प्रायः मान लिया गया है । किन्तु उनके शरीरान्त के सम्बंध में प्रचलित दोहे के द्वितीय चरण 'असी गंग के तीर' के अन्य पाठ 'असी बयस के तीर' की संगति 'गौतम

चंद्रिका' के एक उल्लेख[57] से है । तुलसीदास का जन्मवर्ष सन् 1543 ई. और पूर्ण आयु अस्सी वर्षों को स्थिर करने के भी प्रयत्न हुए है[58] गार्सा द तासी एवं विल्सन के मतों से भी इसकी पुष्टि होती है ।[59]

तुलसीदास की रचनाओं में चित्रकूट, काशी, अयोध्या और प्रयाग के वर्णन विशेष महत्त्व के हैं । इनमें भी चित्रकूट एवम् उसके चतुर्दिक परिवेश के वर्णन में तुलसीदास की रूचि अधिक रमी है । उसमें एक विशिष्ट अन्तरंगता और सहज भावातुरता मिलती है । सम्भावना की जाती है कि वैसा होने का कारण सम्भवतः कहीं-कहीं आसपास उनका अपना गाँव या जन्म स्थान (राजापुर) होना चाहिए । अनेक विद्वानों ने चित्रकूट के निकट राजापुर को उनका गाँव स्वीकारा भी है । वे किसी निर्धन किन्तु कुलीन ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे । उनके पिता का नाम कदाचित आत्माराम और माता का नाम हुलसी था । बचपन में उनका नाम रामबोला था । वे संभवतः शैशवावस्था में ही मातृ-पितृहीन अतः अनाथ हो गये थे । इस कारण उन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी, पेट पालने के लिए अनेक कष्ट झेलने पड़े ।[60] संभवतः किसी हनुमान मंदिर की 'खोंची' से भी उनका जीवन निर्वाह हुआ । उसी क्रम में किसी 'नररूपहरि' - रामभक्त नरहरि अथवा नरहरिदास (नरहर्यानंद)[61] की कृपा प्राप्त हुई । वही उनके शिक्षा और दीक्षा गुरु भी होंगे । तुलसी ने पहली बार उन्हीं से 'सूकर खेत' (वराह क्षेत्र संभवतः अयोध्या के निकट सरयू और घाघरा के संगम पर) में रामकथा भी सुनी थी किन्तु बालपन की अचेतावस्था के कारण शायद वह पल्ले नहीं पड़ा ।[62] युवक तुलसीदास ने विवाह कर घर भी बसाया ।[63] वैवाहिक जीवन के शायद कुछ ही वर्ष बीते होंगे कि किसी आचरण विशेष पर पत्नी से फटकार पाकर या स्वयं ही प्रभावित हो तुलसी वैरागी बन गये । इस प्रकार सांसारिक बंधनों से मुक्त हो वे कुछ समय तक चित्रकूट में रामभक्ति की साधना करते रहे । बाद

में अटन करते हुए वे अयोध्या चले गए । समझा जाता है कि अटन काल में ही उनकी सूरदास से भेंट पारसोली में सन् 1569 ई. में हुई होगी । अयोध्या में रहते हुए ही उन्होंने सन् 1574 ई. में अपनी कालजयी कृति 'रामचरितमानस' का प्रकाशन[64] (लोकार्पण कुछ के अनुसार रचना का प्रारंभ) किया ।

संवत सोरह सै इकतीसा, करउँ कथा हरिपद धरि सासा ।।
नौमी भौमबार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।

'रामचरितमानस' का कुछ अंश उन्होंने काशी में भी लिखा था । बाद में उन्होंने काशी को ही अपना स्थायी निवास भी बनाया । काशी में उन्हे पर्याप्त विरोध और कष्ट भी सहना पड़ा था।[65] शायद तभी उन्होंने खीझ कर यह लिखा होगा --

क. धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारन सोऊ ।।
तुलसी सरनाम गुलामु है राम को जाको, रूचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगी कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबो को एक न दैबै को दोऊ ।।

ख. मेरे जाति-पाँति न चहौं काहूकी जाति-पाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौ काहू के काम को ।

ग. कोऊ कहै, करत कुसाज, दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै, राम को गुलामु खरो खूब हैं ।[66]

मसजिद में सोने की बात कहकर व्यंजना में कह दिया है कि वह राम का भक्त है अतः राम के घर 'मसजिद' (राम का जन्म स्थान जो संभवतः उस समय तक मसजिद में परिवर्तित कर दिया गया था) में सोयेगा । अपने अंतिम दिनों में तुलसी काशी में ही थे । वे रूग्ण हो गये थे । 'हनुमान बाहुक' में उनकी रूग्णता का पता चलता है । काशी में ही उनका शरीरान्त सन् 1623 ई. में हुआ था ।

तुलसीदास ने अयोध्या, काशी, चित्रकूट, प्रयाग, जगन्नाथपुरी आदि अनेक तीर्थों का भ्रमण किया था । तीर्थों आदि में विभिन्न महात्माओं, विद्वानों, संतों आदि की संगति आदि से उनके व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि हुई थी । अटन के क्रम में उन्हें जनजीवन को निकट से देखने-सुनने-समझने-परखने आदि का पर्याप्त अवसर मिला था । उनके शुभचिंतको, प्रेमियों आदि में नाभादास, सूरदास, अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराजा मानसिंह, मधुसूदन सरस्वती, टोडरमल खत्री (काशी), मेधाभगत जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम परिगणित होते हैं । उनके शिष्य-प्रशिष्य भी होंगे, पर अभी तक एकमात्र प्रत्यक्ष शिष्य रामू द्विवेदी का ही पता चलता है । उन्होंने 'रामचरितमानस' का संस्कृत में 'प्रेमरामायण' के नाम से अनुवाद भी किया था ।[67] विनयमोहन शर्माजी ने उनके एक अन्य शिष्य महाराष्ट्रीय संत जसवंत का भी उल्लेख किया है ।[68]

सारतः कहा जायेगा कि तुलसीदास के सम्बन्ध में अधिकांश बातें अनुमानाश्रित हैं । उनका जीवन विष्णुदास की तरह सुखमय नहीं, अधिक कष्टमय था । बचपन में माता-पिता के प्यार से वंचित, समाज द्वारा अवहेलित तुलसी को यौवन में भी पत्नी से शायद निराशा ही मिली । अतः स्वाभाविक था कि अनाथ तुलसी राम को पाकर सनाथ हो गये । वे रामभक्त थे, अपने को राम का गुलाम कहते थे । 'भली भारत भूमि' और 'सुकुल' में जन्म लेने के कारण भारत की दीनहीन स्थिति से उनका चिन्तित होना भी लाजिमी था। तभी वे समाज की दीनता को समाप्त कर उसे स्फूर्ति प्रदान करने के लिए विभिन्न भक्ति-पंथों में रामभक्ति को राज-डगर (राजमार्ग) के रूप में प्रचारित करने का कार्य साहित्य साधना के द्वारा करने लगे । राम के उद्घोष 'निसिचरहीन करौं मही' के रूप में उन्होंने विधर्मो शासकों को जहाँ चुनौती दी, वहीं 'दरिद दसानन', 'मोहरूप रावण' और 'राजरोग-रावण' को समाप्त करने का आश्वासन दिला कर समाज की आर्थिक और नैतिक धुरी को भी स्थिर करने की दिशा में पहल की । अटनशीलता से देश और साधारण जन

की वास्तविक स्थिति का उन्हें ज्ञान तो हुआ ही, उनके धार्मिक और व्यवहारिक ज्ञान में भी वृद्धि हुई । वे सरलचित, सदाचारी, सुशील और सब के हितचिंतक थे। पाखण्डियों आदि के वे घोर विरोधी थे । साधु-संतों-महात्माओं के प्रति उनमें अपरिमित श्रद्धा थी। स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा को वे सर्वोपरि मानते थे । दीनहीन व्यक्तियों, किसानों आदि की दुर्दशा देख वे द्रवित हो उठते थे । उनकी दृष्टि में सभी प्रकार के कष्टों को समाप्त करने वाला राम का नाम ही तारक मंत्र था । उनका पूरा जीवन राममय था और सारी कृतियाँ भी राममय हैं । श्री मधुसूदन सरस्वती की तुलसीदास एवं उनकी कविता के सम्बन्ध में टिप्पणी है --

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरूः ।
कवितामञ्जरी याति रामभ्रमरभूषिता ।।

अर्थात् इस काशी रूपी आनंदकानन में तुलसीदास चलता-फिरता तुलसी का पौधा हैं । उनकी कविता रूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर है, जिस पर श्रीरामरूपी भ्रमर सदा मँडराया करते हैं ।

1. ख. II तुलसीदास की कृतियाँ

तुलसीदास की कुल कृतियाँ कितनी है, इस बारे में भी मतानैक्य है। विभिन्न अध्येताओं ने पर्याप्त अनुशीलन एवं अनुसंधान कर उनकी कृतियों के सम्बन्ध में निष्कर्ष प्राप्त किये हैं। तुलसीदास के नाम से प्राप्त होनेवाली कृतियों की संख्या 53 तक गिनायी जाती है जिनमें उनचालीस अप्रमाणिक, एक अर्द्धप्रामाणिक और शेष बारह प्रामाणिक मानी जाती हैं। उनकी तालिका उदयभानु सिंह ने प्रस्तुत की है।[69] प्रामाणिक कृतियाँ अग्रांकित हैं--

1. वैराग्य संदिपनी	3. रामलला नहछू
2. रामाज्ञा प्रश्न	4. रामचरितमानस

5.	जानकी मंगल	9.	विनयपत्रिका
6.	पार्वती मंगल	10.	दोहावली
7.	गीतावली	11.	बरवै रामायण
8.	कृष्णगीतावली	12.	कवितावली (हनुमान बाहुक सहित)

इनमें 'हनुमान बाहुक' को 'कवितावली' से स्वतंत्र मानने पर प्रामाणिक रचनाओं की संख्या तेरह ठहरती है ।

तुलसीदास की कृतियों पर सम्मिलित रूप से या अधिकांश कृतियों पर स्वतंत्र रूप से अलग-अलग अथवा विभिन्न भाषाओं में प्रणीत समान प्रकार की कृतियों के साथ अनेक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये जा चुके हैं ।[70] अतः, यहाँ कृतियों पर अत्यंत संक्षेप में आवश्यक परिचय भर उपस्थित किया जाता है । यथा --

1. वैराग्य संदिपनी : यह बासठ छंदों की मुक्तक रचना है । वंदना के अतिरिक्त इसमें संत-स्वभाव, संत-महिमा और शान्ति का वर्णन हुआ है । इसके छन्दों में वैराग्यभाव की प्रधानता है । इसकी भाषा ब्रज मिश्रित अवधी है ।

2. रामाज्ञा प्रश्न : कहा जाता है कि अपने ज्योतिषी मित्र गंगाराम के लिए शकुन विचार हेतु 'रामाज्ञा प्रश्न' की रचना तुलसीदास ने की थी । 343 दोहों की यह रचना सात सर्गों में विभाजित है । इसमें कथा है 'रामचरितमानस' वाली ही, पर कई स्थलों पर उससे भिन्नता भी है ।

3. रामलला नहछू : यह सोहर छंद में रचित है । इसमें राम के नखच्छेदन (विवाह के अवसर पर सम्पन्न किये जाने वाले) संस्कार का वर्णन है । अवधी में प्रणीत इस सोहर का गायन विभिन्न संस्कारों के सम्पादन के समय किया जाता है ।

4. रामचरितमानस : तुलसी की कृतियों का मुकुटमणि है रामचरितमानस । उदयभानु सिंह के अनुसार - "रामचरितमानस हिन्दी काव्यमाला का सुमेरू है । वह एक अनूठा

महाकाव्य है जिसमें भक्ति की भूमि पर इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, कथा काव्य, चरितकाव्य और लोकमानस का अद्‌भुत समन्वय किया गया है । उसका नायक परब्रह्म परमेश्वर है । उसकी पुरातन प्रतिपाद्य वस्तु में नवीनता की कमनीय कांति है । उसका अंगीरस भक्तिरस है । उसमें सुन्दर कवित्व और शिव मोक्षतत्त्व की अलौकिक द्विवेणी है ।"[71] इसमें राम के जन्म से लेकर उनकी पूरी कथा वर्णित है । कथानक संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । कथा-विभाजन एवं ग्रंथ रचना की दृष्टि से स्वयं कवि का कथन[72] महत्त्वपूर्ण है। उससे विदित होता है कि रामचरितमानस के सातो काण्ड जहाँ एक दूसरे से सम्बद्ध और अविच्छिन्न हैं, वहीं वे स्वतंत्र रूप से सात प्रबंध भी है -- 'सप्तप्रबन्ध सुभग सोपाना' । प्रत्येक के सोपान के नाम भी प्राप्त होते हैं --

1. बालकाण्ड - प्रथम सोपान - सुख सम्पादन सोपान
2. अयोध्याकाण्ड - द्वितीय सोपान - विज्ञान वैराग्य सम्पादन सोपान
3. अरण्यकाण्ड - तृतीय सोपान - विमल वैराग्य सम्पादन सोपान
4. किष्किन्धा काण्ड - चतुर्थ सोपान - विशुद्ध संतोष सम्पादन सोपान
5. सुन्दरकाण्ड - पंचम सोपान - ज्ञान सम्पादन सोपान
6. लंकाकाण्ड - षष्ठ सोपान - विमल विज्ञान सम्पादन सोपान
7. उत्तरकाण्ड - सप्तम सोपान - अविरल हरिभक्ति सम्पादन सोपान

इन सोपानों में प्रथम, द्वितीय और पंचम सोपानों के भिन्न नाम भी मिलते हैं । यथा - क्रमशः प्रथम-विमल संतोष सम्पादन, द्वितीय - प्रेम वैराग्य सम्पादन और पंचम - विमल ज्ञान सम्पादन । काशिराज संस्करण में ये नाम प्रयुक्त भी हुए हैं । प्रत्येक सोपान सर्गबद्ध है जो प्रसंग - परिवर्तन द्वारा संकेतित है । इसकी सर्गबद्धता की पुष्टि 'तेरिज रामायण'[73] से तो होती ही है, तुलसीदास के शिष्य रामू द्विवेदी कृत 'प्रेमरामायण' नामक पद्यात्मक संस्कृत अनुवाद (संवत् 1662 वि. के पूर्व) से भी होती है । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

का मत हे कि -- "जो 'मानस' को महाकाव्य पद्धति का ग्रंथ 'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना' से सोपान को ही सर्ग समझ कर नहीं मानते, वे भ्रम में हैं।"[74]

'रामचरितमानस' वाल्मीकि-रामायण का पर्याप्त ऋणी हैं, उसे ही इसका मूल उपजीव्य ग्रंथ मानना शायद संगत नहीं है । इस प्रकार का भ्रम फैलाने में नाभादास की उक्ति 'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भये' ने बड़ी महती भूमिका निभायी है । इसके मूलस्रोत (या उपजीव्य) की ओर स्वयं तुलसी ने ग्रंथ के आरम्भ और अंत में संकेत किया है ।[75] उनके संकेतों से अनुमान होता है कि 'रामचरितमानस' का मूल उपजीव्य ग्रंथ कुछ और हैं । भगवती प्रसाद मिश्र ने 'भुशुण्डि रामायण' को उसका उपजीव्य माना है।[76] तुलसीदास 'हनुमन्नाटक' के और 'अध्यात्मरामायण' के भी पर्याप्त ऋणी हैं । जो भी हो, इसमें दो मत नहीं कि 'रामचरितमानस' जनसाहित्य और विद्वत्साहित्य दोनों का मानक है। वस्तुतः "भारतीय संस्कृति की जैसी अभिव्यक्ति प्राचीन काल में व्यास प्रणीत पुराणों में हुई है, वैसी ही अभिव्यक्ति मध्यकाल में तुलसीदास प्रणीत 'रामचरितमानस' में भी हुई है।"[77] इस की भाषा शुद्ध, परिष्कृत, परिमार्जित साहित्यिक अवधी है ।

5. जानकी मंगल : कुल 216 छंदों में पूर्ण हुए इस लघु खंडकाव्य में राम-जानकी के विवाह का वर्णन हुआ है । इसमें वैवाहिक संस्कारों का बड़ा विशद ओर प्रीतिकारक वर्णन हुआ है । यह काव्य लोकजीवन के अधिक निकट है । इसकी भाषा अवधी है ।

6. पार्वती मंगल : पार्वती और शिव के विवाह का व्योरेवार वर्णन करने वाले इस लघु काव्य में कथा सर्गों में विभाजित नहीं है । वैवाहिक रीतियों, व्यवहारों आदि के इसमें बड़े सूक्ष्म वर्णन हुए हैं । रचना की भाषा पूर्वी अवधी है । लोकजीवन के अधिक निकट होने के कारण उसकी अतीव लोकप्रियता है ।

7. गीतावली : यह गीतिबद्ध मुक्तक काव्य है जिसमें राम विषयक गीतों को रखा गया

है । सभी गीत रागबद्ध तो हैं ही, उसमें कथा का आयाम 'रामचरितमानस' से व्यापक भी है । राम के जन्म से लेकर सीता-निर्वासन और लवकुश के बालचरित्र के विविध प्रसंग भी इसमें गेय बने हैं । प्रतीत होता है मानों सूर के कृष्ण काव्य से प्रेरित होकर तुलसी ने भी राम के बाल जीवन के प्रसंग को इसमें विस्तार दिया है । इसमें भी कथा सात कांडो में विभाजित है । गीति प्रवाह और माधुर्य उत्तम है । रचना की भाषा साहित्यिक ब्रज है ।

8. कृष्णगीतावली : इसमें ब्रजभाषा में रचित कृष्णलीला के कुल 61 पद संकलित हैं । कृष्ण की बाललीला और उनकी तोतली बोली से माता यशोदा के हृदय के आनंद एवं गोपी-उद्धव संवाद तक की घटनाएँ इसमें संक्षेप में गेय बनी हैं । इसमें वात्सल्य और श्रृंगार रस का उत्तम परिपाक हुआ है ।

9 विनयपत्रिका : नाम से ही स्पष्ट है कि कलियुग के कष्टों से त्रस्त तुलसीदास ने राम की शरण प्राप्त कर उनके पास विनय के रूप में अपनी पत्रिका प्रस्तुत की है । इसमें कुल 279 पद हैं । जिनमें प्रथम 64 पदों में विभिन्न देवी-देवताओं की वंदना है । तदुपरान्त पदों के माध्यम से तुलसीदास ने आत्मनिवेदन किया है जिसमें उसकी दीनता-हीनता और राम की महत्ता, उदारता, पतितपावनता, शरणागतवत्सलता आदि वर्णित है । तुलसीदास के आत्मनिवेदन में लोकमंगल का भाव निहित है । इसकी रचना गीतशैली में हुई है एवं पत्रिका की योजना अर्थात् काव्य रचना की शैली राज दरबारों में दी जानेवाली अर्जी जैसी है । इसकी भाषा साहित्यिक ब्रज भावानुरूपिणी एवं प्रांजल है । भक्तों की दृष्टि में यह तुलसीदास के भक्ति सिद्धान्त का ब्रह्मसूत्र है ।[78] तुलसीदास की कृतियों में 'रामचरितमानस' के पश्चात् 'विनयपत्रिका' को ही सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है ।

10. दोहावली : विभिन्न समयों में प्रणीत कुल 573 दोहों का संग्रह 'दोहावली' नाम से प्रकाशित है । इसका वर्ण्य विषय अत्यंत विस्तृत है । इसमें रामनाम की महिमा, राम के प्रेम की महत्ता, राम की शरणागत वात्सल्यता, भक्त-लक्षण, साधु-असाधु लक्षण,

सगुन-निर्गुण की पारस्परिकता से लेकर राजनीति, समाजनीति, ज्योतिष आदि अनेक प्रासंगिक विषय वर्णित हैं । यह ब्रजी में रचित सरल, सहज और सफल कृति है ।

11. बरवै रामायण : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' के दूसरे भाग में तीसरा ग्रंथ 'बरवै रामायण' है । उसमें कुल 69 छंद है । लगता है मानों वह अश्रृंखलित संग्रह ग्रंथ है । डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा सम्पादित 'बरवै रामायण' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित है जो कुल 405 छंदों में पूर्ण हुआ है । सभा द्वारा प्रकाशित पाठ भी उसमें परिशिष्ट 'क' में प्रकाशित है । संपादक डॉ. रामकुमार वर्मा ने उसकी भूमिका में आवश्यक विवेचन भी प्रस्तुत की है । यहाँ इतना ही अलम् है कि उसमें रामकथा 'मानस' के अनुरूप ही सात कांडों में श्रृंखलाबद्ध रूप में वर्णित हुई है । भाषा शैली और प्रवाह की दृष्टि से रचना उत्तम है ।

12. कवितावली : कवितावली वस्तुतः विभिन्न समयों में रचित 183 कवित्तों (हनुमान बाहुक) के 44 कवित्तों को जोड़ने पर कुल छंदों की संख्या 227 (183+44) का संग्रह ग्रंथ है । 'मानस' की तरह ही उसके कवित्त भी सात काण्डों में विभाजित हैं । अरण्य और किष्किन्धा काण्डों में केवल एक-एक कवित्त हैं, किष्किन्ध काण्ड का कवित्त भी सुन्दरकाण्ड का ठहरता है । "वस्तुतः 'कवितावली' रामकथा के खण्डचित्रों की चित्रशाला है जिसके साथ कवि ने तत्कालीन समाज और जीवन को अधिक प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया है।"[79] उत्तरकाण्ड के कवित्तों में कवि की यथार्थवादी दृष्टि अधिक पैनी है ।

13. 'हनुमान बाहुक' : जिसे 'कवितावली' का प्रायः परिशिष्ट माना जाता है, को 44 कवित्तों की हनुमत्सम्बन्धी एक स्वतंत्र कृति मानना अधिक संगत है । कई विद्वानों के विचार वैसे हैं भी । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार -- "कहते हैं कि तुलसीदास को जब प्लेग हो गया था, उसी अवसर पर इस स्तुतिकाव्य की रचना की गयी थी । इसमें प्लेग के बदले 'बरतोर' का स्पष्ट उल्लेख है -- 'तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस

फूटि-फूटि निकसत लोन राम राय को' (41/1)। इसके अतिरिक्त 'बाहुशूल' और 'बाहुक' शब्दों का भी इसके लिए व्यवहार है । इसका तात्पर्य बाहु में होनेवाली उत्कट पीड़ा है।''[80] कवि ने 'बाहुक' शब्द से पीड़ा का ही अर्थ लिया है । 38 वें छंद में सम्पूर्ण शरीर की पीड़ा का उल्लेख कर 39 वें छंद में उसके शमन का उपाय श्रीराम-लक्ष्मण का स्मरण करना बताया गया है । 4042 वे छंद में बरतोर के फोड़ा से मुक्ति हेतु राम से प्रार्थना की गयी है एवं 43-44 वे छंदों में एक साथ ही राम-शिव-हनुमान से रोग-सिन्धु को गोपद जल करने की प्रार्थना की गयी है । 'मानस' की तरह ही 'बाहुक' की भी मान्यता मंत्र-सिद्ध काव्य के रूप में रही है । तभी इसके भी अनेक भाष्य लिखे गये है ।''[81] हिन्दी में प्रणीत हनुमान की स्तुति का यही पहला काव्य है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में तुलसीदास की उपरि विवेचित प्रामाणिक पुस्तके ही आधार रूप में स्वीकृत हुई हैं ।

1. ग कृतियों के कारक तत्त्व

विष्णुदास और तुलसीदास के जीवन, व्यक्तित्व और कृतियों का आवश्यक परिचय देने के उपरान्त उन कारक तत्त्वों अर्थात् परिस्थितियों और प्रेरक तत्त्वों पर भी किंचित् विचार करना आवश्यक है जिन्होंने उनके कविरूप को समृद्ध होने में योगदान किया । अस्तु, आगामी पृष्ठों में युगीन परिस्थितियाँ और प्रेरक स्रोत शीर्षकों के अन्तर्गत वे विचारणीय बने हैं ।

क. युगीन परिस्थितियाँ

1. ग. I राजनीतिक परिस्थिति

आलोच्य कवियों में विष्णुदास भक्त की अपेक्षा संसारी व्यक्ति और ग्वालियर नरेश महाराज डूँगरेन्द्र सिंह के आश्रित कवि थे । राजनीति के प्रपंच में भले ही नहीं पड़े हो, पर राजनीति को उन्होंने निकट से देखा और समझा था । तुलसीदास भक्त थे,

राजनीति से पूरी तरह दूर थे । उन्हें राजनीति के प्रपंच ने भले ही उलझाया नहीं हो, पर राजनीति से पूरी तरह उनकी असम्पृक्ति असम्भव थी । कहा जाता है कि नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना उनका स्नेही था । असम्भव नहीं कि खानखाना बनारस का हाकिम (सन् 1589-91) रहने के समय उनका तुलसीदास से सम्पर्क हुआ हो । तुलसीदास जैसे संतो को सीकरी से काम भले ही नहीं रहा हो, पर सीकरी संतो-भक्तों को भी छोड़नेवाली नहीं थी ।

आलोच्य कवि द्वय में विष्णुदास का समय पंद्रहवी शताब्दी पड़ता है और तुलसीदास का सोलहवीं-सत्रहवीं (प्रथम दो दसक) शताब्दी । विष्णुदास भक्तिकाल की आरम्भिक सीमा पर पड़ते हैं और तुलसीदास उसके प्रौढ़ि प्रकर्ष की अवधि में । उस समय सैयद (सन् 1414-1451 ई.), लोदी (सन् 1451-1526 ई.), मुगल (1526-1539 ई.), सूरीवंश (1540-1554 ई.), मुगल (पुनः 1555-1627 ई. जहागीर के शासन तक) हिन्दी क्षेत्र के शासक थे । अपवाद स्वरूप कई छोटे-छोटे स्वतंत्र हिन्दू शासक भी थे । उस समय विष्णुदास के आश्रयदाता ग्वालियर नरेश डूँगरेन्द्र सिंह उन्हीं में से एक थे । उस समय पूरा क्षेत्र युद्ध की राजनीति से आक्रान्त था । सुल्तानों की कौन कहे, अकबर-शासन के भी आरम्भिक दस वर्ष प्रायः युद्धपूर्ण ही थे । कहना चाहिए कि लगभग 1560 ई. के पहले इस्लाम का फौजी शासन था जिसे अकबर ने इस्लामी राजतंत्र का रूप दिया था । विष्णुदास का समय सैयद और लोदी शासनकाल में पड़ता है । उन्होंने उसे देखा समझा था । शासक प्रजा का ध्यान नहीं रख अपनी सुख-सुविधा की चिन्ता करता था । विषम राजनैतिक परिस्थिति ने अत्याचार पीड़ित जनता में धार्मिक रूढ़ियों, व्रत आदि के प्रति विश्वास जगाया था । 'रामायन कथा', 'महाभारत', 'रूक्मिणी मंगल' आदि रचनाओं द्वारा उनमें आत्मविश्वास बढ़ाने का काम किया ।

तुलसीदास अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में थे । उनके समय में

इस्लाम का फौजी शासन अकबर के प्रयत्नों से इस्लामी राजतंत्र में बदल अवश्य गया था। "मुसलमान शासक बदलते अवश्य रहे, किन्तु प्रभुसत्ता निर्द्वन्द्व न होने के कारण राजनैतिक मत्स्य न्याय से उत्पन्न सामाजिक अस्तव्यस्तता, आर्थिक विपन्नता, असुरक्षितता अनिश्चयता के कारण आस्तिकता का पनपना बढ़ना स्वाभाविक था । मात्स्य न्याय तो अकबर के समय भी चलता रहता है, पर इस्लामी फौजी शासन से जनता राहत पाती है । फौजी शासन की परिणति इस्लामी राजतंत्र में होती है और अकबर की प्रच्छन्न उदारता ने पूर्व आक्रामक राजनीति को कूटनीति का रूप दिया । इस्लामी पंजा-'दीन-ए-इलाही' जामा बना । तीर्थयात्रा कर और 'जजिया' समाप्त हुए, पर हिन्दू बेटियों को हरम की हूर बनाने और मीना बाजार लगाने की प्रक्रिया में तीव्रता आ गयी । कई शताब्दियों के संघर्ष के बावजूद तुर्क-अफगान जो न कर सके, अकबर ने मीठे जहर के प्रयोग से वह सब करने में सफलता पा ली । विश्व इतिहास में इस्लामी शासन का यह सर्वथा घिनौना पृष्ठ है जिसमें प्रजा के धर्म स्थानों, मंदिरों पूज्य विग्रहों के नष्ट करने, धार्मिक नेताओं को तलवार के घाट उतारने, जीवित जलाने या दीवार में चुनवा देने के उदाहरण मिलते हैं । फिर भी हिन्दू जाति उसकी धार्मिक-सांस्कृतिक स्थिति बनी रही, यह सुखद आश्चर्य है ।[82]

तत्कालीन इस्लामी शासन ने राजनैतिक लक्ष्य की पूर्ति करने और उसे स्थिर रखने के लिए धर्म को साधन बनाया । तभी उस समय अनेक हिन्दू-मंदिर ध्वस्त किये गए एवं उनके स्थान पर उनकी ही सामग्री से अनेक मकबरे और मस्जिद खड़े किए गये ।[83] स्वार्थवश अनेक हिन्दू राजाओं ने भी अपनी बेटियों को दिल्लीश्वरों के हरम में पहुँचाया ।[84] अधिसंख्या प्रजा हिंदू थी । संभवतः वे विधर्मो होने के कारण ही शोषण के अधिक शिकार हुए और उनकी आर्थिक हालत बिगड़ती गयी ।[85] तत्कालीन राजनीति ने अपनी स्थिरता के लिए समाज को हर प्रकार से कमजोर बनाने की चेष्टा की । उस समय धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक अवस्थाएँ इस्लामी राजनीति का आनुषंगिक परिणाम थी ।

हिन्दू शक्ति राजनैतिक नेतृत्व देने में अक्षम रही । परिणामतः जनशक्ति विभिन्न रूपों में उभरी । तत्कालीन कवियों धर्माचार्यो, संतो-भक्तों ने आगे बढ़ विदेशी और विधर्मी झंझावात से भारत के सांस्कृतिक (अतः राजनैतिक भी) उतराधिकार की रक्षा में तत्पर हुई। उनके वचनामृत ने ही सामान्य जन को अडिग रहने की प्रेरणा दी । तात्पर्य यह कि राजनैतिक मात्स्य-न्याय में इस्लामी शक्ति विजयिनी रही, इस्लाम नहीं । "हिन्दू जाति-धर्म-संस्कृति की अदम्य जिजीविषा के समक्ष इस्लाम को पराजित होना पड़ा । 'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ....' की उक्ति ही मानों स्वधर्म रक्षण के निमित्त शक्तिशाली भक्ति-आंदोलन में परिणत हुई,"[86] जिसकी प्रारंभिक सीमा पर हैं विष्णुदास ओर विकास की पूर्णता पर हैं तुलसीदास । दोनों ने भगवान राम और कृष्ण के कथावृत्तों पर आधारित रचनाएँ कर राजनैतिक पराभव के ऊपर सांस्कृतिक विजय की मिथकीय परिणति तो की ही, तुलसीदास का 'रामचरितमानस' युगीन राजनैतिक स्थिति से मुक्ति के लिए किंचित् उपाय भी अपने ढंग से सुझाता है । उस समय की राजनीति के परिणाम स्वरूप हिंदूओं में सरक्षणशीलता और संकीर्णता भले ही बढ़ी हो, पर प्रतिरोध की प्रेरणा से ही उदार समन्वय और नवीन संयोजन के लिए मार्ग भी खुला ।[87] दोनों आलोच्य कवियों की रचनाएँ उक्त मार्ग के ही दो घटक हैं ।

1. ग. II सामाजिक परिस्थिति

जैसा कि ऊपर कहा गया, अकबर-पूर्व इस्लामी शासन फौजी शासन था । उसका आधार था आतंक । कई शासकों ने तो घोषणा कर रखी थी कि -- "प्रजा को अपने भय से आतंकित नहीं करने वाला सुलतान होने के योग्य नहीं है ।[88] अकबर पूर्व शासक प्रायः वैसे ही थे । अकबर उदार था, पर उसने धन और पद के लोभ में अनेक हिन्दूओं को इस्लाम में धर्मान्तरित किया । समाज मूलतः दो वर्गों में विभाजित था -- हिन्दू और मुसलमान । धर्मभेद से सामाजिक विषमता की दीवार खड़ी हो गयी थी । शासकों की

कृपा पाकर मुसलमान समाज हिन्दू समाज के 'कुफ्र' को तोड़ने में लगा रहता था । जौनपुर के वर्णन में विद्यापति[89] ने और पंजाब में गुरु नानक[90] ने अल्लाउद्दीन (1508) और बाबर (1526) की बर्बरता के आँखों देखे वर्णन किये हैं । हिन्दू राजे एवं क्षत्रिय लोग 'कलि-कुचाल' और 'दरिद-दसानन' से सामान्य जन को मुक्ति दिलाने में अक्षम रहे, इसलिए भी साहित्यकारों - संतो-भक्तों ने युग के यथार्थ को मिथकीय आदर्श-पौराणिक राम, कृष्ण के कथावृत्त और महाभारतीय आदर्श में उपस्थित कर निराश जनता को आशान्वित किया । तभी विष्णुदास और तुलसीदास के राम भारत की उत्तर-दक्षिण धूरी को एक करने के क्रम में वानर, रीछ, गृध आदि वन वासियों तक को संगठित करते हैं और विष्णुदास एवं सूरदास के कृष्ण 'गोकुल के हरकारे मात्र नहीं, ग्रामीणों के रंजक और रक्षक 'कान्ह-दल' के संगठक, नेता गिरिधारी और दुष्ट संहारक[91] भी हैं । आलोच्य कवियों के राम-कृष्ण मात्र परब्रह्म नहीं, राष्ट्रनेता, दिग्विजयी और उपदेशक भी हैं । इसी से सामान्य जन का "नैतिक बल अपराजेय रहता है । जनता का दुःख, दारिद्रय और पाप (गलत आचरण) ही इनकी रचनाओं में त्रिताप (दैहिक, दैविक और भौतिक ताप) बन गया है। इस प्रकार आलोच्य कवियों के भक्ति काव्य यथार्थ राजनीति से दूर रहकर भी परोक्ष रूप से समाज की रक्षा में जुटता है । राम काव्य में वर्णित राक्षस और असुर (एवं महाभारत में वर्णित कौरव पक्ष) विदेशी और विदेशी शोषक-शासक के ही मिथकीय रूप हैं।''[92]

पारम्परीण समाज यद्यपि हिन्दू नाम से जाना जाता था, पर उसमें भी आधारगत बहुत भेद था । विदेशियों को आत्मसात करने एवं आचार भ्रष्टों को स्वीकार नहीं करने के कारण समाज का आन्तरिक संगठन असम्बद्ध और शिथिल हो गया था । उसकी व्यावहारिकता छोटे-छोटे पंथ - उपपंथों और छूआछूत विषयक विधि निषेधों तक सीमित हो चुकी थी । उस पर इस्लामी पंजा उसे और झकझोर रहा था । धार्मिक दृष्टि से समाज

भले ही हिन्दू और मुसलमान, इन दो वर्गों में विभाजित था, पर सामाजिक मर्यादा और आर्थिक व्यावसायिक सम्पन्नता की दृष्टि से उसके तीन स्पष्ट वर्ग थे -- (क) राजा एवं राज्याधिकारी वर्ग, (ख) सामान्य जनता और (ग) साधु समाज । इनमें राजे और राज्याधिकारियों (मुसलमान और हिन्दू) दोनों का समाज में अधिक बोलबाला था । नवाब, जमींदार, सूबेदार, सामन्त आदि की स्थिति अच्छी थी । उनकी आय मुख्यतः जमींदारी और कृषि पर निर्भर थी या शासकीय विभाग में होने के कारण वे वेतनभोगी थे । युद्ध व्यवसायी भी राजकोष से वेतन एवं जीविका के लिए साधन प्राप्त करते थे ।

दूसरा वर्ग था किसानों, व्यवसायियों पुरोहितों (ब्राह्मण, सैयद आदि) कलाकारों, दस्तकारों, मजदूरों, वंशोच्चारकों -- लेखकों, गायको-नर्तकों आदि का तुलसी काव्य में उनके विस्तृत चित्र अंकित हुए हैं । प्रथम वर्ग इनका न केवल आर्थिक वरन् दैहिक शोषण भी करता था। समाज की दुर्दशा इन्हें अधिक झेलनी पड़ती थी । इतिहासकार डॉ. ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में -- "गरीब माता-पिता अपने बच्चों को रोटियों पर नौकर रख देते थे और कभी-कभी उन्हें बेचकर गुलाम बना देते थे । .... व्यवसाय का यह हाल था कि कुछ लोग अपने रोजगार धन्धे छोटे-छोटे पैमानों पर श्रमजीवियों के समान अपनी गुजर-बसर करते थे और कुछ अकबर के द्वारा स्थापित कारखानों में, जिनमें कुछ कीमती वस्तुएँ तैयार करायी जाती थी, मजदूरी कर अपना पेट पालते थे, पर यह कार्य इतनी भारी जनसंख्या के लिए पर्याप्त नहीं था ।"[93] फलतः दुर्भिक्ष होने पर त्राहि मच जाती थी । सन् 1555-56, सन् 1573-74 और सन् 1595-98 तक हुए तीन दुर्भिक्षों और महामारियों के तुलसीदास प्रत्यक्ष दर्शक थे । सामान्य जन की दुर्दशा देखते हुए प्रथम वर्ग के लोग तटस्थ हो अपने सुखाभिलाष के प्रति समर्पित रहते थे ।[94] सामान्य जन की पुकार 'कहाँ जाई का करी' सुनकर एवं उनकी दशा देखकर तुलसीदास विचलित हो उठते थे --

दरिद दसानन दबाई दुनी, दीनबन्धु ।

दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ।।[95]

विष्णुदास एवं तुलसीदास के कलि-वर्णनो[96] में यद्यपि पौराणिक छाप है तब भी उनके धरातल यथार्थ हैं ।

तीसरा वर्ग है साधु समाज का । वे सामाजिक जीवन से मुँह फेर कर धार्मिक आध्यात्मिक जीवन के प्रति उन्मुख रहते थे । आर्थिक दृष्टि से मजबूर या पारिवारिक जीवन से ऊबने वाले भी साधु बन जाते थे । इनमें अधिकांश नाम मात्र के ही, दिखावे के लिए ही साधु होते थे । उनसे धार्मिक पाखंड को बढ़ावा मिलता था । तुलसीदास ने वैसे साधुओं पर पर्याप्त टिप्पणियाँ की है । साधु से चोर तक और राजा से बाजीगर तक भार किसानों पर था[97] और वे घबराकर दिशाहारे की तरह देवताओं को गलियाँ तक देते थे।[98]

नारियों की स्थिति अति दयनीय थी । राजा एवं राजन्यवर्ग के लिए वह वासना की वस्तु बन चुकी थी । महफिलो में नर्तकियों, वेश्याओं का जमघट बढ़ने लगा था । सौन्दर्यपासना वासनात्मक लिप्सा बन चुकी थी । इसी कारण नारी को विश्वास होने लगा था कि संसार में नारी रूप में जन्म लेना ही बेकार है ।[99]

खान-पान, रीति-रिवाज की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमान में पर्याप्त भेद था । शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था । शिक्षा केन्द्र मुख्यत मठ-मंदिरों या गुरू गृह थे । वे मूलतः गुरू दक्षिणा या कभी कभार सामंती अनुदान पर चलते थे । शिक्षा की योग्यता गुरू की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती थी । अतः गुरू का असाधारण महत्त्व था । इस प्राचीन पद्धति के साथ ही मदरसों में अरबी फारसी भी पढ़ायी जाती थी । टोडरमल द्वारा सरकारी काम काज की भाषा फारसी घोषित किये जाने के पश्चात् लगान-विभाग के छोटे-छोटे पदों तक की नौकरी पाने के लिए हिन्दू लड़के भी फारसी पढ़ने लगे थे । मुगल शासन में राजभाषा फारसी बना दी गयी थी । फलतः प्राचीन गुरूओं की जगह मौलवी और हाफिजो की पूछ बढ़ गयी थी । पुराने टोल, मठ, आश्रम आदि की जगह मदरसों की संख्या बढ़ने

लगी थी । माता-पिता भी बच्चों को वैसी शिक्षा पाने के लिए प्रोत्साहित करने लगे थे। उसी कारण तुलसीदास ने 'पेट की पढ़त'[100], के प्रति टिप्पणी[101] की है ।

उपरिचर्चा से पता चलता है कि आलोच्य कवियों के समय समाज की अवस्था निराशापूर्ण थी । अकबर के समय से उसमें किंचित् सुधार हुआ था, पर शायद अमले-पटवारियों की मनोवृत्ति में अन्तर कम ही आया था । हिन्दू समाज में आन्तरिक ऐक्य और संगठन का अभाव था । शासक वर्ग का अधिक शिकार हिन्दू वर्ग ही बनता था । मुस्लिम जीवन में अधिकांश तथा उसके प्रभाव कुछ अच्छी थी । मुस्लिम जीवन में अधिकांश तथा उसके प्रभाव में जानेवाले कुछ हिन्दू जीवन में अंशतः असंयम, सम्पतिहरण, विलासिता, मादक द्रव्य सेवन आदि कुरीतियों का बोलबाला था । समाज-व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता थी । विष्णुदास और तुलसीदास जैसे कवियों ने सामाजिक परिवर्त्तन के लिए 'श्रुति सम्मत पथ' का अनुसरण करना आवश्यक माना । इस दृष्टि को बढ़ावा देने के लिए दोनों ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक मर्यादाएँ स्थापित करने के लिए पर्याप्त संकेत किये हैं ।

1. ग. III धार्मिक परिस्थिति

आलोच्य कवि द्वय हिन्दू थे । इस कारण उनकी रचनाओं में हिन्दूओं की धार्मिक स्थिति के सम्बन्ध में ही बातें मिलती हैं । हिन्दूओं की सनातन धार्मिक मान्यताएँ मुख्यतः पाँच मानी गयी हैं --

ईश्वरैक्यं पुनर्जन्म पुरुषार्थेक्यनिष्ठता ।
साधनानामनेकत्वं सर्वभूतन हितेच्छुता ।।

आलोच्य कवियों के समय अर्थात् मध्यकाल में हिन्दू जन समाज भी स्पष्टतः दो वर्गो में बँटा हुआ था -- पहला वर्ग वह था जिसका नियंत्रण ब्राह्मण व्यवस्था स्मृत्यादि धर्मग्रंथों के अनुसार होता था । दूसरा वर्ग वह था जो इन धर्मग्रंथों एवं इनके विधानों की चिंता नहीं

करता था । वह वर्ग मोक्ष-साधन के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था का विश्वासी नहीं था एवं अकाल संन्यास का विश्वासी था । यह वर्ग अपने को अतिवर्णाश्रमी कहता था । इस वर्ग के संन्यासियों की परम्परा भी भारत में बहुत पहले से ही चली आ रही थी । कदाचित् बौद्धमत के अभ्युदय के पहले ही संन्याश्रम के विरोधियों एवं विशेषकर याज्ञिक क्रियाओं में अविश्वास करने वालों का एक वर्ग या वर्ण विशेष पनप चुका था । 'श्वेताश्वेतरोपनिषद' का ज्ञान 'अन्याश्रमी' लोगों के लिए स्वीकार्य हुआ ।[102] अन्याश्रमी का अर्थ 'अत्यन्त पूजनीय आश्रयवाला एवं स्मृति के आधार पर 'परमहंस' संन्यासी किया गया[103] है । तात्पर्य यह कि प्राचीन काल से ही याज्ञिक क्रियाओं के विरोधी संन्यासियों की संज्ञा अतिवर्णाश्रमी थी । बौद्धों ने 'अतिवर्णाश्रमी' अर्थात् अकाल संन्यासियों को एक दूसरी दिशा दी थी जिसका प्रचार कुमारिलभट्ट एवं शंकराचार्य के समय तक होता रहा था । नौवीं-दसवीं शताब्दी तक आस्तिक षड्दर्शनों के आचार्य संगठित होकर नास्तिक पंथो के खण्डन में जुटे एवं कर्म अर्थात् मानव प्रयत्न को वैदिक रीति से पुनर्प्रतिष्ठत करने के तर्काधारित प्रयत्न हो चले । इसके बावजूद कई वैदिक-अवैदिक मत चलते रहे जिन्हें आगे गोरखनाथ जी ने प्राचीन माहेश्वर मत के अन्तर्गत विकसित नाथ पंथ में संगठित किया । उसमें भी आश्रम व्यवस्था अमान्य रही और वैसे साधु संन्यासी 'अतिवर्णाश्रमी' अथवा 'पंचमाश्रमी' कहे गये। विष्णुदास के समय तक यह व्यवस्था प्रायः ठीक रही होगी । स्वयं विष्णुदास भी नाथमत में ही दीक्षित थे, पर तुलसीदास के समय तक इस व्यवस्था में भी बिखराव आया एवं 'अकाल संन्यासियों' के रूप में शैव-शाक्त मत के विभिन्न प्रकार के अनुयायी समाज में दिखाई पड़ते है । उन सबकी ओर तुलसीदास की रचनाओं में संकेत हुए हैं ।

नाथयोगी सम्प्रदाय के हठयोग एवं बौद्धों के वज्रयानी सिद्ध समाज में तांत्रिकता और चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा लोगों को भ्रमित कर रहे थे । इससे अनेक अशिक्षित लोग गुमराह हो रहे थे। समाज में पाखण्डी आचारों को बढ़ावा मिल रहा था ।[104] तुलसीदास ने

उसे तामस धर्म कहा है ।[105] ब्राह्मण विरोधी बौद्धों आदि का सामूहिक रूप में इस्लाम को स्वीकारने,[106] जैनियों के भ्रष्टयौनाचारों[107] आदि से समाज की धार्मिक स्थिति चिन्तनीय हो चुकी थी । तुलसीदास द्वारा उल्लिखित 'सराबग', 'सेवड़ा', 'अघोरी', 'भूतपूजक'[108] आदि को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है ।

विभिन्न आचार्यो द्वारा प्रवर्त्तित दार्शनिक मतों के आधार पर विकसित वैष्णव भक्तियों में उत्तरभारत में स्वामी रामानंद द्वारा प्रचारित मत अपेक्षया अधिक लोकप्रिय हुआ । कई और मत भी पनपे । परिणामतः उपासना में सगुण के साथ ही निर्गुण मार्ग भी चला । दूसरी ओर इस्लाम अनुयायी, हिन्दूओं के धार्मिक मानबिन्दुओं को समाप्त करने पर तुले थे। वल्लभाचार्य ने 'कृष्णाश्रम' में लिखा है कि समस्त प्रदेश मलेच्छाक्रांत होने के कारण सभी तीर्थस्थान पापमात्र के निवास स्थल हो गये हैं, सज्जन कष्ट-संतप्त हैं, गंगा आदि पवित्र तीर्थ दुष्टों से आवृत हैं, अधिष्ठातृ देवता तिरोहित हो गये हैं और प्रलोभन वश सज्जन पुरुष भी पाप का अनुसरण कर रहे हैं ।[109] 'भविष्य पुराण' का अयोध्या-विवरण भी इन घटनाओं को पुष्ट करता है, पर रामानंद ने रामतारकमंत्र द्वारा धर्मान्तरितों को पुनः हिन्दू धर्म में वापसी का कार्य भी आरंभ किया था ।[110]

इस्लाम धर्म में 'शरा' और 'बेशरा' दोनों श्रेणियों 'मलामती' कहे जाने वाले बेशरा में सूफी सम्प्रदाय पहले से पनप चुका था । तुलसीदास के समय तक सूफियों की चिस्ती, कादिरी, सुहरावर्दो, नक्शबंदी और सत्तारी शाखाएँ फैल चुकी थीं । सूफियों की प्रेमाभक्ति ने हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्गो को प्रभावित किया था ।[111]

धार्मिक अस्वस्थता के इस वातावरण में विष्णुदास और तुलसीदास दोनों को विष्णु के अवतार के रूप (राम एवं कृष्ण) की सगुण उपासना को महत्व दिया । उनके समय तक पान्थिकता विकराल हो चुकी थी । पाखंडों और चमत्कारों से धार्मिक जीवन

और व्यवस्था की पवित्रता नष्ट हो रही थी । उसे देखकर ही तुलसीदास को लगा था कि धर्म नाम की कोई चीज रह ही नहीं गयी है ।[112] क्योंकि धर्म का कल्याणकारी रूप समाज को एकजुट रखनेवाला रूप (धारणात् धर्म इति आहुः) लुप्त हो जाने से एक अन्धकार-सा व्याप्त हो गया था । अतः "भक्ति के आचार्यों और तत्परिणाम स्वरूप सगुण भक्त कवियों ने धर्म के नाम पर बिखरी शक्तियों के एकीकरण, अन्तर्भावन और सांस्कृतिक समुत्थान के लिए जनमन में आन्तरिक उल्लास जगाने का प्रयत्न किया । वस्तुतः आलोच्य कवि द्वय विष्णुदास एवं तुलसीदास ने अपने रामाख्यानक काव्यों में 'पौरुष से हताश जाति' का करूण आख्यान नहीं लिखा, वरन् सुचिन्तित संकल्प का अंतरंग उल्लास ही दर्शाया है।"[113] असम्भव नहीं कि आलोच्य कवियों को लोककल्याणमूलक धार्मिक सिद्धांतों की पुनर्प्रतिष्ठा और व्यवस्था की प्रेरणा उपरि धार्मिक पृष्ठभूमि से मिली हो ।

1. घ प्रेरक स्रोत

उत्तर-मध्यकालीन परिस्थितियों का प्रभाव सम्पूर्ण हिन्दी भक्तिकाव्य पर प्रायः एक समान पड़ा । इसी कारण उनका मूल स्वर प्रायः एक समान ही रहा, पर कवि की वैयक्तिक रूचि एवं सम्प्रदायबद्धता ने उनके स्वर में किंचित् भिन्नता भी उपस्थित की है । इस कारण उनमें रचनागत उपलब्धि में थोड़ी भिन्नता भी मिलती है । आलोच्य कवि विष्णुदास एवं तुलसीदास की रचनाओं पर भी ये बाते लागू होती हैं । इस कारण प्रबल प्रेरक स्रोत के रूप में कवियों की निजी जीवनियाँ, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्रोतों को उनकी रचनाओं के प्रेरक स्रोत के रूप में आगे विवेचित किया जाता है ।

1. घ. I कवि की जीवनी

आलोच्य कवियों की जीवनियों के सम्बंध में तथ्यों का प्रायः अभाव है । यों विष्णुदास के संबंध में तुलसीदास की अपेक्षा थोड़ी अधिक जानकारी मिलती है । वे ग्वालियर नरेश महाराज डूँगरेन्द्र सिंह के आश्रित कवि थे एवं उन्हीं के आदेश से उन्होंने

'महाभारत' (पाण्डवचरित) की रचना की थी । वे व्यास श्री लावण्यकर्ण के पुत्र और नाथगुरु श्री सुन्दरनाथ से दीक्षित थे । इसके बावजूद वे साम्प्रदायिक सीमाओं में बद्ध नहीं थे । व्यास (कथा-वाचक) कुलोत्पन्न होने के कारण वैष्णव कथाओं के प्रति उनकी रूचि शुरू से ही रही होगी । संभवतः वे कथावाचन करते भी होंगे । कथावाचन जनभाषा अर्थात् तत्कालीन हिन्दी (ग्वालियरी, जिसे सूरपूर्व ब्रजभाषा कहा गया है) में ही होती होगी । यद्यपि कथावाचन जनभाषा में करते होंगे, तथापि भाषा काव्य रचना के लिए उन्होंने दुख प्रगट किया है । 'रूक्मिणी मंगल' में उनका कथन है --

तुक्ष मति मोरी थोरी-सी बौराई भाषा काव्य बनाई ।''[114]

इससे अनुमान किया जायेगा कि उस समय अनेक लोग 'भाषा' (जनभाषा अर्थात् तत्युगीन हिन्दी) में काव्य रचना करना अच्छा नहीं मानते होंगे ।[115] भाषा में काव्य रचना उन्होंने अपनी रूचि से नही, महाराज डूँगरेन्द्र सिंह के आदेश से किया था, जिसका स्पष्ट उल्लेख 'महाभारत' में हुआ है ।[116] राजाश्रय प्राप्त होने के कारण उन्हें भौतिक सुख-सुविधाओं का अभाव शायद नहीं होगा । इसकी छाप उनकी रचनाओं में भी मिलती है ।

तुलसीदास राजाश्रित नहीं धर्माश्रित कवि थे । शैशवावस्था में ही माता-पिता का प्यार उनसे छिन गया था । वे टूअर हो गये थे । उनका बचपन अभाव और कष्टमय था। किसी 'कृपा सिन्धु नररूप हरि' जैसे गुरू को पा वे निहाल हो गये । 'गुरू' ने ही उन्हें 'सूकरखेत' में पहली बार रामकथा सुनायी जो उनके मन में धीरे-धीरे बैठ गयी । राम जैसे दीनानाथ को पाकर वे सनाथ हो गये । उन्होंने शायद घर भी बसाया, पर किसी कारण वश वे शीघ्र ही वैरागी हो गये । वैरागी बन उन्होंने साधना की, तीर्थाटन किया, इससे उनकी रामभक्ति दृढ़ हुई एवं देश की जनता को समझने-बुझने का अवसर मिला । जैसा कष्ट उन्होंने स्वयं भोगा था, प्रायः वैसे ही कष्टों से उन्हें जनता पीड़ित दिखी । उसकी समाप्ति के लिए राम की शरण-प्राप्ति को ही तुलसीदास ने एकमात्र उपाय स्वीकार किया।

इसी कारण उन्होंने 'कृपाला दीनदयाला हितकारी' के अवतार और उनकी प्रतिज्ञा - 'निसिचरहीन करौं मही' के अनुरूप कार्यों के प्रचारार्थ 'रामचरितमानस' एवं अन्य ग्रंथों की रचनाएँ की । अस्तु, आकस्मिक नहीं कि विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने विदेशी और विधर्मी शासन से मुक्ति के लिए राम को समान महत्त्व दिया । जनता की निराशा को दूर करने के लिए विष्णुदास ने पाण्डवों की शौर्य कथा का गायन 'महाभारत' में और श्रीकृष्ण प्रेमकथा 'रूक्मिणी मंगल', 'सनेहलीला' आदि में लिखी । इसके बावजूद दोनों की रचनाओं में एक स्पष्ट अन्तर है । विष्णुदास की रचनाएँ जहाँ राजाश्रित कवि रूप को अग्रसर करती हैं, वहीं तुलसीदास की रचनाएँ सर्वथा निश्चल भक्त मानस की उद्‌गार बनी हैं ।

1. घ. II सांस्कृतिक पीठिका

संस्कृति से काव्य का सम्बन्ध अनेकविध होता है । समाज एवं राष्ट्र के युग की संस्कृति की छाप उस युग की रचनाओं पर पड़े बिना नहीं रहता । "जिस कवि का जीवनानुभव जितना व्यापक, दृष्टि जितनी पैनी और संवेदना जितनी गहरी होती है, वह अपनी रचना में सांस्कृतिक पीठिका का उतना ही अधिक संयोजन कर पाता है । भारतीय संस्कृति को सँवारने और पनपाने में राम और कृष्णवृतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।[11] रामकथा में प्रतिपादित मूल्य आरंभ से ही भारतीयों को सांस्कृतिक चेतना प्रदान करते रहे हें । उसका महत्त्व इससे भी पता चलता है कि स्वयं रावण ने भी कहा है -- 'रामांगभजतो ममापि कलुषी भावो न संजायते' । आचार्य मम्मट ने राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण हेतु ही स्वीकार किया था कि -- "रामादिवदर्त्तितव्यं न रावणादिवत्" । शंकराचार्य-परवर्ती आचार्यो एवं प्रायः सभी संतो भक्तों ने रामचरित्र को आदर्श माना तभी भक्ति आंदोलन में राम और कृष्ण को सर्वोपरि महत्त्व मिला ।

आलोच्य कवियों के समय उत्तरभारतीय समाज मुख्यतः दो विरोधी विचारधाराओं और संस्कृतियों के टकराव से जूझ रहा था । राजनैतिक विजय प्राप्त कर

इस्लाम ने अपनी संप्रभुता स्थापित कर ली थी, पर उसे ही सांस्कृतिक विजय में बदलने की चेष्टा में विभिन्न आचार्य और संत-भक्त प्रयत्नशील थे । छोटे-छोटे जो हिन्दू राज बचे थे, वे भी उसमें सहायता कर रहे थे । जनता में वीर मनोभाव के संचार हेतु जहाँ महाभारत की कथा महत्त्वपूर्ण थी, वहीं आदर्श स्थापना हेतु रामकथा डूँगरेन्द्र सिंह द्वारा विष्णुदास से 'महाभारत' (एवं अन्य रचनाओं) की रचना करवाना इसी का परिचायक है । तुलसीदास का व्यक्तित्व अधिक प्रखर था । तभी वे 'करब साधुमत लोकमत, नृपनयन निगम निचोरी'[118] और 'लोकवेदमत मंजुल कूला'[119] को ध्यान में रखकर भारतीय समाज के संरक्षण और दिशा निर्देशन हेतु रचनाएँ कर रहे थे । उनकी दृष्टि में 'श्रुतिसम्मत-पथ' के लिए वैसी रचनाएँ करना अनिवार्यता थी । यह दृष्टि उन्हें पुराणों आदि से मिली थी जिसे उन्होंने सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप ढाला था । वस्तुतः तुलसीदास की रचनाएँ भारतीय संस्कृति की अनमोल उपलब्धि हैं । उनका 'रामचरितमानस' तो बोलती हुई भारतीय संस्कृति है । डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध का कथन है कि "यदि भारतीय संस्कति के सभी ग्रंथों का लोप हो जाये और मात्र तुलसी का 'मानस' बच जाये, तो भी हिन्दू-संस्कृति शत-प्रतिशत उसी रूप में अपना निर्माण कर सकती है -- ऐसी अपूरणीय वस्तुस्थिति लेकर संयोजित है रामचरितमानस ।[120] इससे पता चलता है कि तुलसीदास का जीवनानुभव, ईश्वर शक्ति और काव्य-संवेदन कितना व्यापक एवं गहरा था, जिनके फलस्वरूप उनका 'रामचरितमानस' शीघ्र ही लोकमानस में व्याप्त हो गया ।[121] सुनीति कुमार चट्टर्जी के अनुसार -- "Which has become more than the Bible for millions and millons of Hindus in north India"[122] तुलसीदास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से लोक संस्कृति को सब प्रकार से पुष्ट किया है । 'रामचरितमानस' में सामाजिक जीवन की व्यापक दृष्टि अपनायी गयी है । कथानायक राम केवल परब्रह्म के अवतार अथवा राजपुत्र ही नहीं है, उनके प्रत्येक कार्य पर लोकधर्म, लोकमानस,

लोकसंस्कृति की छाप है । वासुदेव सिंह ने तुलसी की लोकतात्विक दृष्टि पर विचार करते हुए लिखा है कि "राम के जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, राज्याभिषेक, विवाहादि संस्कार के वर्णन लोकमान्य रीतियों के अनुरूप किया गया है । तुलसीदास, में वर्णित वास्तुकला, चित्रकला, शोभायात्रा, अस्त्रशस्त्र आदि समसामयिक हैं । 'जानकी मंगल', पार्वती मंगल', 'रामलला नहछू' आदि लोकरीति सम्पन्न काव्य हैं ।"[123] विष्णुदास रचित 'रूक्मिणीमंगल' भी लोकरीति पुष्ट काव्य है । उनका महाभारत भी युग सापेक्ष्य हो गया है ।

आलोच्य कवियों द्वारा प्रणीत 'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' एवं अन्य रचनाएँ "भारतीय अस्मिता की बोधक, सांस्कृतिक धरोहर, साहित्यिक निधि तथा राष्ट्रीय एवं शाश्वत मानव-मूल्यों के उत्कृष्ट भण्डार तो है ही, लोकमानस को आन्दोलित और आह्लादित करने में भी सब प्रकार से समर्थ हैं ।"[124] विष्णुदास ने कृष्ण वृत्त के सरस प्रसंगों को काव्य में ढालकर हिन्दू-जनमानस में जीवन के प्रति राग उत्पन्न करने की भी सफल कोशिश की है । अधर्म परधर्म की विजय को प्रदर्शित करने के लिए डूँगरेन्द्र सिंह के आदेश से प्रणीत 'महाभारत' की संवेदना भी युग सापेक्ष्य है -- विधर्मी शासक पर स्वधर्मी शासक की विजय की कामना का जनमानस में संचार करना भी कहीं-न-कहीं इसका उद्देश्य अवश्य है । वस्तुतः तत्कालीन सांस्कृतिक संकट भी कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी प्रकार की प्रेरणा भी विष्णुदास और तुलसीदास की रामकथात्मक एवं महाभारत आधारित कथात्मक कृतियों के मूल में अवश्य रही है । परिणामतः युग की आवश्यकता के अनुरूप ही उन्होंने अपनी-अपनी रचनाओं में पारम्परीण रामकथा को (और महाभारतीय को भी) कुछ नवीन और विश्वसनीय रूप में उपस्थित किया ।

1. घ. III साहित्यिक परम्परा

साहित्यिक परम्परा का लाभ विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने लिया, लेकिन एक अन्तर के साथ । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' की रचना तुलसीदास के

'रामचरितमानस' से एक सौ बत्तीस वर्ष पहले (सन् 1442 ई.) में की थी। उनका 'महाभारत' (पाण्डवचरित) तो और भी पहले सन् 1435 ई. में ही प्रणीत हुआ था । इससे स्पष्ट है कि विष्णुदास को संस्कृत साहित्य की परम्परा का लाभ तो तुलसीदास के समान ही मिला था, पर हिन्दी की साहित्यिक परम्परा का लाभ विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास को अधिक मिला था । विष्णुदास के पूर्व हिन्दी में किसी ने भी 'महाभारत' की (अधूरी या पूरी) रचना नहीं की थी । वे ही पहले 'महाभारतकार' है। कृष्णवृत्त विषयक रचनाओं के हिन्दी में विद्यापति के पश्चात् दूसरे काव्यकार हैं । जहाँ तक रामाख्यानक रचनाओं की बात है, विष्णुदास के पूर्व चंदबरदायी (पृथ्वीराज रासो का 'दशम') और रामानंद (दो फुटकल पद्य) की रचनाएँ मिलती हैं, किन्तु पुरी रामकथा को अपनी रचना 'रामायन कथा' में प्रस्तुत करने वाले वे पहले हिन्दी रामायणकार हैं । इस प्रकार उनका कार्य न केवल ऐतिहासिक महत्त्व का वरन् नवीन पथ का संधान कर अछूते क्षितिज का उद्घाटन करने वाला भी कहा जायेगा ।

तुलसीदास की सभी रचनाएँ (कृष्णगीतावली के अतिरिक्त) रामवृतात्मक हैं । उन्हें संस्कृत-साहित्य की परम्परा विष्णुदास के समान ही मिली थी, पर हिन्दी रामाख्यानक परम्परा की रचनाएँ विष्णुदास की तुलना में तुलसीदास को अधिक मिली थी । चन्दबरदायी, रामानंद, विष्णुदास (रामायन कथा, 1442 ई.), सूरजदास (रामजनम 1470 ई. के लगभग), ईश्वर दास (भरत मिलाप, अंगद पैज - 1501 ई.) सुन्दरदास (हनुमान चरित 1559 ई.), साईदास (दशावतारचरित), सूरदास (सूरसागर का नवम स्कंध) एवं अग्रदास (रामाष्टायाम, रामध्यानमंजरी, राम-ज्योनार) जैसे सनातनी परम्परा के पोषक कवियो की रचनाओं के ही नहीं, वरन् जैन परम्परा के ब्रह्मजिनदास, गुणकीर्ति, मुनि लावण्य, विनय समुद्र, ब्रह्मरायमल ओर हेमन्त सूरि जैसे कवियों की रचनाओं का लाभ भी मिला था । विष्णुदास की 'रामायन कथा' को तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के पूर्व

बुन्देलखण्ड में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त होगी एवं राजापुर वासी चित्रकूट प्रेमी तुलसीदास उससे अपरिचित नहीं होंगे। उससे लाभान्वित होने की संभावना करना असंगत नहीं होगा। सूरजदास की रचना 'रामजनम' के तुलसीदास तो प्रत्यक्ष ऋणी हैं । उनकी कई अर्द्धालियाँ 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में ज्यों का त्यों रखी गयी हैं । ऐसा अनुमान करना असंगत शायद नहीं होगा कि 'क्वचिन्यतोऽपि' से तुलसीदास ने उन रचनाओं की ओर भी संकेत किया है । तात्पर्य यह कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास को रामाख्यान की अधिक सुदृढ़ साहित्यिक परम्परा मिली थी । विष्णुदास का महत्त्व पगडण्डी बनाने में है -- पगडण्डी चाहे महाभारतीय कथाओं की हो या कृष्णख्यान की या रामाख्यान की, वे अपने महान् कार्य में पुरी तरह सफल हुए हैं । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' की रचनाकर जिस पगडण्डी का निर्माण किया, तुलसीदास का महत्त्व उसे ही 'रामचरितमानस' में राजडगर के रूप में परिणत करने में निहित है । तुलसीदास द्वारा रामोपासना के लिए निर्धारित राजमार्ग (राजडगर) आज भी जनता के लिए मोक्ष मार्ग बना हुआ है ।

तुलसीदास ने 'रामलीला' को नये रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा शुरू की। इस्लामी शासन में नाट्याभिनय पर प्रतिबंध होने के बावजूद तुलसीदास का वह प्रयत्न निश्चय ही अतीव महत्त्व का है । वस्तुतः पुष्ट साहित्यिक परम्परा को आत्मसात करने के कारण ही तुलसीदास की रचनाएँ धार्मिक - आध्यात्मिक-साहित्यिक-सामाजिक दृष्टि से मौलिक, नवीन और अद्वितीय हो सकी हैं ।

1. ङ. निष्कर्ष

विष्णुदास और तुलसीदास की विचारधाराओं को प्रभावित-प्रेरित करनेवाली युगीन परिस्थितियों (राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक) और प्रेरक तत्त्वों (निजी जीवनी, सांस्कृतिक पीठिका, साहित्यिक परम्परा) पर विचार करने से पता चलता है कि उन सबने कविद्वय को अपनी रचनाओं के लिए नयी दिशा और गति प्रदान की थी । दोनों की

परिस्थितियाँ प्रायः एक-सी थीं । निजी जीवन की दृष्टि से विष्णुदास भौतिक दृष्टि से अपेक्षया अधिक सुविधा सम्पन्न थे । तुलसीदास का आरम्भिक जीवन अधिक कष्टमय रहा था । अनाथ तुलसीदास अपने प्रौढ़ि-प्रकर्ष में श्रीराम को पाकर सनाथ बन गये थे । विष्णुदास डूँगरेन्द्र सिंह के राजाश्रित कवि थे और तुलसीदास पूरी तरह धर्माश्रित कवि थे। विष्णुदास की कृतियाँ राम और कृष्ण परम्परा की प्रायः पहली मौलिक हिन्दी रचनाएँ है । 'रामायन कथा' और 'महाभारत' अपने विषय की हिन्दी में पहली पूर्ण और ऐतिहासिक महत्त्व की रचनाएँ हैं । तुलसीदास का 'रामचरितमानस' हिन्दी की ही नहीं, समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की रामायणों की मुकुटमणि है । 'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' के रचना काल में एक सौ बत्तीस वर्षो का अन्तर है । 'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' जैसी रचनाओं को जो जनप्रियता मिली, 'रामचरितमानस' उत्तर भारतीय हिन्दू-समाज में धर्मशास्त्रीय महत्त्व पा सका, वह ऐसा सोचने को बाध्य करता है कि इनकी रचना के मूल में तत्कालीन परिस्थितियाँ तो थी हीं, प्रबल प्रेरक स्रोत भी थे । इस्लामी शासन ने राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू शक्तियों को पराजित तो कर दिया था, पर सांस्कृतिक दृष्टि से इस्लाम को पराजित होना पड़ा । 'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' जैसी रचनाएँ इसका उत्तम साक्ष्य हैं ।"[125] इतिहास इस बात को स्पष्ट करता है कि बदलते परिवेश के अनुरूप समाज में जब भी नये मूल्यों की स्थापना की आवश्यकता महसूस की गयी है, तब रामकथा ने युग के अनुरूप अपना नया विकास कर समाज को चैतन्य बनाया है । विष्णुदास की कृष्णचरितात्मक रचनाएँ हिन्दूओं में जहाँ जिजीविषा उत्पन्न करने में समर्थ हुईं, वहीं 'महाभारत' अधर्म पर धर्म की पुनः विजय का संकेत देने में सक्षम रहा । निश्चय ही दोनों आलोच्य कवियों की रचनाएँ तत्युगीन यथार्थ को मिथकीय आदर्श में रूपान्तरित कर जनता के सामने प्रस्तुत कीं जिसके निर्माण में युगीन परिस्थितियों और प्रेरक स्रोतों का उचित योगदान रहा है ।

संदर्भ :

1. हिन्दी-साहित्य का वृहत् इतिहास (पंचम भाग), पृ. 270
2. असम प्रान्तीय रामसाहित्य (भूमिका) : डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध, पृ. 1
3. रामायन-कथा (भूमिका), पृ. 33
4. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. 52
5. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर, पृ. 13
6. महाभारत (भूमिका), पृ. 41
7. रामायन-कथा (भूमिका), पृ. 35
8. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर 19
9. महाभारत (भूमिका), पृ. 42
10. डॉ. मोहन सिंह तोमर द्वारा 'हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, पृ. 20-21 पर आवश्यक अंश (छंद 4-22)
11. रामायन-कथा, 1/7-9
12. रामायन-कथा, 1/9
13. महाभारत, 171/2
14. महाभारत, 4/23
15. 'हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर पृ. 22 पर उद्धृत
16. महाभारत, 5/36
17. महाभारत, 5/38
18. नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् 1906-08, 1912, 1926-28, 1941-43
19. महाभारत (भूमिका), पृ. 23
20. रामायन-कथा (प्रस्तावना), पृ. 44
21. महाभारत (प्रस्तावना), पृ. 22
22. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. 30
23. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर, पृ. 27-49
24. शंकरदेव और सूरदास के कृष्ण भक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध - पृ. 31
25. हिन्दी और असमिया की प्रथम रामायण, डॉ. दिनेश कुमार चौबे, पृ. 4
26. महाभारत, 5/34
27. महाभारत, 4/22
28. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. 32

29. रामायन-कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन,डॉ. रमा श्रीवास्तव, पृ.17
30. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. 32
31. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर,पृ. 34-41
32. महाभारत (भूमिका), पृ. 22
33. सूरपूर्व ब्रजभाषा ओर उनका साहित्य, शिव प्रसाद सिंह, पृ. 152
34. शंकरदेव और सूरदास के कृष्ण भक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 31
35. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. 33
36. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर,पृ. 38
37. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 233
38. हिन्दी और असमिया की प्रथम रामायण, डॉ. दिनेश कुमार चौबे, पृ. 5
39. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन,डॉ. रमा श्रीवास्तव,पृ. 21
40. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. 33
41. क. म्यून्सिपल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित प्रति
    ख. सागर विश्वविद्यालय में उपलबध प्रति
42. रामायन-कथा, सं. पं. लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी
43. रामायन-कथा, 1 / 11
44. हिन्दी और असमिया की प्रथम रामायण, डॉ. दिनेश कुमार चौबे, पृ. 6
45. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर, पृ. 53
46. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन-कथा, डॉ. बलभद्र तिवारी , पृ. 25
47. रामायन-कथा (प्रस्तावना), पृ. 48
48. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा डॉ. मोहन सिंह तोमर, 48
49. महाभारत (भूमिका), पृ. 48
50. हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्वालियर का योगदान, राधेश्याम द्विवेदी, पृ. 154
51. महाभारत (भूमिका), पृ. 48
52. हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्वालियर का योगदान, राधेश्याम द्विवेदी, पृ. 154
53. हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्वालियर का योगदान, राधेश्याम द्विवेदी, पृ. 154
54. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन-कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर,पृ. 51
55. क. महादेव पाण्डेय - तुलसी का घरबार, बम्बई, विक्रमाब्द 1994
    ख. शिवनन्दन सहाय - श्री गोस्वामी तुलसीदास , आरा, 1918
    ग. डॉ. श्यामसुन्दर दास एवं पीताम्बर बड़ध्वाल, गोस्वामी तुलसीदास, इलाहाबाद, 1931
    घ. माता प्रसाद गुप्त - तुलसीदास, इलाहाबाद, 1953

ङ. रामदत्त भारद्वाज - गोस्वामी तुलसीदास व्यक्तित्व : दर्शन : साहित्य दिल्ली, 1962

च. राजाराम रस्तोगी - तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा, कानपुर, 1966

छ. उदयभानु सिंह - तुलसी काव्य मीमांसा, राधाकृष्ण, 1977

ज. गोस्वामी तुलसीदास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006

झ. डॉ. भगीरथ मिश्र - महाकवि तुलसीदास और युग-संदर्भ, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1973

56. डॉ.. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' - हिन्दी साहित्य : युग और धारा, पृ. 160

57. संवत् सोरह सौ एकासी, तुलसी बरषी असी प्रकासी ।
सावन कृष्ण तीजि तिथि पाई, यह गौतम चंद्रिका पुराई ।।
----- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, पृ. 301

58. विशेष के लिए द्रष्टव्य --
गोसाईं तुलसीदास, पृ. 276-301

59. क. इस्तार द ला लितरेत्योर एन्दुई ए एन्दुस्तानी, वाल्यूम - 3, पृ. 263
ख. ए स्केच ऑफ द रेलिजस सेक्टस ऑफ द हिन्दूज, पृ. 41

60. द्रष्टव्य - विनयपत्रिका - 76, 83, 135, 136, 155, 275 आदि
कवितावली - (उत्तरकाण्ड) - 57, 72, 74, 107, 108 आदि
दोहावली - 108, 109, 494 आदि

61. डॉ. भगवती सिंह (रामकाव्यधारा : अनुसंधान और अनुचिन्तन, पृ. 24) के अनुसार तुलसीदास "अनंतानंद के प्रशिष्य और नरहरिदास अथवा नरहर्यानंद के शिष्य थे ।" इसके विपरीत डॉ. कृष्ण वल्लभ दवे (संत कवि दादू, पृ. 29) के अनुसार तुलसीदास के गुरु नरहर्यानंद जी अनन्तानंद के गुरुभाई सुरसुरानन्द के प्रशिष्य और माधवानंद के शिष्य थे । ग्रियर्सन की सूची (माता प्रसाद गुप्त द्वारा 'तुलसीदास' पृ. 174 पर उधृत) में उधृत तुलसीदास जी सुरसुरानंद की सातवीं पीढ़ी में पड़ते हैं ।

62. मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेऊँ अचेत ।।
रामचरितमानस 1 / 30 क.

63. "तुलसीदास के तीन विवाह हुए थे । तीसरी स्त्री का नाम बुद्धिमती था । उससे उन्हें तारक एक पुत्र भी हुआ था जो छोटी वय में मर गया ।" --
गोसाईं तुलसीदास, पृ. 279

64. मानस-मुक्तावली, राम किंकर उपाध्याय (भाग - 1), पृ. 40

65. द्रष्टव्य : क. दोहावली - 239
ख. कवितावली (उत्तरकांड) - 165, 166, 167 आदि

ग. हनुमान बाहुक - 38

66. द्रष्टव्य : कवितावली (उत्तरकांड) - 106, 107, 108

67. द्रष्टव्य : गोसाईं तुलसीदास 5 पृ. 115, 302

68. हिन्दी को मराठी संतों की देन, विनय मोहन शर्मा, पृ. 148

69 तुलसी काव्यमीमांसा, उदयभानु सिंह, पृ. 68-69

70. वही, पृ. 400

71. वही, पृ. 340

72. द्रष्टव्य - रामचरितमानस 1/35 से 1/43 (क) तक मानस-रूपक

73. रामचरितमानस के उत्तरकांड में काकभुसुण्डि द्वारा वर्णित 'तेरिज रामायण' (7/64/7 'प्रथमहिं अति अनुराग भवानी' से 7/68/7 'जो मैं तुम्ह सम कही भवानी तक)। उसमें वर्णित प्रसंग 'मानस' के सर्गों के सूचक है ।

74. रामचरितमानस (काशिराज संस्करण), आत्मनिवेदन, पृ. 14

75. रामचरितमानस - 1/35/6, 1/36/1 और 7 / अंतिम श्लोक

76. भुशुण्डि रामायण, भूमिका

77. सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 147

78. तुलसी काव्य मीमांसा, उदयभानु सिंह, पृ. 470

79. शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि, डॉ. भूपेन्द्रनाथ राय चौधरी, पृ. 23

80. गोसाईं तुलसीदास, पृ. 249-250

81. लोक देवता श्री हनुमान, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 96

82. सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 145-146

83. हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल इण्डिया, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, पृ. 470

84. अकबर दि ग्रेट, डॉ. स्मिथ, पृ. 239

85. मुगल ऐडमिन्सिट्रेशन, सर यदुनाथ सरकार - पांचवा परिच्छेद

86. सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 147

87. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. रमा श्रीवास्तव, पृ. 147

88. हिन्दी-साहित्य (द्वितीय खण्ड), बनारसी प्रसाद सक्सेना का लेख, पृ. 48

89. कीर्तिलता (द्वितीय पल्लव), पंक्ति 10-15 एवं 200-215

90. आदिग्रंथ - क्रमश : राग आसा, महला 1, पृ. 360, 417, राग माझ, पृ. 145, राग सारंग, पृ. 124

91. सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 148

92. हिन्दी साहित्य युग और धारा, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध,पृ. 125

93. हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल इण्डिया, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, पृ. 470

94. झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जेर मदअंबु चुचाते ।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते ।।
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जुपै जानकीनाथ के रंग न राते ।।
--- कवितावली - 7/44

95. कवितावली - 7/97

96. क. महाभारत (स्वर्गारोहन), पृ. 171-175
ख. रामचरितमानस - 7/97-102

97. कवितावली - 2/86

98. विनयपत्रिका - 34

99. रामचरितमानस - 1 / 103 /3

100. कवितावली - 7/96

101. रामचरितमानस - 7/98/4

102. श्वेताश्वतरोपनिषद - 6/2

103. शंकर भाष्य - 'अति पूजायाम् । इति स्मरणादत्यन्त
पूज्यतमाश्रमिभ्यः साधनचतुष्टयसम्पतिमहिमा स्वेषु देहादिष्यपि
जीवनभोगादिष्वनास्थावदम्य : । अतएव वैराग्यपुष्कलवदुभ्यः ।
स्मृति - 'यदा मनासि वैराग्य जयतेसर्ववस्नुषु
तदैव संन्यासेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत ।।
शांकर भाष्य - परमहंससंन्यासिनस्त एवात्याश्रमिण : ।

104. दोहावली - 550

105. रामचरितमानस - 1/101 ख

106. तुलसी ग्रंथावली (ना. प्र. सभा) , पृ. 433

107. वही, पृ. 434

108. दोहावली - 65, 326, 383, 495 आदि

109. कृष्णाश्रम - (षोडश ग्रंथ), श्लोक 2-5

110. मलेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन रामानन्द प्रभावतः ।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायः वभूविरे ।।
कण्ठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता ।

भाले त्रिपुण्ड चिह्नं च श्वेतसयं तदाभवत् ।।

भविष्यपुराण - 3 / 4 / 21

111. शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि डॉ. भूपेन्द्रनाथ राय चौधरी, पृ. 29

112. रामचरितमानस - 7/97 (ख)

113. *रामायन कथा ओर रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन*, डॉ. *रमा श्रीवास्तव*, पृ. 29

114. रूक्मिणी मंगल - 7

115. विष्णुदास के शताब्दियों बाद भी पंडितों का एक वर्ग 'भाषा' में काव्य-रचना को शायद अच्छा नहीं मानते थे । आचार्य केशव दास ने भी 'भाषा-काव्य' प्रणीत करने के कारण दुखी थे । उनका कथन है कि जिनके कुल के दास भी 'भाषा' में बात नहीं करते, उसी कुल में उत्पन्न कवि केशवदास भाषा में रचना करते है ।

116. महाभारत - 5/35-40

117. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन,डॉ.रमा श्रीवास्तव,पृ. 35

118. रामचरितमानस - 2/258

119. वही, 1/38/6

120. हिन्दी साहित्य युग और धारा , डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 160

121. शंकरदेव और तुलसी की वैचारिक भावभूमि, डॉ. भूपेन्द्र राय चौधरी, पृ. 32

122. The Ramayan , p. 35

123. तुलसी ग्रंथावली, पृ. 440

124. असम प्रान्तीय राम साहित्य, (पूरोवाक), डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ. 1

125. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन,डॉ.रमा श्रीवास्तव, पृ.38

द्वितीय अध्याय

दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

द्वितीय अध्याय

दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

2.1 उपक्रम

विष्णुदास राज्याश्रित कवि हैं और तुलसीदास रामभक्त कवि । शुद्ध अर्थों में दार्शनिक कोई नहीं हैं । विष्णुदास ने रामकथात्मक और कृष्णकथात्मक दोनों प्रकार की रचनाएँ की है, दोनों के प्रति भक्ति के उद्‌गार प्रकट किया है । 'रामायन कथा' और 'महाभारत' के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में उनके भक्तिपरक उद्‌गार व्यक्त हुए हैं । तुलसीदास मूलतः रामभक्त हैं, पर 'कृष्णगीतावली' की रचना कर कृष्ण के प्रति भी भक्ति की है । इसके बावजूद दोनों कवियों की रचनाओं में ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्षादि के सम्बन्ध में थोड़े विचार व्यक्त हुए हैं ।

विष्णुदास नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित थे, पर राम और कृष्ण के ईश्वरत्व और ब्रह्मत्व के प्रकाशन में उनकी अपनी सम्प्रदायिक मान्यताएँ कहीं बाधक नहीं बनी हैं । तुलसीदास को शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से अद्वैत मान्य है, पर भक्ति के व्यावहारिक सिद्धांत के अनुसार वे भेदकर चलना अच्छा समझते हैं ।[1] तुलसीदास की दार्शनिक मान्यताओं पर अनेक अध्येताओं ने विचार किया है । कुछ ने उन्हें शांकर अद्वैत का अनुयायी[2] और कुछ ने उन्हें किसी विशेष आचार्य का अनुगामी नहीं[3] स्वीकार किया है । कुछ ने उनके दर्शन को सीधे पौराणिक दर्शन भी कहा है ।[4] कुछ ने स्वीकार किया है कि उन्होंने 'अध्यात्मरामायण' में व्यक्त दार्शनिक विचारों को ही अपना रूप प्रदान करने की कोशिश की है ।[5] तुलसीदास ने अपने विचारों को 'नानापुराणनिगमागम' कहा है अर्थात् उनकी दृष्टि समन्वयात्मक रही है।

विष्णुदास और तुलसीदास की दार्शनिक विचारधाराओं की निजता मात्र इसी में

मानी जायेगी कि दोनों ने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व कायम रखा है । अस्तु ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्षादि विषयक उनकी उक्तियाँ आगे क्रमशः प्रस्तुत की जाती हैं ।

2. II ब्रह्म

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों के आराध्यदेव राम हैं । यद्यपि राम (रामायन कथा) और कृष्ण (अन्य रचनाओं) दोनों के प्रति विष्णुदास ने एक समान विचार रखे हैं, पर कृष्ण की अपेक्षा राम के प्रति कवि का झुकाव अधिक प्रतीत होता है । विष्णुदास ने राम को 'आदिपुरुष' अर्थात् ब्रह्म स्वीकार किया है । अंगद ने रावण से स्पष्टतः कहा है तुमने 'आदिपुरुष' राम से विग्रह किया है -

अनजानन तुम आनी सियो ।
आदि पुरुष सो विग्रह कियो । रामायन कथा - 145/29

विष्णुदास ने 'राम को कई स्थलों पर 'नारायण' तो कहा ही है, उनकी वन्दना अवतारी रूप में भी की है । वे त्रिभुवननाथ हैं, वे शंक-चक्र-गदा-साङ्र्गधर अर्थात् विष्णु हैं। वे जगत् के गुरु एवं मत्स्य, कच्छप, वराह, वामन, परशुराम आदि रूपों में अवतरित होने वाले हैं । सूर्य और चन्द्रमा उनके दोनों नेत्र हैं । चारों वेद उन्हीं के उच्छ्वास हैं । नारद की वन्दना में राम का यही ब्रह्मस्वरूप प्रत्यक्ष हुआ है --

तू नारायण त्रिभुवन धरन । तुही आदि महिमानाय करन ।।
संख चक्र गद सारंगपानि । जग गुरु तोहिं सकत को जानि ।।
तैं ही गच्छ कच्छ तनु धरयौ । तू वराह त्रिभुवन उद्धरयौ ।।
बावन ह्वै छलियौ बलिराइ । मान्यौ सहसबाहु कौ ठाइ ।।
बैर पिता के रिस मन धरी । छत्री पुहुमि निछत्री करी ।।
तेरे नयन चंद्र अरु भान । उठि अब कहा होत अग्यान ।।
तू दिगपाल भयो दस भेद । तो उसास प्रभु चारौं बेद ।।

तू श्रवननि अश्विनी कुमार । नासा गंधवाह असरार ।।

उदर समुद्र दंतगिरि देब । चउदह भुवन करत तौहि सेव ।।

उठि उठि हाथ धनुष कर लेहिं । बांछि मोछ देवन कौं देहि ।।

इतनौ कहि नारद गौ थान । लाग्यौ पवन राम के कान ।।

रामायन कथा 153 / 92-97

कुम्भकर्ण ने रावण से कहा है कि रामचंद्र स्वयं नारायणदेव हैं । ये संसार को तारने वाले हैं --

तुम नाहीं जानत या भेव । रामचंद्र नारायन देव ।।

यहई त्रिभुवन तारन तरन । सीता दै ताकौ तिहि सरन ।

रामायन कथा 162 / 14

राम साक्षात 'हरि' हैं । वे अनंत नाम और गुणवाले हैं । ब्रह्मा का राम से कथन है --

तू हरि तो गुन नाम अनन्त ।

हौं पुनि पार न लहौं कहन्त ।।

रामायन कथा 195 / 36

रावण से उसके दूत शार्दूल ने भी कहा है कि स्वयं हरि ही राम-लक्ष्मण के रूप में अवतरित हुए हैं । उन्हें सीता को समर्पित कर दीजिए और संग्राम से बचिए --

हरि अवतरियौ लक्षमन राम

सीता आफित (अर्पि) जौं संग्राम ।।

रामायन कथा 141 / 53

मारीच को पता है कि राम ब्रह्म हैं, ब्रह्म के अवतरित रूप हैं । इसी कारण वह रावण के हाथों मरने की अपेक्षा राम के हाथों ही मरना अच्छा समझता है उसमें उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी --

रामेपि जदि:.मार्तव्यं मृत व्यंरावनोदपि ।

उभयोदपि च मां मृत्युः बरं रामे न रावनः

रामायन कथा 38/18

उपरि कथनों से विदित है कि विष्णुदास ने राम को मूलतः विष्णु के अवतार के रूप में ही अंकित किया है । मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन नरसिंह एवं परशुराम के रूप में अवतरित होने की बात का कथन करने के पश्चात् द्वापर में उनके कृष्ण के रूप में भी अवतार धारण करने का उल्लेख हुआ है 'रूक्मिणी मंगल' में कवि ने कृष्ण को स्पष्टतः ब्रह्म का अवतार कहा है --

भीषम नृप की लाडली, कृष्ण ब्रह्म अवतार ।[6]

विष्णुदास ने बुद्ध और कलि अवतारों का उल्लेख नहीं किया है, पर अनुमान किया जायेगा कि उन्हें दशावतार की बात मान्य है । यदि ऐसा नही होता तो वे मत्स्य, कूर्म आदि अवतारों का कथन नहीं करते । राम के अवतार रूप का कथन कई स्थानों पर पर विष्णुदास ने किया है । देवताओं ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की थी -- 'साईं दशरथ घर अवतरहु' । इस पर विष्णु ने उन्हें यह कहकर आश्वासन दिया था --

(क) चारि वीर प्रिथिवी औतरौं । बहुत काज देवनि के करौं ।।

रामायन कथा - 4 / 12

(ख) दशरथ घरै राम अवतार । छुवै हाथ छाँड़े संसार ।

रामायन कथा - 239 / 28

और इस कथन के अनुरूप ही नारायण विष्णु ने स्वयं रामादि चार भाइयों के रूप में अवतार धारण किया था --

भरत शत्रुघन लछिमन राम । ए चारौ एकइ विश्राम ।। रामायन कथा - 5 / 19

रामादि चारो भाइयों के अवतार लेने के पश्चात् ही विश्वामित्र ने यज्ञ करना आरम्भ किया था --

जब अवतार सबनि कौ भयो । विश्वामित्र जग्यँ तब ठयौ ।।

रामायन कथा - 5 / 23

केवल राम से ही नहीं, विष्णुदास ने राम की शक्ति सीता को भी उनकी शक्ति का अवतार कहा है । वह राम की माया शक्ति ही है --

(क) सीता माया करि अवतार । रामचंद्र त्रिभुवन अवतार ।।

रामायन कथा - 21/68

(ख) पलिना सोवत देख्यौ जाइ । सो तू राम औतरूयौं आइ ।।

वह जो पद सेवति सुंदरी । सो सीता देवी औतरी ।।

रामायन कथा - 228 / 16

उपरि विवरण से विदित है कि राम और रावण दोनो पक्षों के लोगों के द्वारा विष्णुदास ने राम को अवतार के रूप में अंकित किया है । यों वे कह गये हैं विष्णु के अवतार ही, पर एकाध स्थल पर वे अवतारी रूप में अर्थात् विष्णु रूप में भी अंकित किये गये हैं । कवि ने उनके विराट रूप का भी अंकन किया है --

तेरे नयन चंद्र अरू भान । उठि अब कहा होत अग्यान ।।

तू दिगपाल भयो दस भेद । तो उसास प्रभु चारौं बेद ।।

तू श्रवननि अश्विनी कुमार । नासा गंधवाह असरार ।।

उदर समुद्र दंतगिरि देव । चउदह भुवन करत तौहिं सेव ।।

रामायन कथा - 153 / 95-97

अवतारवाद के साथ ही विष्णुदास को चतुर्व्यूह सिद्धान्त भी मान्य प्रतीत होता है । विष्णु द्वारा देवताओं को दिए गए आश्वासन 'चारि वीर प्रिथिवी औतरों'[7] और पुनः कवि की उक्ति "ए चारौं एकइ विश्राम"[8] में चतुर्व्यूह सिद्धान्त की ही व्यंजना मानी जायेगी ।

विष्णुदास ने अवतार धारण करने के कारण का उल्लेख करते हुए कहा कि

भूतल का भार उतारना है --

भूतल भार उतार हौं, धरिहौं रूप अनेक ।

सनेहलीला 118

विष्णुदास ने कौशल्या-दशरथ वार्तालाप में सत्य के स्वरूप को भी अभिव्यक्त किया है ।[9] वह भी उनकी दार्शनिक दृष्टि का परिचायक है ।

विष्णुदास की तुलना में तुलसीदास ने राम के ब्रह्म स्वरूप का न केवल विस्तृत वरन् विविध स्वरूप वर्णन किया है । उन्होंने अपने ब्रह्म विषयक विचार 'राम' को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया है । 'राम' तुलसीदास के इष्टदेव हैं । अपने इष्टदेव 'राम' को तुलसीदास ने ब्रह्म के स्वरूप, निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, विष्णुरूप ब्रह्म, अवतार और अवतारी, विराट पुरुष, भक्त वत्सल भगवान आदि विभिन्न रूपों में वर्णित-व्याख्यायित और स्थापित किया है--

तुलसीदास के लिए ही राम ही परम ब्रह्म है । लक्ष्मण को समझाते हुए कहा गया है --

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।

सकल बिकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ।।[10]

ब्रह्म अनाम, अरूप, अखण्ड, मन और इंद्रियों से परे, अमल निर्विकार सीमा रहित और सुखराशि है[11] राम ब्रह्म रूप हैं । वे सच्चिदानंद हैं, अजन्मा हैं । अखंड, अनंत, निराकार, निर्गुण नित्य निरंजन हैं ।[12] उन्होंने भक्तों के लिए ही भूप रूप धारण किया है।[13] वाल्मीकि मुनि भी राम की प्रार्थना परम ब्रह्म के रूप में करते हैं ।

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।

अबिगत अकथ अपार नेति-नेति नित निगम कह ।।[14]

राम सर्वव्यापक ब्रह्म हैं । वे मायाधीश हैं और सभी राम की माया के वशीभूत हैं । राम का

ध्यान बड़े-बड़े ऋषिगण निरन्तर करते रहते हैं । इन्हीं के बारे में श्रुति 'नेति-नेति' कहकर संतोष पाती है ।

मुनि धरि जोगी सिद्ध संतत विमलमन जेहि ध्यायहीं ।

कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।।[15]

तुलसीदास ने ब्रह्म यानि राम के सर्वव्यापक रूप का वर्णन किया है । राम ने कौशल्या को अपने विस्तृत विराट रूप के दर्शन कराये हैं --

देखरावा मातहि निज अद्‌भुत रूप अखंड ।

रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मांड ।।

अगिनत रबि ससि सित चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ।

काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ।।[16]

राम ने काकभुसुंडी को अपने उदर में सारे ब्रह्मांड का दर्शन करा दिया था --

उदर माझ सुनु अंडज राया । देखेउँ, बहु ब्रह्मांड निकाया ।।

अति विचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ।।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रवि रजनीसा ।।

अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ।।

सागर सरि सर विपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ।

सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंन । चारि प्रकार जीव सचराचर ।।[17]

ब्रह्म में परस्पर विरोधी गुणों की विभावना श्रुतियों एवं पुराणों में भी पाई जाती है । तुलसीदास ने ब्रह्म राम के परस्पर विरोधी गुणों की प्रशंसा की है ।

बिनु पद चलइ सुनई बिनु काना । कर बिनु करम करई बिधि नाना ।

आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।[18]

राम का एक साथ निर्गुण-सगुण होना महत्वपूर्ण बात है --

अगुन-सगुन दुई ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाथ अनादि अनूपा ।

मोरे मत बड़ नाम दुहुँ ते । किये जेहि निज तस निजबूतें ।।[19]

ब्रह्म के दो स्वरूप है -- निर्गुण और सगुण । तुलसीदास ने ब्रह्म निरूपण के आरंभ में निर्गुण स्वरूप का वर्णन किया है --

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप ।

भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ।।[20]

तुलसीदास ने ब्रह्म के विराट रूप के साथ-साथ अद्वैत-निर्गुण को भी मान्यता दी है --

अनध, अद्वैत, अनबद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंदसिंधो ।

अचल, अनिकेत, अविरल, अनामय, अनारंभ अंबोधदनादध्न-बंधो ।।[21]

तुलसीदास की दृष्टि में निर्गुण और सगुण में तात्विक भिन्नता नहीं है । व्यक्त रहने पर वही राम कहलाता है और अव्यक्त रूप में परब्रह्म इसी कारण तुलसी का कथन है --

हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम ।

मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ।।[22]

तुलसीदास ने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों को समान रूप से अपनाया है । किन्तु तुलसीदास का झुकाव सगुण रूप की ओर अधिक है ।

बिधि भाँति मोहि मन समुझावा । निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा ।

पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा । सगुन उपासन कहहु मुनीसा ।।[23]

राम के सगुण रूप के प्रति आस्था और विश्वास तुलसीदास की समस्त रचनाओं में व्याप्त है।

तुलसीदास को वेद परम्परा के सभी मान्य शास्त्रों, पुराणों आदि के मत मान्य हैं। विनयपत्रिका की अग्रांकित पंक्तियाँ इसी तथ्य का पोषण करती हैं --

छः मत विमत, न पुराण मत, एकमत

नेति नेति नित निगम करत ।

और निको कहा चलो ? एकै बात भली,

राम नाम लियो तुलसी हूँ से तरत ।। छन्द - 35

इससे स्पष्ट होता है कि तुलसीदास ने सभी शास्त्रों का सार तत्त्व स्वीकार कर ही अपनी दार्शनिक दृष्टि स्थिर की है । इस कारण ही अनेक विचारक तुलसीदास को समन्वयवादी विचारक मानते हैं और कुछ ने इसे ही "तुलसीमत"[24] से अभिहित किया है ।

2. III जीव

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों अद्वैत दर्शन के विश्वासी हैं । अद्वैतवादी दर्शन ब्रह्म और जीव में भेद स्वीकार नहीं करता है । गीता की उक्ति है -- 'ममैवांशो जीवनलोके जीवभूतः सनातनः' । यह बात विष्णुदास और तुलसीदास दोनों को मान्य है । 'रूक्मिणी मंगल' में विष्णुदास ने रूक्मिणी के माध्यम से स्वीकार किया है कि परमात्मा (कृष्ण) पूर्ण (अर्थात् पूर्ण ब्रह्म) हैं और मैं (रूक्मिणी अर्थात् जीव) उनका अंश हूँ । वेद अर्थात् वेदपरम्परा के सभी शास्त्र उसे निर्गुण कहते हैं, पर मनुष्यों के लिए वे सगुण रूप में ही आराध्य हैं । जो व्यक्ति उनका गुणगान करता है, उससे परमात्मा की खूब निभती है--

मोहन सों तब कहत रूकमनी ।

तुम पूस हम तुम्हरौ अंशा, हौं मन माहिं गनी ।।

वेद कहत निरगुण हौ तुम तो, नर बपुरो को सगुन भली ।

जो तुम्हारे गुन गाहू मगन हौं, तिन सौ सदा बनी ।।[25]

जीव के बारे में तुलसीदास की मान्यता भी ईश्वर-अंश के रूप में ही है । वे भी जीव को ब्रह्म का चिदंश स्वीकार करते हैं --

ईश्वर अंश जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।[26]

बालि की मृत्यु पर विलाप करती हुई तारा को समझाते हुए राम ने कहा है --

जीव नित्य केहि लागि तुम्ह रोवा ।[27]

जीव अमर है, मृत्यु शरीर का धर्म है ।[28] माया, ईश्वर और अपने आप को भी नहीं पहचानना ही जीव का लक्षण है ।[29] हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान अहंकार और अभिमान - ये सब जीव के धर्म हैं ।[30]

जीव के बारे में तुलसीदास ने विष्णुदास की अपेक्षा अधिक स्पष्टता और विशुद्धता से विचार किया है । ईश्वर का अंश मानने के बावजूद तुलसीदास जीव को जड़ ही मानते हैं । यह बात जीव के धर्म में कही गयी उनकी बातों से स्पष्ट होती है । जीव कर्म करने में स्वतंत्र है किंतु फल भोगने में परातंत्र । कर्मानुसार जीव को फल मिलता है।

काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता । निज कृत करम भोग फलु भ्राता ।[31]

जीव के कर्म आदि की गति उसी के हाथ में है । तुलसीदास कहते हैं --

'काल-कर्म, गति-अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे'[32]

तुलसीदास विभिन्न आधारों पर जीवों के अनेक भेद किए हैं । उन्होंने अवस्था के अनुसार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय जीव की चार अवस्थाओं को मान्यता दी है। दोहावली में तुलसीदास ने प्रथम तीन का स्पष्ट कथन किया है ।[33] चौथी अवस्था (तुरीय) का तुलसीदास ने स्पष्ट संकेत किया है ।[34]

दार्शनिकों ने त्रिविध जीव का उल्लेख किया है । स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर । जीव के त्रिविध शरीर (कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और अंतःकरण) में वर्णित हुए हैं । साधना के आधार पर जीवों के भेद हैं -- विषयी, साधक और सिद्ध ।

बिषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ।।[35]

तुलसीदास ने अतःकरण के चार रूप का स्पष्ट उल्लेख किया -- मन, बुद्धि, चित और अहंकार । उन्होंने इन चारों का त्याग करने, दसों इंद्रियों का संयम करने का उपदेश दिया है ।[36]

यह जीव त्रिविध तापों से संतप्त है ।[37] तीनों ही तापों से विमुक्ति के लिए राम नाम सबसे बढ़कर है । विष्णुदास में जीव के ऐसे विशद निरूपण का अभाव है ।

विष्णुदास और तुलसीदास, दोनों यह मानते हैं कि मायाधीश ईश्वर की कृपा से वंचित रहकर जीव अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है । जीव की मुक्ति का एकमात्र उपाय है-- ईश्वरकृपा की प्राप्ति जो उनकी भक्ति में ही संभव है --

(क) विष्णुदास - जो तुम्हारे गुन गाहु भगत हौ,
तिनसौं सदा बनी ।[38]

(ख) तुलसीदास - देखा जीव नचावइ जाही ।
देखी भगति जो छोरइ ताही ।।[39]

2. IV जगत् और संसार

विष्णुदास एवं तुलसीदास की रचनाओं में जगत् और संसार प्रायः एक-दूसरे के पर्याय रूप में प्रयुक्त हुए हैं । इस आधार पर कहा जायेगा कि दोनों शंकराचार्य के 'जगन्मिथ्या' सिद्धांत के विश्वासी प्रतीत होते हैं । ब्रह्म से उद्‌भूत होने के कारण दिखायी पड़ने वाला सारा जगत् सत्य के समान प्रतीत होता है ।

विष्णुदास - मोहन जगत विराजै, हयाँ सब सुख साजै ।।
झूठौ ऐसोइ कहा कहीजै, चरन कमल चित दीजै ।।
झूठौ संसार मो जीजै, मोहन जस अमरित पीजै ।।
संतन संग लीजै, ओ नयन ध्यान करीजै ।।[40]

तुलसीदास - 1. यत्सवादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः[41]

2. जगत प्रकास्य प्रकासक रामू ।

मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।

जासु सत्य ता ते जड़ माया ।

भास सत्य इव मोह सहाया ।।[42]

दार्शनिक दृष्टि से ये विचार शंकराचार्य के निकट होते हुए भी आलोच्य कवियों के विचार उनसे किंचित् भिन्न हैं । 'विष्णुपदी' में कहा गया है कि जगत् में मोहन (कृष्ण) अर्थात् ब्रह्म विराजमान है, इस कारण उसे झूठा कैसे कहा जायेगा । झूठा तो संसार (संसार के सम्बन्ध) है जहाँ मोहन का यशोगान कर ही आनंद प्राप्त किया जा सकता है । यहाँ विष्णुदास जगत् और संसार में पुरी तरह अन्तर करते हुए प्रतीत होते हैं । उनके अनुसार जगत् मोहनमय है, झूठा नहीं । जगत् सत्य है । इसके विपरीत संसार का तात्पर्य सांसारिक सम्बन्ध से ही है । वह झूठा है । संसार के मिथ्यात्व से पार पाने के लिए भगवत् भजन, संतों की संगति और प्रभु के चरण का ध्यान करना आवश्यक है । इससे पता चलता है कि जगत् और संसार विषयक आलोच्य कवियों के विचार प्रायः समान हैं, पर तुलसीदास ने जगत् और संसार के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से विचार किया है ।

तुलसीदास के अनुसार इस जगत् को स्वयं ब्रह्म ने बनाया है यह जगत ब्रह्म की सत्ता है ।

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।[43]

'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में तुलसीदास ने संसार की वृक्ष के रूप में कल्पना की है और संसार रूपी वृक्ष को नमस्कार किया है -

पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ।।[44]

जगत् की असत्यता या मिथ्यात्व के सम्बन्ध में तुलसीदास के विचार यत्र-तत्र रचनाओं में

दिखाई पड़ते है । तुलसीदास जगत् को मिथ्या कहते हैं । यह संसार धूएँ के महल के समान क्षण-क्षण में मिटनेवाले पदार्थों के समान है --

जग-नभबाटिका रही है फलि फूलि, रे ।

धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि, रे ।।[45]

जगत् की निःसारता और मिथ्यात्व का अवलोकन करानेवाला यह पद अधिक प्रसिद्ध है --

मैं तोहि अब जान्यों संसार ।[46]

'कवितावली' में भी संसार की असत्यता बताते हुए कवि ने कहा है --

'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग', संत कहंत, जे अंत लहा है

ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढत दंत, करंत हहा है ।।[47]

सुग्रीव राम की प्रशंसा करता हुआ संसार के सुख-दुख, शत्रु-मित्र, आदि को नश्वर और मिथ्या मानता हुआ कहता है --

सत्रु-मित्र, सुख-दुख जग माहीं । माया कृत परमारथ नाहीं ।।[48]

तुलसीदास ने जगत् की सत्यता का भी प्रतिपादन किया है जगत् के 'सियाराममय' रूप को देखकर वे उसे नमन करते हैं --

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।

बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानी ।।[49]

जगत् की सत्यता और वास्तविकता का प्रतिपादन करता हुआ कवि कहता है --

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।

मैं सेबक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।[50]

तुलसीदास जी संसार की वास्तविक स्थिति का परिचय इस प्रकार देते हैं --

केशव ! कहि न जाइ का कहिए ।

देखत तब रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ।।[51]

भगवान का भक्त जगत् को इसी रूप में देखता है, इसलिए उसका किसी से विरोध भी नहीं होता --

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहिसन करहिं विरोध ।।[52]

तुलसीदास ने जगत् की सत्यता के साथ असत्यता होने की बात भी कही है --

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ?

जद्यपि मृषा सत्य भासे जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।।[53]

यह संसार ज्ञानवान के लिए असत्य और अज्ञानियों के लिए सत्य है । अज्ञान के कारण माला में सर्प का भ्रम या सीप में रजत का भ्रम हो जाना स्वाभाविक है --

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ।

जदपि मृषा तिहुँ काल सोई भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।[54]

ज्ञान होने पर वास्तविक स्थिति का पता चलता है ।

तुलसीदास के मतानुसार जगत् को कोई सत्य, असत्य कहता है । कोई कहता सत्य और मिथ्या दोनों का सम्मिश्रण है । जो इन तीनों भ्रमों को छुटकारा पाता है, वही वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है --

कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल करि मानैं ।

तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन परिचानैं ।।[55]

उपरि विवेचन के आधार पर स्थिर होता है कि तुलसीदास की रचनाओं में जगत् और संसार के सम्बन्ध में विष्णुदास की अपेक्षा अधिक विस्तार से विचार हुआ है । इससे उनके इस बारे में विचार अधिक पूर्ण लगते है ।

2. V माया

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने माया का निरूपण किया है । विष्णुदास ने अत्यंत संक्षेप में एकाध स्थल पर ही इस सम्बन्ध में संकेत किया है, जबकि तुलसीदास ने माया के स्वरूप, प्रकार, कार्य आदि का बड़े विस्तार से वर्णन किया है । दोनों माया को ईश्वर की अभिन्न शक्ति मानते हैं । माया से ही ईश्वर जगत् का सृजन, पालन और संहार करता है । सीता और कोई नहीं, वह राम (ब्रह्म) की अवतरित माया हैं --

विष्णुदास - (क) सीता माया करि अवतार । रामचंद्र त्रिभुवन अवतार ।।[56]

(ख) पालिना सोवत देख्यौ जाइ ।
सो तू राम औतरूयौ आइ ।।
वह जो पद सेवति सुन्दरी ।
सो सीता देवी औतरी ।।[57]

तुलसीदास - श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।[58]

माया का ही एक दूसरा रूप अविद्या माया है । वह भक्तों, संतों, साधकों के मार्ग की बाधा होती है । माया के उसी रूप (अविद्या) के प्रति विष्णुदास की शिकायत है --

माया भजन करन नहीं देत ।
चेरी राम की काहु न मानत, लूटत हौं सब सेंत
ना हरि हित यौ, ना आपनो हित, हुयौ सबै कुरखेत
विष्णुदास बिनकौ प्रभु बरजौ इनको कटक समेत ।।[59]

तुलसीदास ने माया के स्वरूप का, अर्थात् अविद्या माया का बड़े विस्तार से वर्णन किया है-

मैं अरू मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ।।[60]

माया अखिल विश्व को नाच नचाती है[61] माया का प्रभाव मनुष्य पर ही नहीं देवासुर, ऋषि-मुनि आदि सब पर होता है ।

मन महुँ करइ बिचार बिधाता । माया बस कबि कोबिद ग्याता ।।[62]

राम माया के स्वामी और माया उनकी वशवर्तिनी है[63] और वह उनके भ्रू-विलास के समक्ष नटी के समान नृत्य करती है ।[64]

मत्सर, मनोरथ, क्रोध आदि उसके परिवार हैं और उनसे बचना सरल नहीं है । तुलसीदास कहते हैं --

यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमिति को बरनै पारा ।

सिव चतुराबन जाहि डेराहों । अपर जीव केहि लेखे माही ।।[65]

काम, क्रोध, लोभादि माया की प्रबल सेना है । तुलसीदास कहते है --

ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।

सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ।।[66]

अविद्या माया ब्रह्म से जीव को दूर रखती है जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँ में पड़ा हुआ है । विद्या माया जगत् की रचना करती है , ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित करती है ।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भवकूपा ।।

एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ।।[67]

माया से बचने का एकमात्र उपाय भगवान की एकान्तिक भक्ति है । इस सम्बन्ध में विष्णुदास और तुलसीदास दोनों एकमत है ।

2. VI मुक्ति और मुक्ति - साधन

संसार की प्रत्येक प्रकार की व्याधि से छुटकारा पाकर जीव का आनंद प्राप्त करना ही

मुक्ति या मोक्ष है । वैष्णवों के अनुसार यह आनंद दो प्रकार से प्राप्त करना संभव है -- शरीर के रहते हुए और शरीर त्याग करने के पश्चात् अर्थात् जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति । भक्तों को प्रायः जीवनमुक्ति ही प्रिय रही है ।

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में मुक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन एकदम नहीं हुआ है । मुक्ति के किसी भी प्रकार का उल्लेख उनमें नहीं मिलता है । दोनों को मुक्ति की नहीं, प्रभु की भक्ति की ही आकांक्षा है --

विष्णुदास - भगति सुखकर दीजिये, मुकुति मिलैगी आप ।
संत भगति भूतल विषै, मुकुति कौ नहीं चाप ।।[68]

तुलसीदास - राम भजत सोइ मुकुति गोसाई । अनइच्छित आवइ बरिआई ।।[69]

आलोच्य कवियों ने यद्यपि मुक्ति के किसी प्रकार का उल्लेख नहीं किया है तथापि विष्णुदास ने राम-जटायु[70] और बालि[71] को सालोक्य मुक्ति प्रदान करते हुए प्रतीत होते हैं । इसके विपरीत तुलसीदास के राम शबरी[72], कुंभकर्ण[73] और रावण[74] को सायुज्य मुक्ति ; बालि[75], विभीषण[76] एवं अन्य संतों[77] को सालोक्य मुक्ति देते हैं । कुंभकर्ण, रावण या किसी अन्य को विष्णुदास के राम ने किस प्रकार की मुक्ति दी है, इसका उल्लेख या संकेत नहीं हुआ है ।

मुक्ति पाने के लिए साधन के रूप में दोनो कवियों ने भक्ति को सबसे अधिक महत्त्व दिया है । विष्णुदास मानते हैं कि यदि प्रभु की भक्ति मिल गयी तो मुक्ति स्वयं मिल जायेगी । भक्त को मात्र भक्ति की आकांक्षा होती है, मुक्ति की नहीं । यह तथ्य उपरि उद्धृत पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है। तुलसीदास ने भक्ति को ही सर्वगुण सम्पन्न और स्वतंत्र कहा है- 'भगति सुतंत्र सकल सुखखानी'[78] एवं समस्त ज्ञान-विज्ञान को उसी के अधीन माना है ।[79] तुलसीदास मानते हैं --

बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ।।[80]

2. VII निष्कर्ष : विष्णुदास और तुलसीदास की उपरि विवेचित दार्शनिक मान्यताओं से स्पष्ट होता है कि दोनों शुद्ध दार्शनिक भले ही नहीं हों, पर उनकी रचनाएँ दार्शनिक विचारों से सर्वथा अछूती नहीं है । सरसरी तौर पर दोनों के ब्रह्म विषयक विचार अद्वैत के अनुसार हैं, पर व्यवहार की दृष्टि से वे निर्गुण के साथ ही उसके सगुण रूप के हिमायती हैं । सिद्धान्ततः निर्गुण और सगुण में भेद नहीं मानने पर भी दोनों को सगुण लीलामय रूप ही अधिक मान्य है । दोनों के आराध्य सगुण ब्रह्म ही हैं ।

जीव को दोनों आलोच्य कवियों ने ब्रह्म का चिदंश स्वीकार किया है जो माया के अधीन होने के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है । जीव का लक्ष्य माया को पाकर ब्रह्म तक पहुँचना ही है ।

जगत् और संसार के बारे में दोनों कवियों के विचार प्रायः एक से ही हैं । जगत् सत्य है और संसार मिथ्या, यह दोनों को स्वीकार्य है लेकिन अधिकांश स्थलों पर जगत् और संसार का प्रायः समान अर्थों में प्रयोग किया गया है, जिससे पाठक को भ्रम भी होता है । तुलसीदास ने इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार से विचार किया है ।

माया को दोनों कवियों ने ईश्वर की दासी कहा है । वह उन्हीं की इच्छा के अनुरूप कार्य करती है । माया का विद्यारूप भक्तों की हितैषिणी होती है जबकि अविद्या रूप विरोधिनी । माया के अविद्या रूप को तुलसीदास ने अधिक विस्तार प्रदान किया है ।

मोक्ष का अर्थ है सांसारिक बंधनों से छुटकारा और ब्रह्मत्व की प्राप्ति । इसके सैद्धान्तिक रूप का विवेचन किसी ने नही किया है । भक्तों को मुक्ति की अपेक्षा भक्ति ही प्रिय है । नाम नही लेते हुए भी दोनों की कृतियों में राम द्वारा विभिन्न पात्रों को विभिन्न प्रकार की मुक्ति देने के कथन हुए हैं । इसके बावजूद दोनों ने मुक्ति की नहीं भक्ति की ही

आकांक्षा की है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दार्शनिक विचारों की दृष्टि से विष्णुदास और तुलसीदास में समानता ही अधिक है दोनों में विरोध या वैमनस्य नहीं है । भगीरथ मिश्र के मत 'रामायन कथा' में दार्शनिक दृष्टिकोण का अभाव है[81] से सहमति आवश्यक नहीं है, पर इतना अवश्य है विष्णुदास में ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोह आदि के वर्णन अति संक्षेप में उपलब्ध होते हैं ; पर तुलसीदास ने अपनी विभिन्न रचनाओं में इन सब पर अधिक विस्तार से विचार प्रकट किया है ।

संदर्भ :

1. गोस्वामी तुलसीदास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल , पृ. 74
2. तुलसी ग्रंथावली, तीसरा खंड, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी , पृ. 127
3. गोस्वामी तुलसीदास - व्यक्तित्व : दर्शन : साहित्य, रामदत्त भारद्वाज , पृ. 372
4. तुलसीकाव्य मीमांसा, उदयभानु सिंह , पृ. 274
5. तुलसीदास, माता प्रसाद गुप्त, पृ. 492
6. रूक्मिणी मंगल
7. रामायन कथा - 4 / 12
8. - वहीं - 5 / 19
9. - वहीं - 23 / 13-15
10. रामचरितमानस - 2 / 92-4
11. अकल अनीह अनाम अरूपा / अनुभव गम्य अखंड अनूपा ।।
    मन मोतीत अमल अबिनासी / निर्विकार निरवधि सुख रासी ।।
    रामचरितमानस, उत्तरकांड - 110/2-3
12. सोइ सच्चिदानंद घन रामा / अज बिग्यान रूप बल धामा ।।
    व्यापक-व्याप्य अखंड अनंता । अखिल अमोधसक्ति भगवंता ।।
    रामचरितमानस, उत्तरकांड - 71 / 2
13. निर्मम निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख संदोहा ।।
    भगत हेतु भगवन प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।।
    रामचरितमानस, उत्तरकांड - 71-72
14. रामायन कथा - 2/126
15. रामचरितमानस - 1 / 15
16. - वहीं - 1 / 201
17. रामचरितमानस - 7 / 79/2-4
18. - वहीं - 1 / 117-3-4
19. - वहीं - 1 / 22'1
20. - वहीं - 1 / 205
21. विनय-पत्रिका - 56
22. दोहावली - दो. 7
23. रामचरितमानस, 7 / 110/4
24. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, रमा श्रीवास्तव, पृ 204
25. रूक्मिणी मंगल - 18
26. रामचरितमानस - 7 / 116 / 1
27. - वहीं - 4 / 10 / 3

28.विनय-पत्रिका - 136
29.रामचरितमानस - 3 / 15
30. - वहीं - I / 115/4
31. - वहीं - 1 / 91 / 2
32.विनय-पत्रिका - 112
33.दोहावली - 246
34.रामचरितमानस - 7 / 77 / 2
35. - वहीं - 2 / 276 /2
36.विनय-पत्रिका - 203
37.वैराग्य संदीपनी - 6
38.रूक्मिणी मंगल
39.रामचरितमानस - 1 / 201
40.विष्णुपदी
41.रामचरितमानस - 1 / श्लोक - 6
42. - वहीं - 1 / 116 / 4
43. - वहीं - 1 / 185 / 3
44.रामचरितमानस - 7 / 12 / 5
45.विनय-पत्रिका - 66
46. - वहीं - 188
47.कवितावली 7 / 39
48.रामचरितमानस - 5/9 चौ.
49. - वहीं - 1 / 7 (ग)
50. - वहीं - 5/3 दो.
51.विनयपत्रिका - 111
52.रामचरितमानस - 7 / 112 (ख)
53.विनय-पत्रिका - 120
54.रामचरितमानस - 1 / 117
55.विनय-पत्रिका - 111
56.रामायन कथा - 21 / 68
57. - वहीं - 228 / 16
58.रामचरितमानस - 2 / 125
59.विष्णुपदी
60.रामचरितमानस - 3 / 14 (1-2)

61.जो माया जब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहुँ न पावा ।

रामचरितमानस, उत्तरकांड - 71 / 1

62.रामचरितमानस - 7/59/2

63. - वहीं - 5/20/2

64. - वहीं - 7 / 71 / 1

65. - वहीं - 7 / 70 / 3

66. - वहीं - 7 / 71 (क)

67. - वहीं - 3/14/3

68.सनेहलीला -

69.रामचरितमानस - 7 / 118/ 2

70.रामायन कथा - 43 / 22

71. - वहीं - 49 / 92

72.रामचरितमानस - 3 / 35 (छं.)

73. - वहीं - 6 / 70 / 4

74. - वहीं - 6 / 102 / 5

75. - वहीं - 4 / 10 / 1

76. - वहीं - 6 / 116 (ख)

77. - वहीं - 7 / 14 / 2

78. - वहीं - 7/44/3

79. - वहीं - 3/15/2

80. - वहीं - 7/122

81.रामायन कथा - भूमिका पृ. 36

तृतीय अध्याय

भक्ति विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

तृतीय अध्याय

भक्ति विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

3. I उपक्रम :

विष्णुदास और तुलसीदास की भक्ति से सम्बन्धी विचारधारा पर कुछ भी कहने के पूर्व इतना ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि विष्णुदास मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के आरंभिक दौर के कवि हैं । हरिहरनाथ द्विवेदी के अनुसार - "उनका जन्म सन् 1400 ई. के पूर्व होना चाहिए।" उनकी अति प्रसिद्ध रचनाएँ "महाभारत" और "रामायन कथा" क्रमशः सन् 1435 ई. और सन् 1442 ई. की हैं । वे मूलतः किसी सम्प्रदाय या पंथ से जुड़े नहीं थे । उनकी भक्ति में सामान्य हिन्दूधर्म और जीवन पद्धति से जुड़े धार्मिक विश्वास को वाणी मिली है । उनमें किसी प्रकार का पान्थिक आग्रह नहीं है । उनमें राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, गणेश, सरस्वती आदि देवताओं में सबके प्रति समान मान्यता अथवा भक्ति भावना मिलती हैं । तब भी वे राम के प्रति अधिक उन्मुख हैं । एक सीमा तक वे रामभक्त ही ठहरते हैं । इसके विपरीत तुलसीदास उत्तरमध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के चरमोत्कर्ष समय में हुए । वे शुद्ध अर्थों में रामभक्त थे । पहले रामभक्त एवं बाद में कवि । विष्णुदास पहले कवि थे, बाद में भक्त । इस अन्तर को ध्यान में रखने से दोनों की रचनाओं में भक्ति विषयक उद्गारों में जो अन्तर है, वह स्पष्ट हो जाता है ।

3. II भक्ति :

विभिन्न आचार्यों, विद्वानों आदि के द्वारा भक्ति की अनेक प्रकार से परिभाषाएँ दी गयी हैं । उन सब का सार है - भजनीय देवता के प्रति प्रेम या अनुराग अर्थात् भक्ति का सब कुछ है भगवान के प्रति अनन्य प्रेम।[1] प्रेम सकाम भी हो सकता है और निष्काम भी । प्रेम के इन दोनों रूपों में पर्याप्त अन्तर है । आलोच्य कवियों ने सकाम प्रेम की तुलना में निष्काम प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है । विष्णुदास ने 'सनेहलीला' में ऊधौ के माध्यम से

गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम का वर्णन करते हुए कहा है --

अस गोपिन के प्रेम की, महिमा कछु अनन्त ।
मैं पूछी षटमास लौं, तऊन पायौ अन्तर ।।[2]

और तुलसीदास की इस सम्बन्ध में अति प्रसिद्ध घोषणा है -

स्वारथ-परमारथ रहित, सीताराम सनेह ।
तुलसी सो फलचारि को, फल हमार मत एह ।।[3]

दोनों कवियों ने अपनी अपनी रचनाओं में ईश्वर के प्रति निष्काम भाव की भक्ति के लिए प्रार्थना की है ।

विष्णुदास - गोपिनी ब्रज की रहति है, स्याम राम को नाम ।
तैसी लगन मो दीजिए, जपऊँ नाम निष्काम ।।[4]

तुलसीदास - (क) प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ।[5]
(ख) प्रेम भगति जलु बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ।[6]

3: III भक्ति की महत्ता :

विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों आलोच्य कवियों को भक्ति का महत्त्व समान रूप में मान्य है, किन्तु दोनों के वर्णन में एक अन्तर है । तुलसीदास अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर विभिन्न पात्रों के द्वारा भक्ति की महत्ता का उल्लेख कराते चलते हैं, पर विष्णुदास की रचनाओं में वैसे कथन मुश्किल से ही खोजे जाने पर मिलते हैं । बहुत कम स्थलों पर विष्णुदास ने भक्ति की महत्ता का कथन किया है । विष्णुदास के ऊधौ जहाँ ब्रज की गोपियों की भक्ति (स्याम के नाम को बार-बार कहना) की तरह की भक्ति की आकांक्षा करते है, वहाँ तुलसी राम की अनपायनी भक्ति के आकांक्षी हैं।

दोनों कवियों ने भगवान की प्राप्ति के विभिन्न साधनों में भक्ति को सर्वोत्तम और सर्वसुलभ माना है, जो शास्त्रीय कथन 'अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ' के ही अनुरूप है ।

उसकी सरलता, सहजता, सुलभता आदि का संकेत तुलसीदास ने निम्नांकित प्रकार से किया है --

क. कै तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि ।

दुइ महँ रूचै, जो सुगम सो, कीबै तुलसी तोहि ।।[7]

ख. प्रीति राम सौं, नीतिपथ चलिय, राग रिस जीति ।[8]

तभी सभी जिज्ञासुओं से उनका यह पूछना सार्थक हो जाता है --

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा ।

जोग न मख जप तप उपवासा ।।[9]

इसी कारण जिज्ञासु इस निष्कर्ष पर आ जाता है --

क. सुलभ सुखद मारग यह भाई । भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ।।[10]

ख. रघुपति भक्ति सुलभ सुखकारी । सो त्रयताप-सोक भय हारी ।।[11]

ग. जहँ लग साधन वेद बखानी । सब करि फल हरि भगति भवानी ।।[12]

ऐसी उक्तियों के द्वारा तुलसीदास मानों गीता की उक्ति 'तस्याहं सुलभः पार्थ' (गीता 8/14) को ही पुष्ट करते हैं । तुलसीदास की मान्यता है कि 'राम तुझे प्यारा लगें या राम को तुम प्यारे लगो', यहीं भक्ति है ।

तुलसीदास की यह मान्यता शाण्डिल्य की भक्ति 'परानुरक्तिरीश्वरे' और नारद के 'परम प्रेम रूपा' की ही मानों व्याख्या है । विष्णुदास की रचनाओं में भक्ति की ऐसी कोई व्याख्या या परिभाषा नहीं मिलती है । विष्णुदास की रचनाओं में भक्ति विषयक जो भी कथन मिलते हैं, वे किसी भी सामान्य वैष्णव की तरह राम को मुक्तिदाता मानते हुए उनकी प्रार्थना करते हैं --

स्वामी भुक्ति मुक्ति दातारू । प्रनऊँ रामदेव अवतारू ।।[13]

3. IV भक्ति के साधन :

विष्णुदास ने भक्ति के साधन के रूप में रामकथा का गायन, राम-नाम का स्मरण, राम के नाम, यश, गुण-गाथा आदि का श्रवण, तीर्थाटन, गुरू और ब्राह्मण के प्रति भक्ति आदि का कथन किया है । यथा --

क. मन दै रामकथा जो सुनै । बाढ़ै आयु विष्नु कवि भनै ।।
काटै व्याधि लक्ष्मि घर होइ । सोग व्याधि पीड़ित नहिं कोई ।।
जीव कंठ मुख अहि निसि जासु । यह अचिर्ज जम त्रास न तासु ।।
राम राम जो राम कहाइ । सो नर नरक बास नहिं जाइ ।।
जोग जुगति जो राखहिं ध्यान । कनक रतन बहु दीजतु दान ।।
तीरथ सकल फिरत को न्हाइ । तिन फल सुनहु रमायन भाई ।।
महिमा कहि को जाहि सुपार । स्वारथ परमारथ उपगार ।।[14]

ख. मन थिर बुद्धि सुनै जो कोइ । ता कहँ व्याधि पीर ना होइ ।।
अरसठ तीरथ कौ फल लहै । विष्नुदास निज गुरु वर कहै ।।[15]

ग. विष्नुदास कवि कह्यौ बखान । पढ़त सुनत गंगा अस्नान ।।[16]

घ. बंधन मुक्ति राम को सुनै । नासै पाप विघ्नु कवि भनै ।।[17]

इस तरह और भी कथन प्राप्त होते हैं । तुलसीदास ने भी उन साधनों को स्वीकार किया है । तुलसीदास के राम लक्ष्मण को भक्ति-प्राप्ति के आठ साधनों से परिचित कराते हैं ।[18] यथा --

1. विप्र चरण में प्रीति
2. श्रुति के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन
3. संत-चरण में प्रेम
4. भगवान के भजन में दृढ़ नियम पालन

5. ईश्वर में सभी प्रकार के सम्बन्धो को मानना

6. भगवान के गुण का कीर्तन

7. काम-क्रोध आदि का परित्याग, और

8. निष्काम भजन करना

यहाँ तुलसी द्वारा प्रयुक्त 'विप्र' तत्त्वज्ञाता ब्राह्मण का अर्थ स्वीकार किया होगा।[19] विष्णुदास ने भी गुरु और ब्राह्मण की भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया है--

भगति करौ गुरु बांभन तनी ।[20]

इसके अतिरिक्त तीर्थाटन और दान[21], राम नाम का उच्चारण[22], हनुमान के नाम का स्मरण[23] आदि को भक्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया हैं । महाभारत में 'धर्म-नेम-तप-तीरथ न्हानू'[24] को भी साधन माना गया है ।

3. V भक्ति के बाधक तत्त्व :

भक्ति के साधन के साथ ही भक्ति के बाधक तत्त्वों की ओर भी आलोच्य कवियों का ध्यान गया है । तुलसीदास के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, राग आदि भक्ति के बाधक तत्त्व हैं --

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।

सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ।[25]

विष्णुदास ने ब्राह्मणों को दुख देना, गुरु सेवा नहीं करना[26], गंगा आदि तीर्थों की निंदा करना[27] आदि को भक्ति का बाधक तत्त्व स्वीकार किया है । तुलसीदास ने रागद्वेष, चिंता, माया, कुतर्क, अश्रद्धा[28] आदि को भी भक्ति का बाधक माना है ।

3. VI भक्ति के भेद :

भक्ति के भेद के बारे में विष्णुदास की रचनाओं में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं हुआ है । इसके विपरीत तुलसीदास को दो भेद सकाम[29] और निष्काम[30] मान्य हैं । इनमें उन्होंने निष्काम भक्ति की ही कामना की है । यथा --

क. सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।
नाम सप्रेम पियूष ह्रदय तिन्हहुँ किए मन मीन ।।[31]

ख. बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के ह्रदय कमल महुँ करऊँ सदा बिश्राम ।।[32]

उनके अतिरिक्त तुलसीदास को अविरल भक्ति, अनूपा भक्ति, परम भक्ति अनपायिनी भक्ति भी मान्य हैं । इन सबके उदाहरण आगे रखे जाते हैं । यथा --

1. **अविरल भक्ति** - अविरल भगति विरति सतसंगा ।[33]
2. **अनूपा भक्ति** - पंथ कहत निज भगति अनूपा ।[34]
3. **परम भक्ति** - लीन्हेसि परम भगति बर भागी ।[35]
4. **अनपायिनी भक्ति** - अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ।[36]

3. VII भक्ति का साधन-क्रम :

भक्ति की परमोच्च स्थिति या तुलसीदास की अनपायिनी भक्ति किसी भक्त को सीधे प्राप्त नहीं होती । उसके लिए एक निश्चित साधन-क्रम से गुजरना पड़ता है । उसके अनेक विधि-निषेधों का पालन करना पड़ता है । उसे भक्ति के सोपान भी कह सकते हैं । उसे ही भगवत आदि ग्रंथों में नवधा भक्ति के रूप में व्याख्यायित किया गया है जिन्हें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पाद-सेवन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन नाम मिला है । तुलसीदास के राम ने शबरी के समक्ष जिस नवधा भक्ति की चर्चा की है,

वस्तुतः तो वह नवधा भक्ति, भक्ति के साधना क्रम ही हैं । यथा --

नवधा भगति कहऊँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरू मन माहीं ।।
प्रथम भगति सन्तह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुर पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन करइ कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्बासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।
सातवँ मम मोहि मय जग देखा । मोते संत अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल कब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।[37]

वस्तुतः नवधा भक्ति के इस कथन में तीन त्रिक् हैं -- श्रवण-कीर्तन-स्मरण, पादसेवन-अर्चन-वन्दन और दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन । इनमें प्रथम दो चिर साधन रूप में व्याख्यायित होते हैं और तीसरा भक्ति भेद के रूप में । इनके सम्बन्ध में किंचित विचार इस प्रकार किये जा सकते हैं --

श्रवण-कीर्तन-स्मरण : भगवान अर्थात् आराध्य देव के नाम, यश, गुण, महत्त्व आदि की लीलाओं को श्रद्धापूर्वक सुनना ही श्रवण भक्ति, उन्हें श्रद्धाभाव से कहना पढ़ना-गाना, कीर्तन भक्ति है और एकाग्र मन से उन सबको याद करना स्मरण भक्ति है । उनमें से नाम गायन अथवा भगवान के नाम कीर्तन, श्रवण, स्मरण को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। इस सम्बन्ध में दोनों कवियों के विचारों में अन्तर प्रायः नहीं हैं । यथा --

विष्णुदास - क. पढ़त सुनत गंगा अस्नान ।[38]
ख. बंधन मुक्ति राम को सुनै ।
नासै पाप विष्नु कवि भनै ।।[39]

तुलसीदास - क. नामु राम को कलपतरू कलि कल्यान निबासु ।

जो सुमिरत भयो तें, तुलसी तुलसीदासु ।।[40]

ख. श्रुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिए पुनि रामहि को थलु है ।[41]

विष्णुदास ने कहा है कि मनुष्य के हृदय रूपी खेत में जब लोभ और अविवेक के बीज गिरने के कारण पाप-वृक्ष उत्पन्न होता है । उसमें विष के समान प्रभाव उत्पन्न करने वाले फल-फूल लगते हैं । उसके कारण मनुष्य का गुण क्षीण हो जाता है । वह संताप से ग्रस्त हो जाता है । उस पाप-वृक्ष को काटने के लिए या समूल नष्ट करने के लिए राम-नाम रूपी दो अक्षरों को कुठार के रूप में उपयोग कर अर्थात् राम-नाम के दोनों अक्षरों को जीभ में ग्रहण कर ही उसे नष्ट किया जा सकता है । स्पष्ट है कि विष्णुदास यहाँ राम-नाम का स्मरण और कीर्तन करने की बात कर रहे हैं । यथा --

लोभ बीज मानुस कौ बयौ । दुर्वच बाढ़ि पाप तरू भयौ ।।
ताहि कुकर्म भए भल फूल । जिहि विष स्वादु लह्यौ बिषमूल ।।
प्रथम लोभ दूजैं अबिबेकु । द्वै तरूवर दीसैं फल एकु ।।
दुष्ट सबद नौका ता पाप । ता गुन हरत परत संताप ।।
राम ते द्वै अच्छरनि कुठार । सिरी कहत अति तीछ्न धार ।।
जे अबलंब जीभ कौं धरैं । मूल छेदि कै पातकु हरैं ।।
पूरब जनम करम के भाइ । तीरथ दान न सक्यौ सिरइ ।।
भौसागर कौ जैहै तिरी । विष्णुदास कवि अस्तुति करी ।।
धन बिनु धर्म होत नहिं भोग । भ्यास बाहिरैं होत न जोग ।।
तीनि मांझ जब एक न लाह्यौ । विष्णुदास रामायनु कह्यौ ।।
जाहि सुनत नर पातकु नरै । पुरुष पाप ग्रह पास न परै ।।
जाके गुन अनेक संसार । जपहु राम चित बारंबार ।।[42]

जो पाप तीर्थाटन, दान-पुण्य से भी समाप्त नहीं होते, वे सभी राम-नाम का श्रवण, स्मरण-कीर्तन करने से समाप्त हो जाते हैं । महाभारत में विष्णुदास ने कथा - श्रवण और दान का फल तीर्थाटन के समान ही माना है ।[43]

विष्णुदास ने श्रवण-कीर्तन-स्मरण पर और साधना की अपेक्षा अधिक बल दिया है । वे अपनी रचनाओं के प्रारंभ और अंत में प्रायः इस प्रकार के कथन अधिक करते हैं । आगे कुछ उदाहरण रखे जाते हैं --

क. देह गेह सब छाणि के करत रूप को ध्यान ।[44]

ख. पढ़त गुनत पातक हरै, कलंक न दीस ।[45]

ग. पांडव चरित जो सुनै सुनावै ।
अन्न धन्न पुत्रहि फल पावै ।।[46]

घ. स्वर्गारोहणि की कथा पढ़ै सुनै जो कोइ ।
अष्टा दशौ पुराण कीं ताहि महाफल होइ ।[47]

ङ. राम राम जो राम कहाइ ।
सो नर नरक बास नहिं जाइ ।।[48]

च. मन दै रामकथा जो सुनै,
बाढै आयु विष्नु कवि भनै ।[49]

पादसेवन-अर्चन-वन्दन : पादसेवन-अर्चन-वन्दन आदि का सम्बन्ध आराध्य देवता के स्वरूप से है । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने अपने को सेवक और आराध्य देव को स्वामी माना है । स्वामी के प्रति सेवक का जैसा व्यवहार प्रत्यक्ष लोक में होता है, वैसा ही भगवान के प्रति भक्त का व्यवहार पादसेवन भक्ति, आराध्यदेव के स्वरूप की श्रद्धापूर्वक पूजा करना अर्चन भक्ति और उनके माहात्म्य को हृदय में उतारना और स्तुति करना ही

वन्दन भक्ति है । तुलसीदास और विष्णुदास दोनों की रचनाओं में इसके उदाहरण प्राप्त होते हैं । इतना अवश्य है कि विष्णुदास की रचनाओं में इसके उदाहरण विरल हैं, जबकि तुलसीदास की रचनाओं में इसके उदाहरण अधिक सुलभ हैं । आगे दोनों से उदाहरण रखे जाते हैं --

विष्णुदास - देवगननि के बन्दों पाईं ।
मुनि नारद को जाहु लिवाई ।।[50]

तुलसीदास - बड़भागी अंगद हनुमाना ।
चरन कमल चापत बिधि नाना ।[51]

अर्चन भक्ति :

विष्णुदास - तुमहि निबेदित करि सब भोजन करहीं ।
गोपी नंद-जसोदा कोउ मानत नाहीं ।।[52]

तुलसीदास - कंद मूल फल भरि-भरि दोना ।
चल रंक जनु लूटन सोना ।।
करहि जोहारू भेंट धरि आगे ।
प्रभुहि बिलोकहि अति अनुरागे ।।[53]

वन्दन भक्ति :

विष्णुदास - तब ऊधौ आये कहाँ, श्रीकृष्णचन्द्र के पास ।
पा लागि वन्दन किये, बोलत लै लै नाम ।।
ग्वाल बाल सब गोपिका, ब्रज के जीव अनन्य ।
तुमही पाय लागन कहीं, दुनो देव ब्रह्मन्य ।।[54]

तुलसीदास - बंदउँ बालरूप सोइ रामू । सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ।।[55]

3. VIII भगवान और भक्त की मनोभूमि :

साधन क्रम का अन्तिम त्रिक् अर्थात् दास्य-सख्य- आत्मनिवेदन साधन की अपेक्षा भक्तों की मनोवृतियाँ हैं । उन्हें भगवान और भक्त की मनोभूमि के रूप में ही व्याख्यायित किया जाता है । भक्तों के मन में भगवान के प्रति लौकिक सम्बन्ध के अनुरूप ही उल्लास, पवित्रता, निर्भरता, प्रेम, विश्वास, भय आदि के रूप में व्यक्त होती हैं । सम्बन्धों के अनुरूप रतियाँ पाँच प्रकार की होती हैं -- शम, प्रीति, प्रेम, वात्सल्य और मधुरा। इन पाँच प्रकार की रतियों के आधार पर क्रमशः शान्ता, दास्या, सख्या, वात्सल्या और मधुरा भाव की पाँच रसभक्तियाँ भक्ति रस होती हैं । विष्णुदास की रचनाओं इन सबके उदाहरण विरल हैं । तुलसीदास में शान्ता भक्ति और दास्या भक्ति के उदाहरण अधिक सुलभ हैं, किन्तु वात्सल्य भक्ति के उदाहरण भी अपेक्षया कम प्राप्त होते हैं । यथा--

शान्ता भक्ति - लाभ कहा मानुष तनु पाए ।।[56]

दास्या भक्ति - राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं ।[57]

वात्सल्य भक्ति - 'छोटी मोटी मीठी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दे री मैया' ।
'ले कन्हैया' 'सो कब' ? अबहिं तात ।
तुलसी निरखि हरषत बरषत फूल, भूरिभागी
ब्रजवासी बिबुध सिद्ध सिहात ।।[58]

मधूरा भक्ति - कामिहिं नारि पिआरि जिमि ।
लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिनि रघुनाथ निरन्तर ।
प्रिय लागहु मोहि राम ।।[59]

सख्याभक्ति - सखा वचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव ।

कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ।।[60]

भक्ति के शास्त्रीय ग्रंथो में विनय की सात भूमिकाएँ मानी गयी हैं -- दीनता, मानमर्षता, भयदर्शना, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा । इनके उदाहरण तुलसीदास की रचनाओं में, मुख्यतः विनयपत्रिका में, सहजता से प्राप्त होते हैं ।[61] तुलसीदास और विष्णुदास दोनों की कामना ईश्वर की शरण प्राप्ति है । इसके बावजूद विष्णुदास में शरणागति के विभिन्न अंगों के कथन नहीं हुए हैं जबकि तुलसीदास की रचनाओं में अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का परित्याग, विश्वास-रक्षण, गोप्तृत्ववरण, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य - इन छहों के उदाहरण प्राप्त होते हैं ।[62] भक्ति की जिन ग्यारह आसक्तियों को 'नारदभक्तिसूत्र' में मान्यता मिली है उनमें से तुलसीदास की रचनाओं में गुणमाहात्म्याशक्ति, स्मरणाशक्ति, दास्याशक्ति और आत्मनिवेदनाशक्ति के उदाहरण सुलभ हैं, पर शेष के उदाहरण विरल हैं । विष्णुदास की रचनाओं में केवल गुणमाहात्म्याशक्ति और स्मरणाशक्ति के उदाहरण पाये जाते हैं । शेष के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते हैं ।

3. IX भक्ति के अधिकारी :

भक्ति किसी व्यक्ति या जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं होती । वह सबके लिए समान रूप से उन्मुक्त है । उसका अधिकारी कोई भी व्यक्ति हो सकता है । इस सम्बन्ध में विष्णुदास प्रायः मौन हैं, पर तुलसीदास ने 'गीता' और नारद 'भक्तिसूत्र' के अनुरूप ही सर्वजन अधिकारीत्व की बात स्वीकार की है --

राम भगति जिन्ह कैं उर नाही ।

कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं ।[63]

अन्यत्र तुलसीदास ने भक्ति के पात्रत्व पर विधि निषेध की पद्धति से विचार करते हुए लिखा है --

रामकथा के तेई अधिकारी । जिन्ह के संत संगति अति प्यारी ।।

गुरुपद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ।

ता कहँ यह बिशेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्री रघुराई ।। ।[64]

उन्होंने मानस के उत्तरकाण्ड (7/1/2 -13) में भक्ति के अनाधिकारियों का विस्तार से उल्लेख किया है । विष्णुदास ने इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं किया है ।

3. X भक्त

भक्त का तात्पर्य है भजनीय (आराध्यदेव) का भजन करने वाला । गीता में उसी के लिए कहा गया है -- 'सर्वधर्मान् परित्यज्य', एवं अपने को आराध्यदेव के चरणों में डाल दे । तुलसीदास ने सच्चे भक्त का निरूपण करते हुए 'कवितावली' में लिखा है --

भौंह-कमान सँधान सुठान जे नारि बिलोकनि-बान तें बाँचें ।

कोप-कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे ।

लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे ।

नीके हैं साधु सबै तुलसी, पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ।।[65]

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड (7/45/2-4) में भी तुलसीदास ने राम के द्वारा भक्त के लक्षण बताया है । विष्णुदास ने भक्त के अधिकारीत्व अथवा भक्त के लक्षण तो नहीं बताया है, पर आदर्श भक्ति भाव का वर्णन अपनी एक 'विष्णुपदी' में किया है । यथा --

हरि सौ कहि सनेह मन सॉचौ ।

छिंडि छल छंद सकल, नाम गुन बाचौ ।

राखो बस पाँच इन्द्री, चित्त करौ नहि काँचौ ।

विष्णुदास प्रभु सुमरि अबहुँ यही कहौ है साँचौ ।[66]

तुलसीदास ने 'गीता' के अनुरूप ही भक्तों के चार प्रकार स्वीकार किये हैं -- ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त्त । इनमें इन चारों प्रकार के भक्तों के वर्णन भी मिलते हैं[67] विष्णुदास ने 'सनेहलीला' की गोपियों को आर्त्त भक्त ही माना है । उनका कथन है --

आरत गोपी जपत है, नाम तुम्हार गुपाल ।

यह संकट तबहि मिटै, जब देखैं नंदलाल ।

विष्णुदास की रचनाओं में आदर्श भक्त के रूप में हनुमान का अंकन हुआ है ।[68] राम ने उन्हें वर भी प्रदान किया है । 'सनेहलीला' की गोपियाँ भी श्रीकृष्ण की निष्ठावान भक्त है । ऊधौ ने उनकी भक्ति की प्रशंसा श्रीकृष्ण से की है ।[69]

3. XI निष्कर्ष :

भक्ति का मार्ग प्रवृत्तिपरक है । ईश्वर प्राप्ति के अन्य सभी साधनों से भक्ति की श्रेष्ठता सब को मान्य है । आलोच्य कवि विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों ने भक्ति मार्ग को अतीव महत्त्व दिया है । चूँकि विष्णुदास वैसे भक्त नहीं थे, जैसे तुलसीदास, अतः विष्णुदास की रचनाओं में भक्ति विषयक विचार भी तुलसीदास की तुलना में बहुत कम मिलते हैं । उनके लिए लगता है कि भक्ति मात्र परम्परा का पालन है, पर तुलसीदास का भक्त रूप अति विशुद्ध रूप में प्रकट हुआ है । भगवान के ऐश्वर्य रूप से विष्णुदास और तुलसीदास दोनों प्रभावित है , पर तुलसीदास की कृतियों में इसका अंकन अपेक्षया अधिक हुआ है । भगवान के शील, शक्ति और सौन्दर्य का अंकन किया है दोनों ने, पर तुलसीदास में उसका अतीव समन्वित रूप अंकित हुआ है ।

विष्णुदास ने आराध्य के रूप में श्रीराम और श्रीकृष्ण के प्रायः समान महत्त्व दिया है । 'रामायन कथा' में जहाँ श्रीराम आराध्यदेव के रूप में स्वीकृत हैं, वहीं 'सनेहलीला', 'विष्णुपदी' एवं 'स्वर्गारोहण' और 'महाभारत' में राम से अधिक महत्त्व कृष्ण को मिला है । दोनों के राम, कृष्ण, सीता आदि अवतार हैं । सीता राम की माया है, मायाशक्ति का अवतार है ।

भक्ति के भेद जैसी स्पष्ट कल्पना तुलसीदास में है, वैसी स्पष्टता विष्णुदास में नहीं मिलती है । भेद और स्तर के साथ ही भक्तों की कोटियों का वर्णन तुलसीदास ने

किया है। विष्णुदास में भक्ति के भेद स्वीकृत हैं पर भक्तों की कोटियों का उल्लेख नहीं हुआ है । आदर्श भक्ति-भाव के वर्णन द्वारा उन्होंने भक्त के सम्बन्ध में बातें व्यक्त कर दी हैं।

स्वरूप सेवा दोनों को मान्य है । तुलसीदास ने निर्गुणोपासना और सगुण की स्वरूप सेवा में अन्तर प्रायः नही माना है, पर विष्णुदास ने निर्गुणोपासना का उल्लेख किया ही नहीं है । दोनों कवियों के अनुसार भक्ति का मूल आदर्श और लक्ष्य भगवान की शरणागति पाना है । इन सबके बावजूद विष्णुदास और तुलसीदास के भक्ति विषयक विवेचन में जो अन्तर है उसका कारण दोनों की भक्तिभावना में अन्तर होना ही माना जायेगा ।

संदर्भ :

1\. क. ईश्वर में परमानुरक्ति - शाण्डिल्यभक्तिसूत्र, 2

ख. ईश्वर के प्रति परम प्रेम - नारदभक्तिसूत्र, 2

ग. पूज्यजनों के प्रति अनुराग - देवीभागवत - 7/31

घ. विष्णुपुराण - 1/20/20

ङ. रामानुज - विशिष्टाद्वैतकोश (वेदान्तदेशिका), पृ 184

च. रामानंद - वैष्णवमताव्य भाष्कर, 65

छ. तत्त्वदीप निबंध (शास्त्रार्थ प्रकरण), 46

ज. श्रीमद्भागवत - 3/25/32-33

झ. गीता 9/13-14

ञ. श्रद्धामिश्रित प्रेम - आचार्य शुक्ल, चिंतामणि (भाग - 1), पृ. 32

2\. सनेहलीला - 113

3\. दोहावली - 60

4\. सनेहलीला - 120

5\. रामचरितमानस - 7/34

6\. - वहीं - 7/48/3

7\. दोहावली - 78

8\. - वहीं - 86

9\. रामचरितमानस - 7/45/1

10\. - वहीं - 7/44/2

11\. विनयपत्रिका - 136

12\. रामचरितमानस - 7/115

13\. रामायनकथा - 1/6

14\. - वहीं - 203/180-183

15\. - वहीं - 246/70

16\. - वहीं - 137/25

17\. - वहीं - 154/109

18\. रामचरितमानस - 3/15-16

19\. जानइ ब्रह्म सो विप्रबर - रामचरितमानस 7/99 ख.

20\. रामायन कथा - 125/29

21\. - वहीं - 90/9

22\. - वहीं - 90/9-8

23\. - वहीं - 119/52

24.महाभारत - 7/63
25.रामचरितमानस - 5/38
26.महाभारत - 15/38
27. - वहीं - 16/141
28.देखिए - रामचरितमानस के उत्तरकांड में वर्णित मानसरोग का निरूपण
29.यह 'भागवत पुराण' के ही अनुरूप है - रामचरितमास 7/14/2, दोहावली - 60
30.कवितावली - 7/118; रामचरितमानस 2/129/1
31.रामचरितमानस - 1/22
32. - वहीं - 3/16
33. - वहीं - 3/12/6
34. - वहीं - 3/11/3
35. - वहीं - 4/10/3
36. - वहीं - 4/24/4
37. - वहीं - 3/34/4-35/3
38.रामायन कथा - 137/25
39. - वहीं - 154/109
40.रामचरितमानस - 1/26, 1/20/2-3, विनयपत्रिका, 67
41.कवितावली - 6/37
42.रामायन कथा - 90/5-11
43.महाभारत - 170/201
44.सनेहलीला - 114
45.महाभारत - 5 / दोहरा 3
46. - वहीं - (भूमिका) - 36
47. - वहीं - (भूमिका) - 36
48.रामायन कथा - 204/182
49. - वहीं - - 204/181
50.स्वर्गारोहण
51.रामचरितमानस - 6/10/4
52.सनेहलीला - 112
53.रामचरितमानस - 2/134/1-3
54.सनेहलीला - 109,110
55.रामचरितमानस - 1/111/2
56.विनयपत्रिका -201

57.विनयपत्रिका - 76
58.कृष्ण गीतावली - 2
59.रामचरितमानस - 7/130 ख.
60. - वहीं - 4/5
61.विनयपत्रिका - क्रमशः 179, 94, 189, 90, 166, 172 एवं 111
62. - वहीं - क्रमशः 76, 174, 155, 206, 187 एवं 76
63.रामचरितमानस - 7/112/7
64. - वहीं - 7/177:3-4
65.कवितावली - 7/118
66.निबंध अल्पज्ञात कवि विष्णुदास - डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध
67.रामचरितमानस - 1/21/1, 1/21/, 1/21/2, 1/21/3
68.रामायन कथा - 231/59-60
69.सनेहलीला - दोहा 109 एवं आगे

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक विचाराधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

4.1 उपक्रम :

ध्रियते लोकेऽनेन धरति लोकं वा धृ (धारणे) + मन्, संस्कृत तद्भव अर्थात् जिस शुभ या नैतिक कर्म द्वारा जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र धारण किया जाये, वह धर्म कहा जाता है । धर्म शब्द की परिभाषा सदा विकसित होती रही है । डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध के अनुसार "अन्तर्वृत्तियों की जो समष्टि मानव जीवन की समस्त गतिविधियों का नियमन-संचालन कर उसे सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने की दिशा में अग्रसर होती है, वही धर्म है ।"[1] महर्षि कणाद ने उन सभी कार्यों को धर्म की परिधि में रखा है जिनकी साधना से लौकिक उन्नति (अभ्युदय) और मोक्ष (निःश्रेयस्) की सिद्धि होती है -- 'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः । भारत के सांस्कृतिक विकास और धार्मिक साधना के इतिहास पर विचार करने से विदित होता है कि विभिन्न कालखण्डों में अलग-अलग मनीषियों ने मनुष्य की लौकिक उन्नति और पारलौकिक सिद्धि (मोक्षप्राप्ति) के लिए युग के अनुकूल राह दिखायी है । पतंजलि ने धर्म का अर्थ शास्त्रोपदेश, ऋषि सम्प्रदायों द्वारा प्रचलित आचार लिया है -- 'धर्मोपदेशमिदं शास्त्रम्, ऋषि सम्प्रदायो धर्मः'।[2] कालान्तर में धर्म की विस्तृत परिभाषा स्थिर नहीं रह सकी एवं ईश्वरोन्मुख कर्म को धर्म कहा गया । धर्म के इसी अर्थ में वैदिक धर्म, हिन्दू धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म आदि शब्द विकसित हुए एवं चले । जब इनमें अधिक विशिष्टता या संकीर्णता आयी तब धर्म से सम्बन्धित अनेक पद्धतियों द्वारा अलग-अलग सम्प्रदायों का विकास हुआ । इस प्रकार धर्म शब्द अपने व्यापक अर्थ में संकीर्णतम अर्थ तक पहुँच गया ।

आलोच्य कवि विष्णुदास और तुलसीदास दोनों हिन्दू हैं एवं दोनों उत्तरमध्यकाल की उपज हैं । दोनों ने युगीन परिवेश और परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू

(भारतीय) धार्मिक जीवन को संस्कारित कर नयी गति देने की चेष्टा की । हिन्दूओं के धार्मिक दृष्टिकोण को आचार्य काका कालेलकर ने अग्रांकित रूप में व्याख्यायित किया है--

वेदान्वस्य स्वीकारः साधनात् अनेकता ।

उपास्यानाम अनियमाः हिन्दूधर्मस्य लक्षणम् ।।[3]

अन्य आचायों ने इसे ही किंचित् भिन्न रूप में इस प्रकार स्वीकार किया है :

इश्वरैक्यं पुनर्जन्म पुरुषार्थैक्यनिष्ठता ।

साधनानामनेकत्वम् सर्वभूत हितेच्छुता ।।[4]

धार्मिक दृष्टि से ही हिन्दूओं के सनातन सिद्धान्त कहे गये हैं । आलोच्य कवियों की रचनाओं में इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ है ।

4. II तत्युगीन ह्रासोन्मुखी धार्मिक चेतना :

विष्णुदास और तुलसीदास मध्यकालीन भारत की होनहार विभूति थे । उनके समय में उत्तर भारत का भारतीय समाज भी मूलतः हिन्दू और मुसलमानों का था । हिन्दू समाज भी विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों से ग्रस्त और धार्मिक दृष्टि से पन्थों में विभाजित था। दोनों ने धार्मिक मान्यताओं को गहराई से देखा ओर परखा था । उन्हें जो धार्मिक त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं उन्हें वे कलियुग का परिणाम मानते थे ।[5] मानव आचार भ्रष्ट हो गये थे,[6] परिणामतः धार्मिक जीवन में अनेक विसंगतियाँ आ गयी थीं । दोनों कवियों ने कलियुग के कारण हुई आचार भ्रष्टता का विशद कथन किया है ।

विष्णुदास ने 'स्वर्गारोहण पर्व' में कहा है कि चारों भाइयों के साथ युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के पास द्वारका गये और उनके कलि विषयक आचार के बारे में पूछा । इस पर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को बड़े विस्तार से कलियुग के धर्म आचार के बारे में बताया । यथा-- कलियुग में विप्र और शुद्र में भेद नहीं रह जायेगा । पुरुषों से स्त्रियाँ दब कर नहीं रहेंगी। पुत्र अपनी पत्नी के कारण माता की पिटाई करेगा, पिता भी पुत्र का परित्याग कर देगा ।

साठ वर्ष से अधिक कोई भी जीवित नहीं रहेगा । लोग एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करेंगे। एक ही माता से उत्पन्न पुत्र अर्थात् सहोदर भाइयों में भी परस्पर शत्रुता बनी रहेगी -- दोनों एक दूसरे के लिए यमदूत बने रहेंगे । चोरी और अन्याय का बोलबाला होगा । लोग झूठी गवाही देंगे । वर्षा बहुत कम होगी, अन्न भी कम उत्पन्न होंगे । अन्न के अभाव में लोग भूखों मरेंगे । पृथ्वी में बोया गया बीज बहुत कम उगेगा, पैदावार बहुत कम होगी । जो भी उपज होगी उसे राजा ले जायेगा । किसान को कुछ भी नहीं मिलेगा । पृथ्वी पर सर्वत्र हाय-हाय सुनाई पड़ेगी । प्रजा और राजा कोई भी सुखी नहीं होगा । जगत में कुटैब और ओछापन चलेगा। स्त्रियाँ बैठी रहेंगी और पतियों से सेवा करवायेंगी । पातिव्रत धर्म लुप्त हो जायेगा । मलेच्छों के कर्म चलेंगे । यज्ञ आदि धार्मिक कार्य विरल हो जायेंगे । कलियुग में कोई किसी का सगा नहीं रहेगा । पिता अपनी बेटी को बेचेंगे । कलि में सर्वत्र पाप होगा। राजा भी अकार्य करेंगे -- अपनी बेटियों को देकर राज्य करेंगे । बहुएँ सासु का कहना नहीं मानेंगी। वे उल्टे उन्हें ही डाँट लगायेंगी । पुत्र पिता की बात नहीं सुनेगा वह अपनी इच्छा के अनुरूप ही काम करेगा । गायें भी कम दूध देंगी । वे अपने बछड़ों को भी साथ नहीं करना चाहेंगी । लोग माता-पिता का सम्मान नहीं करेंगे । शिष्य गुरू पत्नीगामी होंगे। ब्राह्मण षटकर्म नहीं करेंगे । शुद्र अपने धर्म का पालन नहीं करेंगे । ब्राह्मण मद्य, मांस और मत्स्य भक्षी बनेंगे, बिना स्नान किये भोजन करेंगे । ईश्वरपूजा के प्रति रूचि नहीं रहेगी। कलियुग में लोग कुलाचार और धर्माचार का परित्याग कर देगें । सेवक का स्वभाव ठीक नहीं होगा । वे कपटपूर्ण सेवा करेंगे । जैसे-तैसे धन जोड़ना ही लोगों का काम होगा। सभी लोभी होंगे । रात में सर्वत्र चोर घूमेंगे । होम, जप, तप के काम को लोग छोड़ देंगे । ब्राह्मण को लोग दान नहीं देगें । लोग थाती तक को लुप्त करेंगे । पाप का चलन नित्य बढ़ता ही जायेगा । कलियुग में पिता को पुत्र ठगेगा । वह यमदूत की तरह बर्ताव करेगा । लोग एक दूसरे पर विश्वास नहीं करेंगे । लोग लिया हुआ धन भी वापस नहीं करेंगे । राजे

काम करवायेंगे, पर उचित दाम (मजदूरी) नहीं देंगे। ब्राह्मणों का भाग शुद्र लेकर संचित करेंगे। ब्राह्मण मांसभक्षी होंगे। लोग सुरा पानकर इधर उधर घूमेंगे। विरला पुरुष ही एकादशी व्रत करेगा, विरला पुरुष ही तीर्थाटन करेगा। स्त्रियाँ अपना गर्भ त्याग देगी। नगरों में अन्याय करनेवाले रहेंगे। राजा भी सत्य नहीं बोलेगा। नये नगर भी वे बसा लेंगे। वे मृग, बाघ आदि का शिकार करेंगे। घर-घर में बधिक बसेंगे। कलियुग में लोग धर्म-कल्याण की बात नहीं सुनेगा, ब्राह्मण को भी कोई मान नहीं देगा। ब्राह्मणों को दान नहीं मिलेगा। जिन्हें उत्तम पुरुष समझा जायेगा, वे भी वेश्यागामी होंगे। कलि में टोना टोटका ही धर्म होगा, वेद पुराण को कोई नहीं मानेगा। धूर्त, चोर, लंपट आदि को सम्मान मिलेगा, उन्हें ही लोग दान देंगे। सामर्थ्यवान ही सब-कुछ प्राप्त कर लेंगे। निस्पृह व्यक्ति यों ही रहेंगे। विप्र संतोषरहित होंगे। मोक्ष भी उनके लिए दुर्लभ हो जायेगा। दाता लोग जो दान देंगे, उससे वे संतुष्ट नहीं होंगे। कलियुग में सर्वत्र पाप और कुबुद्धि की वृद्धि हो जायेगी। लोग पंडिताई छोड़कर धूर्तता, द्यूतक्रीड़ा आदि करेंगे। लोग एकादशी व्रत नहीं करेंगे। अतः वे मुक्ति से वंचित रहेंगे। शूद्र स्नान कर भोजन करेंगे, पर ब्राह्मण ठंडे जल से स्नान करने से डरेंगे। ब्राह्मण कृषि कार्य करेंगे, यह कलि का आचार हो जायेगा।[7]
कृष्ण पुनः आगे भी कहते हैं –

> कलि में पापन काँपिहै धरनी।
> परबत गिरी छाँड़िहै आसन।
> परजा सुखी न कलि में होई।
> दुखी बहुत दालिद्री होई ।।[8]

तुलसीदास का कलियुग वर्णन भी उससे भिन्न प्रकार का प्रायः नहीं है। उन्होंने 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में इसका विस्तार से वर्णन किया है। काकभुसुण्डि ने गरुड़ से कलि के दुष्परिणामों का वर्णन करते हुए कहा है कि उसमें वर्णधर्म और आश्रम

धर्म नहीं रह जाते हैं । स्त्री-पुरुष वेद विरोधी हो जाते हैं । ब्राह्मण वेदों (विद्या) को बेचने वाले और राजा प्रजा को खा जानेवाले होते हैं । शास्त्र की आज्ञा को कोई नहीं मानता । जिसे जो अच्छा लगे, वही धर्म हो जाता है, डींग हाँकने वाले पंडित कहे जाते हैं । आडम्बर और दम्भ करने वाले ही संत समझे जाते हैं । दूसरे का धन हरण करने वाला बुद्धिमान, दम्भ करने वाला आचारवान और झूठ बोलनेवाले ही गुणवान् समझे जाते हैं । वेद परम्परा के मार्ग को छोड़नेवाला ही वैरागी और ज्ञानी, नख और जटा बढ़ानेवाले ही तपस्वी माने जाते हैं । अमंगल वेश-भूषा धारण करनेवाले और भक्ष्य और अभक्ष्य खानेवाले ही योगी और सिद्ध माने जाते हैं । अपकार करनेवाले ही सम्मान के पात्र और लगातार झूठ बकने वाले ही वक्ता माने जाते हैं । पुरुष स्त्रियों के वशीभूत रहते हैं । शूद्र ब्राह्मणों को उपदेश देते हैं और यज्ञोपवीत धारण कर दान ग्रहण करते हैं । लोग कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं , देवता,ब्राह्मण वेद परम्परा के शास्त्रों और संतों के विरोधी होते हैं । स्त्रियाँ पति का परित्याग कर पराये पुरुष का सेवन करती हैं । सधवाएँ आभूषण रहित, पर विधवाएँ श्रृंगारप्रिय और आभूषण-सज्जित रहती हैं । शिष्य और गुरू में बहरे और अन्धे का सम्बन्ध होता है । गुरू शिष्यों से दक्षिणा लेते हैं, पर उन्हें ज्ञान नहीं देते । माता-पिता अपने बच्चों का केवल पेट पालने की ही शिक्षा दिलवाते हैं । स्त्री और पुरुष, सभी ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं एवं लोभवश ब्राह्मणों और गुरू तक की हत्या कर देते हैं । ब्राह्मणों से शूद्र विवाद करते हुए अपने को उनसे कम नहीं मानते हैं । ब्रह्म का जानने वाला ही ब्राह्मण है, यह बात वे उनसे डाँट कर कहते हैं । परायी स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर, मोहादि में लिपटा हुआ व्यक्ति ही ज्ञानी माना जाता है । वे वेद की निन्दा करते हैं । निम्नवर्णों कें लोग सिर मुंड़ाए संन्यासी का स्वाँग बना लेते हैं और अपने को ब्राह्मणों से भी पूजवाते हैं । ब्राह्मण भी अनपढ़, लोभी, आचारहीन, मूर्ख और व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी बन जाते हैं । शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं, व्यास गद्दी

पर बैठकर पुराण आदि शास्त्रों का वाचन करते हैं । सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। सब लोग मर्यादाच्युत और वर्णसंकर हो गये हैं । वे सब प्रकार का पाप करते हैं और प्रिय वस्तु का वियोग सहते हैं । वेदसम्मत पथ का परित्याग कर नये-नये पंथ कल्पित करते हैं। संन्यासी धन सम्पन्न हो घर सजाते हैं । उनमें वैराग्य नहीं रह गया है । तपस्वी धनी हो गये हैं और गृहस्थ दरिद्र बन गये हैं । सती और कुलवती स्त्रियों को लोग घर से निकाल देते हैं । अच्छा मार्ग छोड़कर घर में रखैल रख लेते हैं । पुत्र अपने माता-पिता का तभी तक साथ निभाते हैं, जब तक वे अविवाहित रहते हैं । विवाह होते ही उन्हें ससुराल से लगाव हो जाता है एवं कुटुम्बी जन शत्रु हो जाते हैं । राजा भी पापाचारी हो गये हैं, बिना कसूर के ही वे प्रजा को दण्डित करते रहते हैं । मलिन व्यक्ति धनी होने पर कुलीन समझा जाता है । जनेऊ तो केवल ब्राह्मणों का चिह्न भर बन गया है और नंगे बदन रहना तपस्वियों की पहचान बन गयी है। वेदों पुराणों आदि को नहीं मानने वाले ही संत समझे जाते हैं । कवियों की भरमार हो गयी है, पर उनके आश्रयदाता नहीं रह गये हैं । गुण का दोष मानने वाले अनेक हैं, पर गुणी शायद ही कोई मिले । अन्न का अभाव है जिससे लोग भूखों मरते हैं । संसार में दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, काम आदि व्याप्त हो गये हैं । मनुष्य तामस धर्म के प्रति आग्रहशील हो गया है । देवता पृथ्वी पर पूरी वर्षा नहीं करते और धरती में बोया गया बीज भी प्रायः उगता नहीं है । स्त्रियों के बाल ही भूषण रह गये हैं । प्रायः सभी धनहीन और भूखे हैं - उनमें सदा अतृप्ति बनी रहती है । बुद्धि भी थोड़ी है और वह भी अति कठोर हो गयी है । मनुष्य रोगग्रस्त हैं , सुखी नहीं है। वे अकारण ही अभिमान और क्रोध करते हैं। स्त्रियाँ अधर्मी हैं, पर सुख चाहती हैं । उनमें कोमलता भी नहीं रह गयी है कलि ने सबको बेहाल कर रखा है । कोई भी व्यक्ति बहिन और बेटी का विचार नहीं करता । लोगों में न संतोष है और न विवेक और न शीतलता है। जाति कुजाति सभी लोग भीख माँगने वाले बन गये हैं । समता समाप्त हो गयी है,

ईर्ष्या, लालच और कठोर बातें ही सबमें हैं । वर्णाश्रम धर्म के आचार पूरी तरह नष्ट हो गये हैं ।[9] उपरिवर्णन पर विचार करने से स्पष्ट होता है उनमें जीवन के प्रत्येक पक्ष पर विचार हुआ है और वे सब धार्मिक ह्रास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । यद्यपि ये वर्णन पुराण आधारित और परम्परा के अनुसार हैं, तथापि उनमें युग की सच्चाई व्यक्त हुई है ।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में भी तत्कालीन स्थिति में आचार भ्रष्टता और धर्महीनता का विशद वर्णन किया है । तीर्थ-व्रतादि के बहाने पनपते हुए धार्मिक अंधविश्वास धार्मिक आडम्बर पर इन्होंने तीव्र प्रहार किया है --

सुर सदननि, तीरथ, पुरिन निपट कुचालि कुसाज ।
मनहुँ मबासे मारि कलि राजत सहित समाज ।[10]

उस समय धार्मिक प्रक्रियाओं में तांत्रिक आचार को भी प्रबलता प्राप्त हो गयी थी । पंचमकार युक्त वामाचरिता अर्थात् पाखण्ड के प्रचार को धर्म का पर्याय मानने वालों की तुलसीदास ने निंदा की है --

कलि पाषंड प्रचार, प्रबल पाप पाँवर पतित ।
तुलसी उभय अधार, रामनाम, सुरसरि सलिल ।।[11]

धर्म के नाम पर पाखंडियों का बोलबाला हो गया था । ब्राह्मण और संन्यासी अपने को स्वयंभू मानने लगे थे ।[12] उस समय धर्म के नाम पर विभिन्न पंथ पनप रहे थे। इससे सामान्य जनता भ्रमित हो रही थी । तुलसीदास ने वैसे पंथों की व्यर्थता एवं पंथ-प्रचारकों के 'विमोह' पर चिन्ता प्रकट की है । यथा -

स्रुति-सम्मत हरिभगति पथ संजुत-विरति-बिबेक ।
तेहि परिहरहिं बिमोहबस कल्पहिं पंथ अनेक ।।[13]

नये पंथों की कल्पना और प्राचीन शास्त्रों की अवहेलना किये जाते देख तुलसीदास का हृदय कचोट उठता था --

सकल धरम बिपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपंथ ।

पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभग्रंथ ।।[14]

उस समय खोखला ब्रह्मज्ञान अधिक बढ़ गया था कि --

क. ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात ।[15]

ख. बादहिं सूद्र द्विजन सन "हम तुम तें कछु घाटि ?

जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर" आँखि दिखावहिं डाँटि ।[16]

और इस प्रकार के भी मुनि, संन्यासी, धर्माचार्य आदि कहलाने वाले थे --

जे मुनि ते पुनि आपुहिं आप को ईस कहावत सिद्ध सयाने ।[17]

विभिन्न पंथों का जो प्रभाव समाज पर पड़ रहा था, उस कुपरिणाम को लक्ष्य कर ही तुलसीदास ने उन पंथों एवं उनके प्रचारकों के प्रति अपनी खीझ भरी पीड़ा व्यक्त करते हुए लोगों को उनके प्रति सावधान भी किया था । यथा --

क. **कबीर पंथियों एवं सूफियों के प्रति -**

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान ।

भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान ।।[18]

103957
Date

ख. **अलखिया-पंथ के प्रति --**

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच ।

तुलसी अलखहि का लखहि ? राम नाम जपु नीच ।।[19]

ग. **गोरख पंथ के प्रति --**

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,

निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है ।[20]

घ. **जैन पंथ के प्रति -**

स्वान सरावग के कहे, लघुता लहै न गंग ।[21]

ङ. **सेवड़ा (बौद्ध श्रमण) के प्रति -**

सुरा सेवरा आदरहिं, निंदहिं सुरसरि-बारि ।[22]

इसी तरह तुलसीदास ने पथभ्रष्ट अघोरी साधकों[23], श्मशान साधकों[24], भूत-प्रेत प्रचारकों[25], वाममार्गी शाक्तों[26] आदि पर भी कटूक्तियाँ की हैं । विष्णुदास ने अपनी रचनाओं में इतने विशद रूप में समाज में फैले भ्रष्ट आचारों, धर्माडम्बरों आदि का निरूपण नहीं किया है ।

'कवितावली' में तुलसीदास ने जो लिखा है, वह भी युगीन पाखण्ड का ही उदाहरण माना जायेगा --

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तो न जरनि धरनि धन धाम की ।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की ।
प्रगटै उपासना, दुरावैं दुरबासनाहिं,
मानस निवास-भूंमि लोभ-मोह काम की ।
राग-रोष-ईरषा-कपट-कुटिलाई भरे,
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की ।।[27]

इस विवेचन से स्पष्ट होता है दोनों कवियों ने धर्म के नाम पर चलने वाले आडम्बरपूर्ण, अनैतिक (और असामाजिक भी) कार्यों के प्रति अपनी दृष्टि दौड़ायी है । इसके बावजूद यही सत्य है कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीआस की दृष्टि अधिक पैनी

और वर्णन अधिक यथार्थ है किन्तु दोनों के उद्देश्यों में अन्तर नहीं है ।

4. III धार्मिक जीवन के प्रतिमान :

मध्यकाल में धर्म के नाम पर चल रहे अनेक असामाजिक और अनैतिक कार्यों एवं धार्मिक विश्रृंखलता को समाप्त कर श्रुतिसम्मत पारम्परीण हरिभक्ति पथ पर चलने के लिए प्रेरित करना एवं सहज धर्म का प्रतिपादन करना दोनों कवियों का उद्देश्य था । वे अतीव सहज-सुलभ होने के कारण ही तद्युगीन समाज में लोकप्रिय हो सके थे । उनके सम्बन्ध में ही आगे आवश्यक विचार किया जाता है ।

क. युगधर्म : नामधर्म :

पूर्व पृष्ठों में बताया गया है कि विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों कवियों ने कलि-वर्णन में एवं अन्यत्र भी अपने समय की दुर्गति को कलियुग का परिणाम कहा है । उनसे छुटकारा पाने के लिए उस युग का एकमात्र धर्म अर्थात् युग के धर्म के रूप में ईश्वर के नामों का श्रवण-स्मरण-कीर्तन करना बताया है । नामधर्म को ही युग का धर्म माना है। जप-तप-योग आदि मार्गो की तुलना में भगवान के नाम का स्मरण, कीर्तन आदि अधिक महत्त्व का माना गया है । विष्णुदास के अनुसार --

कलि में परम सुगम नाम महाधर्म ।
ना छिंडों राम-नाम, करो सब कर्म ।।[28]

अर्थात वे मानते हैं मानव अपना सारा कार्य करते हुए भी, सांसारिक दायित्वों को निर्वाह करते हुए भी राम-नाम का परित्याग नहीं करे । कारण कलियुग में ईश्वर के नाम का स्मरण, श्रवण और कीर्तन का करना ही सुगम है । यहीं युग का महान् धर्म है । तुलसीदास की भी घोषणा है --

कलिजुग केवल हरि गुनगाहा ।
गावत नर पावहिं भव चाहा ।।

कलजुग जोग न जग्य न ग्याना ।

एक अधार राम गुन गाना ।।[29]

तुलसीदास ने राम से भी अधिक उनके नाम को श्रेष्ठ कहा है । वे मानते हैं कि राम का नाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम दोनों में बड़ा है --

ब्रह्म राम तें नामु बड़, बर दायक बर दानि ।।[30]

वे अनुभूत सत्य का कथन करते हुए बताते हैं कि कलियुग में राम का नाम कल्पवृक्ष है, कल्याण का निवास स्थल हैं जिसे स्मरण करने के कारण ही भाँग-जैसे तुच्छ तुलसीदास, तुलसी के समान पवित्र हो गया है --

नामु राम को कलपतरू, कलि कल्यान निवासु ।

जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदासु ।।[31]

इतना अवश्य है कि विष्णुदास की तुलना में तुलसीदास ने 'नाम' के महत्त्व का अधिक बार और बड़े विस्तार से बताया है ।

ख गुरू का महत्त्व :

गुरू का महत्त्व सभी संतो, भक्तों आदि ने स्वीकार किया है । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने धार्मिक जीवन और अपनी काव्यकारिता के लिए गुरू के महत्त्व को स्वीकार किया है । तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर गुरू विषयक अपने विचार करते हुए उन्हें विधाता से भी अधिक ऊँचा स्थान और महत्त्व दिया है । विष्णुदास ने अपने दीक्षागुरू सुन्दरनाथ के सम्बन्ध में कहा है --

कुमति पटल मौ छाये नैना ।

उधरे सुनति गुरूनि के बैना ।।

ता गुरू चरन सीसु हौं धरऊँ ।

पान-फूल बहु सेवा करऊँ ।।[32]

और तुलसीदास ने गुरू को 'नररूप हरि' कहते हुए बताया है कि मैं अपने गुरू महाराज के चरण कमल की वंदना करता हूँ जो कृपा सागर और नर रूप में श्रीहरि की हैं। उनके वचन महामोहरूपी अंहकार को नष्ट करनेवाले सूर्य-किरणों के समूह हैं ।

बंदऊँ गुरू पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।

महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।[33]

वे आगे गुरू के 'चरणकमलों' की धूल की वंदना करते है, जो सुरूचि, सुगन्ध और अनुराग रूपी रस में पूर्ण हैं । वे अमरमूल के सुन्दर चूर्ण है जो सारे सांसारिक रोगों को नष्ट करने वाले हैं --

बंदउँ गुरू पद पदुम परागा ।।

सुरूचि सुबास सरस अनुरागा ।।

अमिअ मूरिमय चूरन चारू ।

समन सकल भव रूज परिवारू ।।[34]

विष्णुदास गुरू को त्रिदेव (ब्रह्म-विष्णु-शिव) रूप में स्वीकार कर उनकी कृपा (प्रसाद) पाकर ही पांडवचरित (महाभारत) की रचना आरंभ करते हैं --

गुरू ब्रह्मा हरि ईसुर ध्याऊँ ।

अजर-अमर-निर्मल-सिधि पाऊँ ।।

बरनौ पडंव-चरितु अभेऊ ।

जौ परसाद करै गुरुदेऊ ।।[35]

विष्णुदास ने 'रामायन कथा' में वाणी और विष्णु की वंदना के उपरान्त अपने दीक्षा गुरू सुन्दनाथ का अग्रांकित रूप में स्मरण किया है --

सुन्दरनाथ पास लई दक्ष्या ।

हरत-परत सब पूरत इच्छा ।।

भूत भविष्य मान जो रहै ।।

निसिदिन जा कहँ अवगत रहैं ।।

तैसी समरथ सृष्टि दूसरी ।

ता सिष विष्णुदास कवि करी ।।[36]

उसके पश्चात् कवि ने 'सहजनाथ' से आशीवर्चन पाने की बात लिखी है --

बचन जो सहजनाथ पहं लहौ ।

सरस बचन रामाइनु कहौं ।।[37]

कवि ने अपनी रचना 'स्वर्गारोहण' में भी गुरू सहजनाथ का उल्लेख किया है --

अरू जो सहजनाथ बरू लहौं ।

स्वर्गारोहन विस्तरि कहौं ।[38]

गुरू सहजनाथ जी गोपाचलगढ़ के नाथपंथी मठ के संस्थापक थे । वे विष्णुदास के समकालीन नहीं थे । उनकी वंदना करने का कारण यहीं माना जायेगा कि विष्णुदास के गुरू सुन्दरनाथ जी उन्हीं की परम्परा में हुए थे । अतः विष्णुदास ने सहजनाथ की वन्दना कर पूरी गुरू परम्परा के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है ।

तुलसीदास के गुरू के नाम के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । कुछ लोक 'नररूप हरि' के आधार पर उनके गुरू का नाम नरहरि या नरहर्यानंद कहते हैं । स्थिति जो भी हो, पर इतना निश्चित है कि विष्णुदास और तुलसीदास, दोनों ने गुरू को धार्मिक जीवन में पर्याप्त महत्त्व दिया है । तुलसीदास की अग्रांकित मान्यताएँ उनकी गुरू-भक्ति का चरमोत्कर्ष प्रकट करती हैं । यथा --

क. राखइ गुरू जौं कोप बिधाता ।

गुरु विरोध नहिं कोउ जगमाता ।[39]

ख. गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई ।

जौं बिरंचि संकर सम होई ।[40]

ग. जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं ।

रौरव नरक कोटि जुग परहीं ।।[41]

तुलसीदास के समय संभवतः कुछ ढोंगी गुरू भी हो गये होंगे । वे सब गुरू की गरिमा से च्युत होंगे । न शिष्यों से पर्याप्त दक्षिणा लेने के बावजूद उनके शोक आदि को दूर कर पाने में असमर्थ होंगे । वैसे ढोंगी गुरूओं की तुलसीदास ने खबर ली है --

हरइ सिष्य धन सोक न हरई ।

सो गुर घोर नरक महुँ परई ।।[42]

सारतः कहा जायेगा कि दोनों कवियों ने गुरू-कृपा को पूरा महत्त्व दिया है। उनके अभाव में न तो भगवान के प्रति भक्ति हो पाती है और न वह किसी प्रकार की रचना करने में समर्थ होता है । धार्मिक जीवन के लिए गुरू का महत्त्व प्राय तत्व जैसा ही मानना चाहिए ।

ग. संत की संगति :

आलोच्य कवियों ने गुरू के समान ही संतों, सज्जनों, भक्तों आदि की संगति को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है । गुरू भी संत या भक्त ही होते हैं । अतः संतों को गुरू के समान ही उच्च आसन प्रदान करना, उनकी संगति से लाभ उठाना धार्मिक जीवन में आवश्यक माना गया है । संतों के साथ रहने, उनके साथ कीर्तन आदि करने, ईश्वर की कृपा सुनने आदि का लाभ साधक को मिलता है । इसी कारण दोनों कवियों ने उनकी संगति में रहने को महत्वपूर्ण माना है । विष्णुदास मानते हैं कि संतों की संगति से कुबुद्धि भी सुबुद्धि में बदल जाती है । संतों की संगति से हरि भक्ति सुलभ होती है, बिना संतों की संगति के किसी को भक्ति सुलभ नहीं होती ।[43] तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में अनेक स्थलों पर संतों की महिमा का वर्णन किया है ।[44] तुलसीदास ने 'राम से अधिक

राम का दासा' की घोषणा कर संतो के महत्त्व को ही स्पष्ट किया है । विष्णुदास के राम ने हनुमान का वर प्रदान कर इसी ओर संकेत किया है ।

घ. धर्माडम्बर का परित्याग :

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने उस युग में धर्म के नाम पर चलनेवाले आडम्बर को परित्याग करने की बात कही है । भक्ति के साधन के नाम पर प्रचलित योग, तीर्थाटन, व्रत आदि से जुड़े आडम्बरों को किसी ने भी महत्त्व नहीं दिया है । धर्म या धार्मिक कार्य के नाम पर अनावश्यक दिखाने के लिए धन का दुरूपयोग करना किन्हीं को मान्य नहीं था । उन सबको वे पाखण्ड मानते थे एवं उनसे बचने की सलाह देते थे । विष्णुदास ने तो स्पष्ट तौर पर घोषित किया है कि पाखण्ड से धर्म का नाश होता है --

> विनसै धर्म किये पाखंडू, विनसै नारि गेह परचंडू ।
>
> विनसै यज्ञ क्रोध जिहि कीजै, विनसै दान सेव कारि दीजै ।
>
> इतो कपटु काहे को कीजै, जो पंडो वनवास न दीजै ।।[45]

तुलसीदास मानते हैं कि धार्मिक जीवन जीने की एक विशिष्ट मानसिकता होती है । यदि तपस्या, तीर्थाटन आदि साधन भक्ति की योग्य मनोभूमि नहीं बना पाते हैं तो उन्हें आडम्बर ही कहना चाहिए । वे शास्त्रों का पठन,[46] श्रद्धाविहीन मूर्तिपूजन[47] आदि काम भी बेकार के दिखावे ही हैं । इसलिए वे कहते हैं --

क. माखी, काक, उलूक, बक, दादूर से भए लोग ।
भले ते सुक, पिक, मोर से, कोउ न प्रेमपथ जोग ।।[48]

ख. बेष बिषद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइए, भए विषय-जल-मीन ।।[49]

और लोगों को उपदेश देते हैं -- 'तजि दे बक बायस की करनी' ।[50] स्वयं विष्णुदास ने भी इसी प्रकार का उल्लेख 'स्वर्गारोहण' में किया है । युधिष्ठिर अपने भाईयों के साथ श्रीकृष्ण

के पास द्वारका गये हैं । वहाँ श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाते हुए कहा है--

वेद पुरान पठइ नहिं होई ।

बेष बनाइ फिरइ कलि कोई

करह न प्रभु पद-पंकज नेहू ।

परम भगति मिलहिं नहिं तेहू ।।[51]

ङ. अपदेवता का बहिष्कार :

मध्ययुग में परम्परा से मान्य शास्त्रीय उपासना के साथ ही धर्म के नाम पर अनेक लौकिक मान्यताएँ भी प्रचलित थीं । विभिन्न लोकदेवताओं की पूजा, भूत प्रेतों की पूजा, अनिष्टदेवता ओर अपदेवता की पूजा आदि चल रही थी । आलोच्य कवियों ने इन सबका बहिष्कार किया है । विष्णुदास ने केवल इतना ही कहा है कि "बिनसै धर्म पूजै खल देवा, राम छाँड़ि का करिहहु सेवा ।' किन्तु इस सम्बन्ध में तुलसीदास के विचार अधिक प्रखर हैं --

क. तुलसी परिहरि हरि हरहिं, पाँवर पूजहिं भूत ।

अंत फजीहति होहिंगे, गनिका के से पूत ।[52]

ख. लही आँख कब आँधरें, बाँझ पूत कब ल्याय ?

कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाइ ।।[53]

भगवान् श्रीकृष्ण ने 'गीता' में भी अपदेवता की पूजा-उपासना से बचने का संकेत किया है--

यांति देवव्रता देवान् पितृब्यांति पितृव्रताः ।

भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम् ।।[54]

च. धार्मिक सहिष्णुता :

मध्ययुग में परम्परा से चली आ रही विभिन्न सात्विक उपासना पद्धतियों के प्रति आलोच्य कवियों की दृष्टि धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है । इस दृष्टि से विष्णुदास

और तुलसीदास में एक अन्तर यह है कि तुलसीदास की भक्ति एकमात्र राम के प्रति थी, जबकि विष्णुदास ने राम और कृष्ण को समान महत्त्व तो दिया है अन्य देवी-देवताओं के प्रति भी अधिक उदार प्रतीत होते हैं । डॉ. मोहन सिंह तोमर ने मत दिया है कि "पांडव चरित (महाभारत) के मंगलाचरण से ऐसा आभास होता है कि विष्णुदास हिन्दू धर्म के उस समन्वित रूप को मानने वाले हैं जिसमें किसी सम्प्रदाय विशेष का दुराग्रह नहीं होता, वरन् विष्णु, शिवशक्ति, गणेश तथा सूर्य आदि सभी की मान्यता होती है । इस प्रकार यहाँ गणेश, सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुरू, तीर्थ, सागर, तारा, सोम, दिवाकर, गंगा, माता-पिता, इन्द्र, गिरिवर, नगर, ऋषि, बन्दीजन, नवग्रह में कुबेर, अग्नि, मनु, सनकादि, अष्टवसु तथा व्यास की वंदना की गयी है ।

ब्रह्मा की वंदना की एक विशेषता प्रतीत होती है, क्योंकि उत्तर भारतीय काव्यों में ब्रह्मा की वंदना प्रायः नहीं मिलती । इसका कारण राजस्थान अथवा जैन ग्रंथों का प्रभाव भी हो सकता है, क्योंकि राजस्थान में ब्रह्मा की वंदना का प्रचलन रहा है तथा कतिपय जैन कवियों ने भी वंदना में आदि तीर्थंकर के लिए ऐसे श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है, जिनका एक अर्थ ब्रह्मा भी होता है ।"[55] आगे उनके द्वारा कतिपय प्रसिद्ध पारम्परीण देवताओं की वंदना के कुछ अंश रखे जाते हैं यथा --

क. **गणेश की वंदना**

प्रनवहुँ गवरि-पूत गन-नाहू ।
सिद्धि बुद्धि वरू देहु अथाहू ।।
ऊंदर चढ्यो भवै दिनु-राती ।
विस्नुदास सुमिरै गनपाती ।।
गजमुख एक-दंत थुँदियारू ।
बीना सारू करै रस-सारू ।।

फरसा निरमल सोहै पानी ।

प्रनबत होहि मधुर सुर-वानी ।।

सिरह सिंदूर कान मद झरियौं ।

ता रस-लोभ भ्रमर गुंजरियौ

अह-निसि ह्व वारूनि मैमंतू

सुमिरत देहि बुद्धि तुरंतू ।।[56]

उन्होंने 'स्वर्गारोहण' और 'रूक्मिणी मंगल' में भी गणेश की वंदना की है । यथा --

स्वर्गारोहण :

श्री गणपति बंदन करो, बुधि अगास करि जोइ ।

विघन हरन सब सिधि करि, सादर प्रनवों सोइ ।।

गवरीनंदन सुमति है तारा, सुमिरत सिधि होई गुरू प्यारा ।।[57]

रूक्मिणी मंगल :

रिधि सिधि सुख सकल विधि नवनिधि दे गुरू ज्ञान ।

गति मति सुत पति पाइयत गनपति को धर ध्यान ।।

जाके चरन प्रताप से दुख मुख परत न दीठ ।

ता गजमुख सुख करन की सरन आवरे दीठ ।।[58]

किन्तु 'रामायन कथा' में गणेश की वंदना को स्थान नहीं मिला है ।

ख. सरस्वती की वंदना में :

'प्रनवहुँ सरसै त्रिभुवन माई ।'[59] कह कर सरस्वती के मातृत्व अथवा वात्सल्य का परिचय देते हुए आगे कहा गया है -- 'सुमिरत देहि बुद्धि परगासू'[60] एवं 'सुमिरत अष्ट महासिधि करई'[61] सरस्वती की वंदना में आगे[62] कवि ने उनके सौन्दर्य और उनकी शक्ति

का उत्तम परिचय दिया है । सरस्वती की वंदना उन्होंने 'रामायन कथा' और स्वर्गारोहण में भी की है यथा --

रामायन कथा :

कमल वदन सुमधुर रस सारू ।
कर पुस्तक साजैं उरहारू ।।
रवनि सीस नेवर झनकार ।
प्रनऊँ देवी बारंबार ।।
जाकौ रूप न सकौं बखानि ।
हंस चढी ता पुस्तक पानि ।।
ता पहँ विष्णुदास बरू लहयौ ।
सरस बुद्धि रामाइनु कह्यौ ।।[63]

स्वर्गारोहण :

भरत भाष्यौ तोहि पसाई ।
और सारद के लागों पाईं ।[64]

'महाभारत', जिसे कवि विष्णुदास प्रायः सर्वत्र 'पाण्डवचरित' कहा है, का मंगलाचरण की अपनी विशिष्टता है । ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि वह न केवल बड़े विस्तार से लिखा गया है, वरन् कवि ने उसमें देवी-देवताओं का नाम गिनाकर संतोष भर नहीं किया है । मंगलाचरण में कुल 33 छन्द हैं जिनमें गणेश और सरस्वती की वंदना 11-11 छंदों में की गयी है । शेष 11 छंदों में कई अन्य देवताओं की वंदना की गयी है। यहाँ 33 की संख्या में मंगलाचरण पूरा करने का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए। क्या कवि ने 33 करोड़ देवताओं की परम्परा से मान्य संख्या पर ध्यान रखकर ही मंगलाचरण के 33 छंद लिखे हैं या कोई और कारण रहा है । इस बारे में निश्चय पूर्वक

कुछ भी कहा नहीं जा सकता । इतना स्पष्ट है इससे कवि का धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की भावना का अनुमान होता है । किसी देवता के प्रति दुराग्रह नहीं है, सबको समान रूप में ही उसने देखा है ।

परम्परा से मान्य शास्त्रीय धर्मों के प्रति तुलसीदास में विष्णुदास की अपेक्षा अधिक उदारता दिखायी पड़ती है । 'विनय पत्रिका' के आरम्भिक 64 पदों में उन्होंने गणेश, सूर्य, शिव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान आदि की स्तुतियाँ रखी है। वह उनके उदार रूप का परिचायक माना जायेगा । उनकी उदारता और धार्मिक सहिष्णुता के उदाहरण अन्य रचनाओं में भी मिलते हैं । पौराणिक देव-देवियों के साथ ही उन्होंने लोक देवता, ग्राम-देवता, वन देवता आदि के महत्त्व को भी समझा था । इस कारण उन सबका अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । यथा --

क. पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा ।[65]

ख. पूजीं ग्रामदेवि सुर नागा । कहेउ बहोरि देन बलिभागा ।।[66]

ग. बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ।।[67]

ऐसे उदाहरणों से यह मानना भूल होगी कि विष्णुदास और तुलसीदास बहुदेववाद को मानते थे या अच्छा समझते थे । वस्तुतः उसके सम्बन्ध में मूल बात इतनी ही है कि दोनों उदार वैष्णव भक्ति-दर्शन के विश्वासी हैं जो पूरे जगत् को सीताराममय मानता है । ये उक्तियाँ गृह सूत्रों की भावना (यथामंगलऽवा) के अनुरूप तो है ही, लोकभावना को सम्मान की दृष्टि से देखना भी कहा जायेगा ।

आलोच्य कवियों के समय में वैष्णव एवं शैव सम्प्रदायों में द्वेष एवं मालिन्य अधिक था । तुलसीदास की दृष्टि उस ओर अधिक गहरायी से गई थी उन्होंने दोनों सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करने की सफल कोशिश की है । उन्होंने 'जानकी मंगल' के साथ ही 'पार्वती मंगल' की रचना तो की ही, 'रामचरितमानस' में भी सीताराम के विवाह

की कथा लिखने के पूर्व पार्वती-शिव को लिखा एवं रामचरितमानस के जिन चार घाटों की कल्पना की, उसके पहले घाट पर ही कथावाचक के रूप में शिव को उपस्थित किया है । उन्होंने शिवचरित में अनुरक्ति को ही रामभक्ति का मानदण्ड भी माना है --

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार ।

सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विकार ।।[68]

स्वयं श्रीराम से घोषणा करायी गयी है --

सिब द्रोही मम भगत कहावा । सो नर मोहिं सपनेहुँ मोहि न पावा ।।[69]

काकभुसुण्डि के मुख से तुलसीदास ने अपनी मान्यता की ही घोषणा करायी है --

सिव सेवा कर फल सुत सोई ।

अविरल भगति राम पद होई ।।[70]

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वनवास के लिए प्रस्थान करते समय राम ने केवल शिव का नहीं, वरन् पूरे शिव परिवार का स्मरण किया है -- 'गनपति-गौरि गिरीसु मनाई ।[71] इन उक्तियों से तुलसीदास की पान्थिक सहिष्णुता एवं समन्वय की भावना का पता चलता है । विष्णुदास ने भी शिव और पार्वती के प्रति सर्वत्र सम्मान भाव प्रकट किया है, पर तुलसीदास जैसी उक्तियाँ उनमें नहीं मिलती हैं । इससे सिद्ध होता है कि दोनों कवियों ने विभिन्न पंथों का वैष्णव मत से समन्वय और सामंजस्य स्थापना के प्रति प्रयत्न शील रहे हैं ।

छ. धर्म का नैतिक आधार :

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने जिस धार्मिक जीवन को महत्त्व दिया, उसमें सर्वत्र नैतिकता को ही मानदण्ड बनाया गया है । दोनों ने स्वधर्म के पालन[72] पर बल दिया है और उसे विवेकपूर्ण आधार प्रदान किया है । इस निमित्त दोनों कवियों ने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़कर सत्य, शौच, शम, दम को महत्त्व देने की बातें की हैं ।

विष्णुदास के कृष्ण चारों भाइयों सहित युधिष्ठिर को कलियुग के आरंभ होने पर उपदेश देते हुए बताते हैं --

सुनौ दुदिष्टिल तौसौं कहों ।
मैं नहिं कलि में प्रगटत रहौं
सपनै ही न दैखिहै मोहि ।
सत्ति बचन परगासौं तोहि
साँचु सौचु समदम जहाँ ।
समझेहु मोरेउ बास तहाँ ।।
काम कोइ बहुँ लोभ मोह बहुँ ।
सोहि पान मैं गुपुत होइ रहूँ ।।[73]

उसी में उन्होंने आगे अपना एवं धर्म का निवास स्थान भी बताया है ।

जाके घर हरि भगति जु होई ।
अरू गंगाजलु ।।
यही कृष्ण कौ करौ बिचारू ।
तहाँ बसै मेरौ संसारू ।।
जिहि घर तुलसी बईजै राइ ।
जिहि घर बाँभन पूजै पाई ।।
जिहि घर राम-राम बिस्तरै ।
तिहि घर छिनिकु बासु मो रहै ।।
जिहि घर होइ पिता की सेवा ।
बहुत भगति कै पूजैं देवा ।।
जिहि घर अतीतु मानिजै राई ।

तिहि घरू बासु छनिकु मो आही ।।

जिहि घर पूजै सालिग्राम ।

हरी-क्रस्न कौ लेहीं नाम ।

जिहि घर गऊ-बिप्र कों मानै ।

तिहि घर बासु छिनक मो जानें ।।

एकादसी व्रतु है ताहीं ।

चौबीस घरी है मन माही ।

बिप्र कौ दै पारनों कराई ।

तिहि घर उद्दिम दै रघुराई ।।

कलि में सुखी न दीसे कोई ।

जती सिद्ध सन्यासी जाही ।

बनै बासु जी नीकौ ताही ।।[74]

पति के रहते हुए उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी भी व्रत आदि के पालन करने को विष्णुदास ने अस्वीकार किया है । उनका मानना है --

सब व्रत नारि अकारथ करहीं । पुरुष भगति जे हियें न धरहीं ।।

जे अहिबाती करहिं उपासू । तिन कह होइ नर्क महँ बासू ।।[75]

अनिष्ट होने पर कुन्ती आत्मसमीक्षा करती है कि क्या मैंने किसी ब्राह्मण को दुख पहुँचाया? क्या मैंने गुरू की सेवा नहीं की ? क्या मैंने चरती हुई गाय को मारा है ? क्या मैंने किसी फूल को काटा है ? क्या मैंने किसी बालक की माँ की हत्या की है या दूध में जहर मिला दिया है ? क्या मैंने स्वबंधुओं से विश्वासघात किया या मैंने पक्षियों को जाल में फँसाया है ? क्या मैंने किसी ब्राह्मण को निमंत्रित कर फटकार लगाई है या किसी बिल में छिपे सर्प को धुआँ देकर मारा है ? क्या मैंने किसी होम कर्म पर पानी डाल कर उसे

बुझा दिया है या मैंने अपने जेठ की आज्ञा का पालन नहीं किया है ? क्या मैंने गंगा आदि तीर्थो की निंदा की है या दंगा फैलाने के सिए विष का प्रयोग किया है ? क्या मैंने किसी के द्वारा किये जाने वाले गौरी-व्रत का भंग किया है या तीर्थाटन के साथियों का मैंने साथ नहीं दिया है ?[76] यदि मैने ये सब बाते नहीं की तो फिर मुझे यह अनिष्ट क्यों झेलना पड़ रहा है ? वह इतने पर रूकती नहीं, आगे भी वह कह चलती है --

कै में दियहि दिवालें बारयौ । कै धिय पर-घर देत निवारयौ ।
कै में लोभह थाती लोपी । कै मंगन कहँ बोल्यो कोपी ।।
कै में पुरिख बिछोही नारी । कै गैया दुहि सुनहीं पारी ।
कै में बचनु बड़े कौ टारयौ । कै में मानसु बिसु दे मारयौ ।
कै में सखी मंगु परगास्यौ । कै में काजु सगे कौ नास्यौ ।
कै में निंद्य पर उपगारू । कै में सखी चुरायौ हारू ।
कै में पाननि सार न कीनी । रिषि जु सराज राइ कहँ दीनी ।
कै में सासुहि उतरू दीनों । अपनो मन भायो सो कीनों ।
कै बिसु बाँटि पुरुष कह दीनों । इतने पापनि में कह कीनों ।[77]

उपरि पंक्तियों में कुन्ती ने जिनका उल्लेख किया है वे अनैतिक धर्म के आधार हैं जिन्हें उसने नहीं किया, तब फिर उसका अनिष्ट क्यों हुआ । तात्पर्य यह कि धर्म का जब भी अनैतिक आधार होगा, वह कष्टकारी, अनिष्टकारी और ईश्वर से दूर करने वाला होगा । विष्णुदास ने धर्म में सत्य को अधिक महत्त्व दिया है । इस सम्बन्ध में कैकेई द्वारा दशरथ को अपने वचन पालन करने की बात कही गयी है --

एकहि अंग जग्यँ सौ करे । सत्त धरे तेऊ भुइ धरे ।।
तब तै सत्त तपनि दृढ़ गह्यौं । पहर बचन राजा सौं कहयौ ।।
साई सुनौ सत के भेद । सत्तहि उपजे चारों वेद ।

पानी अग्नि भयौ संसार । यह सब सत्व तनौ ब्यौहार ।।

सत विनु पुरुष न कोई लहै । एसौ बचन कौसिल्या कहै ।।

वाचा सत्य प्रीति अरू धर्म । यहई दृढ़ जो उत्तम कर्म ।।

इन बिनु पुरुष जानिए ऐसा । बिना फूल फल तरूवर जैसो ।।

भरथ कुँवर यह भूंजै राज । सो क्यों आवै राम कै काज ।।

जैसी नारि देव लघु तनी । तैसी भई कौसल्या भनी ।।[78]

तुलसीदास की रचनाओं में भी धर्म के नैतिक आधार की अभिव्यक्ति कई स्थलों पर हुई है। उनका कथन है --

क. धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।[79]

ख. पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।[80]

ग. रघुबंसिन्ह का सहज सुभऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ।।[81]

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के लंकाकाण्ड में जिस 'विजय रथ' का चित्र अंकित किया है, वह वस्तुतः धर्मरथ है । उसके माध्यम से कवि ने धर्म के नैतिक आधार का ही प्रतिपादन किया है । श्रीराम ने स्वयं कहा है कि विजय रथ अथवा धर्म रथ के पहिये शौर्य और धैर्य होते हैं । सत्य और सदाचार उसकी मजबूत ध्वजा और पताकाएँ होती हैं । बल, विवेक, दम और परोपकार उसके चार घोड़ों को क्षमा, दया और ममता की रस्सी से रथ में जोड़ा जाता है । ईश्वर भजन ही सारथि और वैराग्य ढाल एवं तलवार, दान, फरसा, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति एवं श्रेष्ठ विज्ञान ही धनुष होते हैं । निर्मल और अचल मन तरकस के समान, शम, यम-नियम ही बाण और ब्राह्मण एवं गुरु की पूजा ही कवच होते हैं। विजय के यही उपाय हैं । ऐसा धर्मरथ जिसके पास होता है, वही विजयी होता है।[82] तात्पर्य यह कि धर्माचरण के लिए काम-मन-वाक्य (शरीर-मन-वचन) के नैतिक स्तर पर शुद्ध रखना, नियंत्रित रखना ही आवश्यक है । तुलसीदास ने भरत को 'धर्म धुरीण' कहा है

एवं उन्हीं के द्वारा तुलसीदास ने कहलवाया है --

करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ।[83]

अर्थात् प्रत्येक कार्य नैतिक (साधुमत) , भाविक (लोकमत) और बौद्धिक (नृपनय) एवं शास्त्रीय (निगम) दृष्टि का पालन करना ही धर्म को नैतिक आधार प्रदान करना कहा जायेगा । इस विवेचन से विदित होता है कि विष्णुदास ओर तुलसीदास दोनों ने नैतिक आधार पर विशेष बल दिया है ।

ज. एक देव की उपासना :

भारतीय धर्म और दर्शन में 'एक संत' या 'एको देवः' की मान्यता रही है । भक्ति के मूलाधार ग्रंथ 'भागवत पुराण' में कहा गया है --

यथा तेरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।

प्राणोपहाराच्य यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वाहणमच्यतेज्याः ।।[84]

उसी के अनुरूप ही तुलसीदास की मान्यता है --

पात पात कै सींचिवो, बरी बरी कै लोन ।

तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ।।[85]

विष्णुदास में यद्यपि इस प्रकार की स्पष्टोक्ति नही मिलती है, तथापि वे भी एकदेव की उपासना के विश्वासी है । विष्णुदास और तुलसीदास ने राम को उपास्यदेव माना है, साथ ही दोनों ने राम के समान ही कृष्ण को भी स्वीकार किया है । राम और कृष्ण दोनों के लिए वस्तुतः विष्णु वा विष्णु से भी महती देवसत्ता के रूप में आलोच्य कवियों ने अपने मत दिये हैं । उनकी ही शरणागति पाना दोनों का लक्ष्य है ।

4. IV धार्मिक उपासना और सम्प्रदाय :

भगवान की शरण पाना भक्त का एक मात्र लक्ष्य होता है । उसके लिए वह अपनी रूचि से अपने आराध्यदेवता की उपासना करता है । उपासना का अर्थ ही है निकट

बैठना अर्थात् अपने उपास्य देवता की समीपता को पा लेना । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों के उपास्य देवता श्रीराम हैं जो विष्णु के अवतार हैं । राम के साथ ही दोनों ने कृष्ण की भक्ति के पद भी लिखे हैं । तुलसीदास की अपेक्षा विष्णुदास ने कृष्ण भक्ति विषयक रचनाएँ अधिक की हैं, किन्तु राम और कृष्ण को भी नाम भेद से एक देवता ही मानते हैं ।

दोनों ने अपने-अपने इष्टदेवों के स्वरूप आदि का वर्णन भाव प्रवण रीति और अधिक विस्तार से किया है । विष्णुदास के आराध्य देवता श्रीराम परब्रह्म परमात्मा है । इस सम्बंध में उन्होंने 'रामायन कथा' में स्पष्ट शब्दों में कहा है --

तू नारायण त्रिभुवन धरन । तुही आदि महिनामय करन ।।
संख चक्र गद सारँगपानि । जग गुरू तोहिं सकत को जानि ।।
तैं ही मच्छ कच्छ तनु धरयौ । तू वराह त्रिभुवन उद्धरयौ ।।
बाबन ह्वै छलियौ बलिराइ । मान्यौ सहसबाहु कौ ठाइ ।।
बैर पिता के रिस मन धरी । छत्री पुहुमि निछत्री करी ।।
तेरे नयन चंद्र अरू भान । उठि अब कहा होत अग्यान ।।
तू दिगपाल भयो दस भेद । तो उसास प्रभु चारौं बेद ।।
तू श्रवननि अश्विनी कुमार । नासा गंधवाह असरार ।।
उदर समुद्र दंतगिरि देव । चउदह भुवन करत तौहिं सेव ।।
उठि उठि हाथ धनुष कर लेहि । बंछि मोछ देवन कौं देहि ।।
इतनो कहि नारद गौ थान । लाग्यो पवन राम के कान ।।
सुमिरहु खगपति करो न वार । मनुहारैं वनचर को दार ।[86]

इसी कारण वे कहते हैं -- 'रामू छाँड़ि का कहिहु सेवा '' उनके राम कौन है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने साफ-साफ कहा है --

दशरथ घरे राम अवतार । छुवै हाथ छाँड़े संसार ।[87]

विष्णुदास के अनुसार --

राम राम जो राम कहाइ ।

सो नर नरक बास नहि जाइ ।।[88]

वे मानते हैं कि पूर्वजन्म में किये गये पाप भी, जो तीर्थाटन और दान आदि धार्मिक कार्यो से समाप्त नहीं होते वे भी राम का भजन स्तवन करने से समाप्त हो जाते हैं । कहा जाता है कि धन के अभाव में धर्म भी नहीं होता, भोग भी करना संभव नहीं है । अर्थात् अर्थ, धर्म और काम तीनों में अनन्योनाश्रित भाव है । विष्णुदास को इन तीनों में कोई भी प्राप्त नहीं हुआ । उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति (मोक्ष की प्राप्ति) के लिए राम नाम का सहारा लिया । उनकी पूरी कथा (रामायन कथा) लिखी । रामायन कथा के सुनने से मनुष्य के सब प्रकार के पाप समाप्त हो जाते हैं । उसे पाप ग्रसित नही करते । उसे ध्यान में रखकर ही कवि ने धर्मकार्य समझ राम की कथा (रामायन कथा) की रचना की है ।[89] 'राम' शब्द के दोनों अक्षर पाप-वृक्ष को काटने के लिए कुठारवत् हैं ।[90] राम की तरह ही कृष्ण के लिए भी कवि ने "घट-घट व्यापक अन्तरजामी त्रिभुवन स्वामी" पदों को प्रयोग किया है ।

तुलसीदास के उपास्य देव श्रीराम भी दशरथ-सुत और रघुवंश-मणि होने के बावजूद विश्वरूप हैं ।[91] लक्ष्मण के शब्दों में वे ब्रह्म हैं, परमार्थ स्वरूप हैं --

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।

सकल विकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ।।[92]

भक्तों पर प्रसन्न होकर वे कभी कभार उन्हें विराट रूप भी दिखा देते हैं --

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड ।

रोम रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मंड ।।[93]

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों के उपास्य देव श्रीराम हैं, किन्तु श्रीराम के विश्वरूप में

दोनों में पर्याप्त अन्तर है । विष्णुदास के वर्णन अपेक्षया संक्षिप्त हैं । तुलसीदास के वर्णन न केवल विस्तारपूर्ण बल्कि विविधरूपा भी हैं । तुलसीदास ने राम में जितनी अपरिमित विशेषताओं का उल्लेख किया है, उतना विष्णुदास ने नहीं । 'कवितावली' में श्रीराम की विशेषता गिनाते हुए तुलसी कहते हैं --

भूमिपाल, व्यालपाल, नागपाल, लोकपाल,
कारन कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली ।
कादर को आदर नाहीं काहू के देखियत,
सबनि सोहात है सेवा सुजानि टाहली ।
तुलसी सुभाय कहैं, नाही कछु पच्छपात,
कौन ईस किये कीस भालुखास माहली ।।[94]

तुलसीदास जानते हैं कि --

आलसी अभागी, अघी-आरत-अनाथपाल,
साहेब समर्थ एक नीके भव गुनी मैं ।
दोष-दुख दारिद-दलैया दीनबंधु राम,
'तुलसी' न दूसरो दयानिधान दुनी मैं ।।[95]

तुलसीदास के श्रीराम की प्रतिज्ञा है -- 'पन हमार सेवक हितकारी'[96] उन्होंने शत्रुओं तक भी अहित नहीं किया है ।[97] अस्तु, राम को उपास्यदेव मानना अकारण नहीं है ।

भारतीय परम्परा में उपासना तीन प्रकार की मानी गयी है -- सात्विकी, राजसी और तामसी । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों को सात्त्विकी उपासना ही मान्य है। राजसी और तामसी उपासनों को दोनों ने निजी स्तर पर स्वीकार नहीं किया है । सात्विकी उपासनाओं में भी उपास्य देवता के नाम-गुण-यश का श्रवण, कीर्तन, स्मरण ही उन्हें मान्य हैं। उनमें 'नाम' का महत्त्व अधिक है । नाम-जप को विशेष महत्त्व मिला है ।

तुलसीदास ने रामोपासना का विधान करते हुए कहा है -- "बीजमंत्र जपिए सोई, जो जपत महेस"[98] यह बीजमंत्र क्या है ? बीजमंत्र का संकेत 'रामचरितमानस' में इस प्रकार किया गया है --

बन्दउँ नाम राम रघुवर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ।

विधि हरि हरमय बेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुन निधान सो ।

महामंत्र जोई जपत महेसू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ।[99]

इससे विदित होता है कि विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने उपास्यदेव के 'नाम' का जप ओर कीर्तन करने को सर्वाधिक महत्त्व दिया है । नाम-जप इस कारण भी अधिक महत्त्व हो जाता है कि नाम के अभाव में रूप की भी ठीक पहचान नहीं हो पाती - 'रूप विसेष नाम बिनु जाने ; करतलगत न परहि पहिचाने।' इसी कारण तुलसी का आग्रह है--

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ ।[100]

तुलसीदास ने तो उपासना को सर्वाधिक सरल विधि बताते हुए लिखा है कि राम तुम्हें प्रिय लगे अथवा राम को तुम प्रिय लगो -- इन दोनों बातों में तुम्हें जो भी सुगम और सरल लगे, उसे ही अपना लो । यही रामोपासना है । विष्णुदास में रामोपासना की विधि के सम्बन्ध में इस प्रकार का विस्तारपूर्वक विचार नहीं हुआ है, पर नामोपासना को ही उन्होंने भी महत्त्वपूर्ण माना है ।

वैष्णव भक्त होने के कारण विष्णुदास और तुलसीदास की धार्मिक मान्यताओं में समानता होने के बावजूद सम्प्रदाय की दृष्टि से अन्तर मानना पड़ेगा । विष्णुदास वैष्णव और रामभक्त थे, पर नाथमत में दीक्षित थे । यह और बात है कि नाथपंथी विचार उनकी रचनाओं में नहीं अनुस्यूत हो सके हैं । वैष्णवों के किसी भी पंथ से उन्हें जोड़ना गलत होगा । स्वयं भी उन्होंने इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का संकेत नहीं किया है । वस्तुतः वे

हिन्दुओं की उन समन्वित धार्मिक मान्यताओं को ध्यान में रखकर चलनेवाले थे । जिसमें किसी भी सम्प्रदाय से दुराग्रह नहीं होता ।

तुलसीदास के सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है । कई विद्वान उन्हें रामानुज सम्प्रदाय की रामानन्दी परम्परा से जोड़ते हैं । कुछ विद्वान उन्हें वैरागी पंथ से जोड़ते हैं । तुलसीदास ने जीवन काल में अपने को किसी पंथ से नहीं जोड़ा । कहा जाता है कि एक बार वे किसी मठ के मठाधीश भी बनाये गये थे, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया । संभवतः इन सब कारणों से ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें 'स्मार्त वैष्णव' मानना उचित समझा है । यद्यपि तुलसीदास किसी सम्प्रदाय में बद्ध नहीं थे एवं उनकी मृत्यु पश्चात् भी उनके नाम पर किसी प्रकार का पंथ नहीं चला, तथापि उत्तरभारत में प्रायः उन्हीं की मान्यताएँ अधिक लोकप्रिय हुईं । तुलसीदास की विशेषता और महत्ता एवं उनकी उपासना-पद्धति की अद्वितीयता इसी कारण बनी रही कि वे किसी पंथ से जुड़े नहीं थे । यह छोटी बात नहीं कि प्रायः सभी वैष्णव पंथों में उनके 'रामचरितमानस' को समान आदर प्राप्त है । सभी अपनी-अपनी पान्थिक मान्यताओं के अनुरूप उसे नित्य पठनीय और पूज्य मानते हैं ।

इस विवेचन को विराम देते हुए कहा जायेगा कि विष्णुदास और तुलसीदास के पंथ अलग-अलग रहे, पर उनमें भेद कम, समता ही अधिक है । तुलसीदास को विष्णुदास की अपेक्षा अधिक महत्ता मिली है, उसके कारण भी स्वतः स्पष्ट हैं । 'रामायन-कथा' की रचना से विष्णुदास ने जिस रामभक्ति को महत्त्व दिया, वह तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में ही सर्वोच्चता प्राप्त कर सकी । तुलसीदास के प्रयत्नों से ही राम उत्तरभारतीय हिन्दू जीवन पद्धति में गहराई से अपना स्थान बना चुके हैं एवं तुलसीदास द्वारा निर्देशित भक्ति और धर्म विषयक मान्यताएँ जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकृत हो चुकी हैं ।

4. V निष्कर्ष

विष्णुदास और तुलसीदास की धार्मिक विचारधाराओं के उपरि तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि मानव मात्र की लौकिक और पारलौकिक उन्नति अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि दोनों को मान्य है । आलोच्य कवियों के समय इस परम्परा प्राप्त मान्यता का ह्रास हो गया था । धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के आडम्बर, वामाचारिता, तांत्रिकता, साम्प्रदायिक कटुता, भूत-प्रेतादि की पूजा का चलन था । दोनों की दृष्टि इस ओर गयी है, पर तुलसीदास की दृष्टि अधिक पैनी है ।

ह्रासोन्मुखी धार्मिक चेतना को पुनः व्यवस्थित कर सही दिशा देने की कोशिश दोनों ने की है । विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास के प्रयत्न इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। 'श्रुति सम्मत हरि भक्ति-पथ' के लिए नैतिक आधार को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया । सभी प्राणी को विष्णुमय मानना, विष्णु और विष्णुभक्त (वैष्णव) में अन्तर नहीं करना, विभिन्न पंथों में पारस्परिक सहिष्णुता बढ़ाने, भूत-प्रेतादि की पूजा करने से विमुख होने, आडम्बर को त्यागने आदि की बाते दोनों ने कही । धार्मिक चेतना के विकास परिष्कार के लिए गुरु कृपा, संत से प्रेम, सत्संगति, नाम-स्मरण आदि को दोनों ने महत्त्वपूर्ण माना । आचरण की पवित्रता पर समान रूप में दोनों ने बल दिया ।

नया पंथ चलाने की प्रवृत्ति न तो विष्णुदास में थी और न तुलसीदास में थी । विष्णुदास राजाश्रित कवि और घरवासी थे । तुलसीदास गृहत्यागी होने के बावजुद किसी पंथ से जुड़े नहीं थे । दोनों ने अपने विचारों को किसी पान्थिक खेमे में नहीं बाँधा । विष्णुदास ने राम और कृष्ण दोनों की भक्ति के गीत गाये । 'कृष्णगीतावली' में तुलसीदास ने कृष्णभक्ति के गीत गाये हैं, पर विष्णुदास की तुलना में वे कम महत्त्व के हैं। विष्णुदास को कभी किसी भी वैष्णव पंथ से जोड़ा नहीं गया, न उन्होंने इस बारे में किसी प्रकार का संकेत किया है । उन्होंने 'रामायन कथा' में जिस राम को जनता का ईश्वर

बनाया, बाद में तुलसीदास ने उन्हें ही 'रामचरितमानस' के माध्यम से घर-घर तक पहुँचाया। तुलसीदास को न तो रामानंदी, न वैरागी अथवा किसी अन्य वैष्णव पंथ का अनुयायी माना जाता है, तब भी उनका 'रामचरितमानस' सभी वैष्णव पंथों में समान भाव से पढ़ा जाता है । उसे सर्वत्र समान आदर भाव से देखा जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तुलसीदास को धार्मिक दृष्टि से "स्मार्त वैष्णव" कहते हैं, जो असार्थक प्रतीत नहीं होता । वस्तुतः धार्मिक विचारों की दृष्टि से विष्णुदास और तुलसीदास में मूलतः समानता होते हुए भी तुलसीदास की विशिष्टता इसमें निहित है कि उन्होंने प्रत्येक बिन्दु पर अधिक विस्तार से विचार किया है । दोनों के आदर्श प्रायः एक समान ही हैं ।

संन्दर्भ :

1. शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', पृ. 79
2. 'वाल्मीकि युगीन भारत' में पृ. 464 पर उद्धृत
3. युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि, काका कालेलकर, पृ. 16
4. अल्पज्ञात कवि विष्णुदास - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' , पृ. 14
5. क. ज्यौ-ज्यौ आवै कलि पैसार । त्यों त्यों पाप चलै संसार ।

स्वर्गारोहण, महाभारत, पृ. 175

ख. कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सदग्रंथ ।। - रामचरितमानस 7/97 (क)

6. गयौ द्वापर कलि आयौ देवा ।।

उलटे भये सकल अब कर्म ।

हमतौ कछु न जानै मर्म ।। - स्वर्गारोहण, महाभारत, पृ. 171

7. स्वर्गारोहण, महाभारत, पृ. 171-173
8. - वहीं - पृ. 175
9. रामचरितमानस, 7/97-102
10. दोहावली, 558 एवं इसी प्रकार के कथन, 495, 496, 551 आदि में भी देखे जा सकते हैं ।
11. दोहावली - 566
12. कवितावली - 7/105
13. दोहावली - 555
14. - वहीं - 556
15. - वहीं - 552
16. - वहीं - 553
17. कवितावली, 7/105
18. दोहावली - 554
19. - वहीं - 19
20. कवितावली, 7/84
21. दोहावली - 383
22. - वहीं - 326
23. - वहीं - 550
24. कवितावली, 7/162
25. दोहावली - 65
26. रामचरितमानस - 2 /166, 6 / 30
27. कवितावली - 7/119
28. महाभारत - 172

29. रामचरितमानस 7/102/2-3
30. - वहीं - 1/25
31. - वहीं - 1/26
32. महाभारत, 4/23
33. रामचरितमानस, 1/5 सोरठा
34. - वहीं - 1/5/1चौ.
35. महाभारत, 4/22
36. रामायन कथा, 1/7-8
37. - वहीं - 1/9
38. महाभारत, पृ. 171
39. रामचरितमानस, 1/65/3
40. - वहीं - 7/92/3
41. - वहीं - 7/106/3
42. - वहीं - 7/98/4
43. स्वर्गारोहण (महाभारत), पृ. 175
44. रामचरितमानस - 1/2/4; 7/119/10; 7/122/3; 7/124/4 आदि
45. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन कथा, डॉ. मोहन सिंह तोमर, पृ. 33-34
46. विनय पत्रिका - 197/2
47. दोहावली - 392
48. - वहीं - 331
49. - वहीं - 153
50. कवितावली - 7/32
51. स्वर्गारोहण
52. दोहावली - 65
53. - वहीं - 496
54. गीता - 9/25
55. *हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन कथा*, डॉ. मोहन सिंह तोमर, पृ. 34-35
56. महाभारत - 2/1-3
57. वही, (भूमिका) , पृ. 37
58. तुलसी पूर्व रामसाहित्य, अमरपाल सिंह, पृ. 139 पर उद्धृत
59. महाभारत - 3/11
60. - वहीं - 3/11
61. - वहीं - 3/12
62. महाभारत - 3/12-15

63. रामायन कथा - 1/3-4
64. महाभारत (भूमिका) , पृ. 37
65. रामचरितमानस - 2/5/4
66. - वहीं - 2/7/3
67. - वहीं - 2/7/3
68. - वहीं - 2/65/1
69. - वहीं - 6/1/4
70. - वहीं - 7/105/1
71. - वहीं - 2/80/1
72. क. पालइ सब निज धर्म, चलिय सकल करि कर्म ।।
-- सूरपूर्व ब्रजभाषा, पृ. 363 पर 'स्वर्गारोहण' से उद्धृत
ख. खल अध अगुन साधु गुन गाहा । रामचरितमानस 1/5/1घ.
73. महाभारत (परिशिष्ट 1 में संकलित), पृ. 175
74. - वहीं - पृ. 174-175
75. - वहीं - 10/ 100-101
76. - वहीं - 14/ 38-41
77. - वहीं - 15/42-46
78. रामायन कथा - 23/13-16
79. रामचरितमानस - 2/94/3
80. - वहीं - 7/40/1
81. - वहीं - 1/230/3
82. - वहीं - 6/79/3-6
83. - वहीं - 2/258
84. भागवत पुराण - 4/31/14
85. दोहावली - 546
86. रामायन कथा - 153/92-97
87. - वहीं - 239/26
88. - वहीं - 204/82
89. - वहीं - 90/9-11
90. - वहीं - 90/8
91. रामचरितमानस - 1/284/1
92. - वहीं - 2/92/14
93. - वहीं - 1/201

94. कवितावली - 7/ 23
95. - वहीं - 7/21
96. रामचरितमानस - 1/128/3
97. - वहीं - 2/182/3
98. विनय पत्रिका 108
99. रामचरितमानस - 1/18/1-2
100. विनय पत्रिका - 100
101. दोहावली - 75

पंचम अध्याय

सामाजिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

पंचम अध्याय

सामाजिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

5.1 उपक्रम

समाज को सामान्यतः मनुष्यों का संघ-'समाजो नराणां-संघः' कहा जाता है । "भारतीय समाज के घटकों में नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से आर्य, द्रविड़, निषाद और किरात वर्ग की जातियों का परिगणन होता है । इन सब का संविलियन या समन्वय होने के कारण ही भारतीय समाज समन्वित समाज का उदाहरण बन सका है ।"[1] आलोच्य कवि द्वय उत्तर भारत से हैं । इस क्षेत्र में द्रविड़ जातियों का सामाजिक घटक प्रायः नही है। दोनों कवियों की रचनाओं में उपरिवत् उल्लिखित जातियों के अतिरिक्त राक्षस (दानव, दैत्य, असुर, पिशाच), वानर, यक्ष, नाग, गृध आदि के भी उल्लेख मिलते हैं । ये जातियाँ पौराणिक हैं एवं मूल रामायण (वाल्मीकि रामायण) में उल्लिखित हैं । ये सब वहीं से ली गयी हैं । आलोच्य कवियों के समय इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रह गया था । विष्णुदास और तुलसीदास के समय समाज का पारम्परिक ढाँचा दो स्पष्ट वर्गों में बँट गया था -- हिन्दू और मुसलमान। आलोच्य कवि हिन्दू वर्ग से थे । यद्यपि उनकी दृष्टि गयी है दोनों समाजों पर, किन्तु दोनों ने हिन्दू समाज को ध्यान में रखकर ही अपनी बातें कही हैं ।

साहित्यकार यद्यपि समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री आदि नहीं होता, तथापि उनकी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि विचारों को खोजा-पाया जाता है । यह सच है कि -- "कवि की रचना में बनिये की बही का हिसाब पढ़ना बेवकूफी है, उसमें इतिहास के कीड़े बटोरना मूर्खता है, उसमें भूगोल की रेखाएँ उभारना नादानी है । वह तो दिल की पुकार है, जिसमें सदियाँ बोल रही हैं, युगानुयुग करवटें ले रहे हैं, वह सत्ता की समष्टि है, उसमें व्यष्टियाँ विलीन होकर खो गयी हैं ।"[2] इसके बावजूद कवियों की रचनाओं में वे सारी वस्तुएँ खोजी जाती हैं जिन्हें हम अपने जीवन के लिए आवश्यक मानते

हैं । इसका कारण यही माना जायेगा कि कवि या साहित्यकार अपने युग का भोक्ता और कभी-कभी भावी युग का स्रष्टा भी होता है । विष्णुदास के लिए युगद्रष्टा विशेषण भले ही सार्थक नहीं हो, पर तुलसीदास के लिए ऐसी बात नहीं कही जा सकती । यों दोनों कवि एक विशिष्ट धार्मिक जीवन के अनुयायी थे, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे समाज के हितचिन्तक नहीं थे । अपने इष्टदेव का कीर्तन करने के क्रम में उनकी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मान्यताएँ प्रासांगिक रूप में ही सही, पर आयी अवश्य हैं । असम्भव नहीं कि वे क्रमबद्ध नहीं हो, पर वे विचाररहित नहीं कहे जा सकते । आलोच्य कवियों की रचनाओं में विचारों के दो प्रकार हैं -- प्रथम प्रकार है यथार्थ, अर्थात् उनके समय में समाज जैसा था, उसका यथारूप वर्णन और दूसरा प्रकार है आदर्श, अर्थात् उनकी दृष्टि में समाज को जैसा होना चाहिए । आगामी पृष्ठों में इन्हीं दोनों प्रकारों पर ध्यान रखते हुए विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया जाता है ।

5.II सामाजिक प्रतिबिम्बन

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं के मुख्य आधार 'रामायण' और 'महाभारत' हैं । वाल्मीकि और व्यास द्वारा वर्णित समाज के विभिन्न घटक आलोच्य कवियों की रचनाओं में उल्लिखित तो हुए हैं, पर उनमें से अनेक घटक या तो पूरी तरह समाप्त हो गये हैं या उनका स्वरूप पूरी तरह बदल गया है । नृशास्त्रीय दृष्टिकोण से उल्लिखित घटक रूप जातियों में इस दृष्टि से नाग, गृध, वानर ऋक्ष, यक्ष, राक्षस (दानव, दैत्य, असुर, पिशाच), किन्नर (यक्ष, गन्धर्व) आदि के नाम लिये जायेंगे । इसी प्रकार वर्णाश्रम अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ग में समाज विभाजन की व्यवस्था को भी आलोच्य कवियों की रचनाओं में उसी रूप में नहीं पाया जा सकता, जिस रूप में वे मूल ग्रंथों में वर्णित हैं । चारों आश्रमों अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास का उल्लेख भी विवेच्य कवियों ने पारम्परीण रूप में किया है, पर उनमें भी पर्याप्त अन्तर आ गया था ।

संन्यास (चौथे आश्रम) को प्रायः पहले से ही महत्त्व नही दिया जा रहा था । 'महाभाष्य' में चतुराश्रम का उल्लेख होने के बावजूद विवरण केवल पहले तीन का ही रखा गया है । कालिदास ने भी केवल प्रथम तीन आश्रमों का ही वर्णन किया है । चौथे आश्रम (संन्यास) को महत्त्व नहीं दिये जाने का कारण वैदिकों द्वारा उसका विरोध किया जाना भी रहा है । बोधायन धर्मसूत्र ने संन्यास को असुर-प्रवर्तित कह कर उसकी निन्दा भी की है ।[3] आश्रमों में गृहस्थाश्रम को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है ।[4]

विवेच्य कवियों की रचनाओं में समाज के घटक के रूप में न तो मूल (आधार) ग्रंथों में उल्लिखित जातियाँ है और न तद्युगीन चतुर्थवर्णों और चतुराश्रमों की व्यवस्था है। उनका परम्परा के रूप में केवल उल्लेख भर हुआ है । विवेच्य कवियों के समाज की लघुतम इकाई व्यक्ति है । "व्यक्ति ही केन्द्रापसारी शक्ति के रूप में क्रमशः परिवार, गोत्र, जाति, ग्राम, जन, समूह और समुदाय में विकसित हो समाज का रूप ग्रहण करता है । इस प्रकार समाज मनुष्यों का केवल समूह नहीं, बल्कि कई समूहों का एक वृहद् समुदाय है जिसमें एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के सम्बन्धों के साथ किसी न किसी स्तर पर सामंजस्य होता है । बुनियादी तौर पर समाज वृहद् मानव समुदाय है जो मनुष्य की जटिल सम्बन्धताओं का पुंज होता है ।"[5] समाज कभी जड़ अथवा निष्क्रिय नहीं होता, वह सतत् चैतन्य और सक्रिय होता है । तुलसीदास के शब्दों में कहा जायेगा --

पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमाम है ।[6]

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में वर्णित समाज उत्तरमध्ययुगीन समाज है । "उस समाज की इकाई न तो राज्य थी और न व्यक्ति । व्यक्ति का आदर्श उसके परिवार, आजकल की भाषा में सम्मिलित परिवार, में निहित था एवं समाज की लघुतम इकाई ग्राम थी । मनुष्य कई समूहों-उपसमूहों में विभाजित था । यथा जाति, ग्राम, जन, सम्प्रदाय, वर्ग, समूह, समुदाय राज्य आदि में । इन सभी समूहों से व्यक्ति अन्तर्सम्बन्धित

था एवं उन्हीं आधारों पर वह अन्तर्क्रियान्वित भी होता था ।"[7] आलोच्य कवियों की कृतियों में इसके बारे में उल्लेख, संकेत अथवा वर्णन प्राप्त होते हैं, किन्तु विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास की रचनाओं में तत्युगीन जटिल सम्बन्धताओं का प्रतिबिम्बन अधिक और उत्तम रूप में हुआ है ।

विष्णुदास और तुलसीदासकालीन समाज का मूलाधार कृषि और भूमि व्यवस्था थी । राजनीति, धर्म, साहित्य एवं विभिन्न कलाएँ आदि सभी उसी से संचालित होते थे । राजाओं, सामंतों, साधु-सन्यासियों, शिल्पियों आदि सबकी आर्थिक व्यवस्था कृषि और भूमि पर ही आधारित थी । सबसे बड़ा भूमिपति राजा होता था । उसके नीचे सामन्त, सरदार आदि कई प्रकार के लोग होते थे । जिन्हें राजा की ओर से विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिए जागीर (भूमि) मिलती थी । राजा-सामन्त, सरदार-किसान का सम्बन्ध बन चुका था । यही कारण है कि विष्णुदास और तुलसीदास की भक्ति-भावना में भी स्वामी-सेवक सम्बन्धों को ही मान्यता मिली है । उसे ही आदर्श स्वीकार किया गया है । दोनों ने दास्य भक्ति को ही सर्वोपरि माना है । किसान भूमिपति नहीं, कृषि दास होता था । उसे किसानी के लिए भूमि जागीरदार, सरदार या राजा की ओर से मिलती थी । तुलसीदास की उक्ति 'खेती न किसान को' उस दृष्टि से बड़ी सार्थक है । किसान खेती करता था, पर खेत पर उसका अधिकार नहीं होता था । साथ ही "भक्तिकाव्य की यह भी विशेषता है कि निराशापूर्ण स्थितियों में 'दरिद्रता' और 'अभाव' का आदर्शीकरण 'संतोष' और 'त्याग' में हो गया है । इसलिए संतो और भक्तों में गृहस्थी और नारी का निषेध वरेण्य हो गया है ।"[8] यह विशेषता विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में अनेक स्थानों पर लक्षित होती है । उनके समय के समाज में अधिकांश बातें परम्परा से मान्य रूप में चली रही थीं , पर कई नयी बातें भी आ जुड़ी हैं, यथा -- जनजीवन में भक्ति का प्रवेश, लोकभाषाओं में प्रभूत साहित्य रचना, रामायण-महाभारत-पुराण आधारित प्रसंगों पर भक्तिमूलक रचनाओं का

प्रणयन, इस्लाम की चुनौती, विभिन्न सम्प्रदायों में तनाव और विरोध आदि । "उनके परिणामस्वरूप सामाजिक यथार्थ को पौराणिकीय और मिथकीय आदर्श से ओत-प्रोत कर संत अथवा भक्त की दृष्टि से देखने-समझने के प्रयास दोनों कवियों की रचनाओं में हुए हैं। सम्भवतः इसी कारण अधिकांश सामाजिक प्रतिबिम्बन अन्योपदेशी भी प्रतीत होते हैं।"[9] प्रथम अध्याय में युगीन परिस्थितियों पर विचार करने के क्रम में तत्कालीन सामाजिक यथार्थ का आवश्यक संकेत किया जा चुका है । इस कारण पुनरूक्ति से बचते हुए ही यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वह समाज ह्रासोन्मुखी था । सामाजिक जीवन में मनमानी चल रही थी । पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक जीवन में अनेक दुर्बलताएँ थीं जिससे संत और भक्त भी अप्रभावित नहीं थे । विभिन्न दुर्बलताओं के विवरण विष्णुदास और तुलसीदास दोनों की रचनाओं में प्राप्त होते हैं ।

5 क.II सामान्य जन-जीवन

विष्णुदास और तुलसीदास द्वारा वर्णित समाज घोर कलियुग में स्थित है । पौराणिक मान्यता के अनुसार सुप्तावस्था (पतनावस्था) ही कलियुग है एवं जाग्रतावस्था (संचरणशीलता) ही सतयुग है । उन दोनों के मध्य अँगड़ाई लेने वाला द्वापर है और उठ खड़ा होने वाला त्रेता ।[10] विष्णुदास ने 'रामायन कथा' में और तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में तद्युगीन पतनावस्था (कलिकाल) के केवल उल्लेख ही नहीं किये हैं, वरन् घोर निराशापूर्ण चित्र भी अंकित किये हैं । 'रामायन कथा' में जहाँ केवल यत्र-तत्र राक्षसी अत्याचार आदि के वर्णन हुए हैं, वही अन्य रचनाओं (विशेषतः 'कवितावली') में छिट-पुट वर्णनों के अतिरिक्त कलिकाल का स्वतंत्र रूप में वर्णन भी हुआ है । 'मानस' का कलिकाल वर्णन यद्यपि परम्परानुसारी है, पर 'कवितावली' का वर्णन तत्कालीन समाज का प्रखर दर्पण है ।"[11]

रामायन कथा में विष्णुदास ने रावण एवं अन्य राक्षसों के अत्याचारों के तद्युगीन

त्रस्त सामान्य जनजीवन के अनेक संकेत किये हैं । यथा --

रावन राजनीति परिहरै । सब जग लोग सतावत फिरै ।।
पर धन पर तिय लेत छुड़ाई । दुखी करे सब पृथिमी राइ ।।
ब्याहति घरनि बहुत दिन गए । सुखी कुबेर दूत पर ठये ।।
देवनि वर दीनौ तो जोग । अब मति बंधु सतावहि लोग ।।[12]

रावण की विलासिता के वर्णन के मिस तत्कालीन सामंतों आदि तथाकथित आभिजात्य वर्ग के लोगों की विलासिता का भी संकेत हुआ है --

(क) त्रिभुवन जित्यौ निसाचर बली । देव नाग नर कत्यां हरी ।।
सूरत भूजि सोवहि बल भयौ । सोवत राइ हनू तहं गयौ ।।[13]

(ख) जो कन्या सुर मुनि गंधर्व । ते रावन हरि लीनी सर्व ।।
चौदह सहस विमान चढ़ाइ । लंकहिं लै आयौ वह राइ ।।[14]

(ग) दोऊ बंधु बुलिय हंकार । जे आनी ते दिखाई नार ।।
रोवति सुदरिं करहिं कलाप । तब रावन पहँ कहौ सराप ।।
भानु कुमार नाम तिहि तनौ । तिनसों मोहिं सनेह ति घनौ।।[15]

(घ) जालि अछरा रंभा नाउँ । अलकापुरी कुँवर पहँ जाउँ ।।
भई वार बोली अकुलान । होति बार मुहिं दीजहु जान ।।
रावन सुनी न बात सुहाइ । बलके रमो दई मुकुराइ ।।
छुटे केस बिलख मुख भई । रंभा भानु कुँवर पहँ गई ।।
देखि नारि खरो भय भरो । छूटे केस फटी कंचुरी ।।
मिटे तिलक उर टूटा हार । यो अचिरज बुझै व्यवहार ।।
रंभा तासु कहै सति भाउ । दस कंधर लंका कौ राउ ।।[16]

राक्षसी अत्याचार से पीड़ित होने पर देवता सब ब्रह्मा के पास जाकर उनसे

अपनी पीड़ा का कथन करते हुए उससे मुक्ति का उपाय पूछते हैं ।[17] कवि विष्णुदास ने 'स्वर्गारोहण' में कलिकाल के प्रभाव और उसके दुष्परिणाम का अति विस्तृत वर्णन (पचास से भी अधिक चौपाइयों में) किया है । उनमें यद्यपि अनेक बातें पुराणानुसारी और परम्परागत हैं, पर युगीन यथार्थ का भी उत्तम प्रतिबिम्बन हुआ है । यहाँ कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं । यथा --

विप्र सुद्र न रहिहै भेव । पुरुषहिं नारि न दबि हैं देव ।
पुत्रु करै ऐसौं परभाइ । मेहरी कारन मारै माइ ।
अरु सुनि हो राजा अजगूतु । अंनु खाइ तजि बापै पूतु ।।
अधिक न जियै साठि तैं कोई । ना परतीति भोगवै लोई ।
एकु माइ दुइ जनमै पूत । ते जुझैं जैसे जमदूत ।।
चोरि अन्यायु उपारी होइ । झूठी साखि भरै सबु कोइ ।।
कलि में अलपु बरसिहै मेहु । खाली भीजै आधी देह ।।
थोरो अंनु उपजिहै राई । अंत बिना सब भूख मराई ।
धरनी खाइ बीजु सब जैहे । बहुतक बबै सु थोरौ लैहै ।।
उपजैगो सु लेइगौ राइ । किरखी कछु न घर लै जाइ ।।
हाय-हाय सब भुवन समाई । परजा सुखी न हूहै राई ।।
जग में ओछी चलै कुटेव । मेहरी बैठ करावै सेव ।
लुपत होइ पतिब्रत धर्म । चलन चलैम्लिच्छन के कर्म ।।
जग्य धर्म कलि बिररे होइ । सगो न कलि काहू को कोइ ।
कलि में कन्या बेचै बापु । महा जु कति में चलिहै पापु ।।
कलि में राजा करै अकाजु । बेटी दै दै भोगिहैं राजु ।
कलि में बहु न मानै सासु । उलटौ ताहि दिखावै त्रासु ।।

पुत्र पिता की कही न करै । अपु मन भावै सोई करै ।

कलि में गऊ दूध कम देही । नहीं आपुनौ बच्छा लेही ।।

और सुनौ राजा अजगूतु । अंनु खाइ तजि बापै पूतु ।

माता-पिता न मानै कोइ । सुनु राजा कलि ऐसी होइ ।।

सिष्य भोगवै गुर की नारि । अपजसु लागे कलि महतारि ।

कलि के बिप्र न करैं षटकर्म । चलै न सूद्र आपने धर्म ।

कलि के बिप्र बिगरिहैं देवा । महुमोर मदु-मछरी खावा ।

बिनु अस्नाने भोजन करई । हरि की पूजा चित्त न धरई ।।

सब छांडै कुल धर्माचारू । कलियुग देव यहै ब्यौहारू ।।

कलिजुग सेवक बिगरै देव । कपट राखिकै करिहैं सेव ।।

अनै-उनै करि जोरैं दाम । निसुदिन देव लोभ सौं काम ।

दाम काटि नाहिं देंहीं पाती । माचल चोर फिरैं अधराती ।।

होम जग्य तपु दूरि कराही । दान न दैहैं विप्र कला हीं ।

थाती लोपु करैगौ लोई । नितु-नितु चलन पाप को होई ।।

कलिजुगु बापै ठगिहै पूतु । ठाड़ौ-ठाड़ौं होइ जमदूतु ।

कलि में छिनु न पतीजै कोई । लै कै देन न कैहै कोई ।

कलि में पापु चलेगौं देवा । माता-पिता की करै न सेवा ।

कलि में राइ करै ये काम । सेव कराइकै मेटै दाम ।।

अपनी गऊ न जानै कोई । लै राजा डहरावै सोई ।

बिप्र डांडि संचरै भंडार । कलिजुगु देव यहै ब्यौहार ।।

बिप्र भाग लै सुद्र अधांय । ब्राह्मन ह्वैके मांस चबाय ।

कलिजुग में सुरपी के ठाठ । फिरिहैं गैल सुधर घर बाट ।।

कलि में राजा करै अकाजु । बिटिया दै दै भोगवै राजु ।

बिररे पुरिष एकादसि रहाई । बिररे पुरिष तीरथै जाई ।।

कलि में गर्भ डारि है नारी । अन्याई बसैं नग्र मझारी ।

सायौ बोलु न बोलिहै राई । डडी लेहि पुनि नग्र बसाई ।।

मग्र बाधि मारिहै पिपासी । घर-घर बधिक रोपिहैं पासी ।

बिप्रै कलि मै न मानिहै कोई । धर्मु कंल्यानु सुनै नहि लोई ।।

बिप्र न दान देति कलि माही । ऊतिम पुरष बिस्या घर जाहीं ।

कैसै बिप्रजू अछित दैही । चंदन खौरि बिस्य सिर दैही ।।

कलि में टोना-टमना जानिबौ । बेद-पुरान न कलि मै मानिबौ ।

धुतु चोरू लंपट जो होई । सेवकै दानु देहिगौ लोई ।।

जिहि संम्रथता ताकहँ देही । देखि निसप्रेही मुडी कुदेही ।

बिप्र न मानहि कलि संतोषू । लै पतियह ग्रह दुलभया मोषू ।

दाता जौ देहिगौ दानु ।

एक अचँभो सुनि हो राई । कुबुधि पापु कलि में चलि आई ।।

पँडिताई छाडि द्युतमी निबाही ।

एकादसी व्रतु छाडियौ । तातें मुकति न अंत पाइयौ ।।

एकादसि कौ देहिगैं दोषु । जाके सुनएँ होतु है मोषु ।

कलि के सूद्र अन्हाइ कै खाइ । बांभन सीरे नीर डराई ।।

बांभन करै कृष-त्यौहार । यह कलिजुग चलि होहि अचार ।।[18]

और आगे भी कहा है --

कलि में पापन कँपिहै धरनी । परबत गिरी छाँड़िहैं आसन ।

परजा सुखी न कलि में होई । दुखी बहुत दालिद्री होई ।।[19]

विष्णुदास के समान ही तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' में कलिकाल का वर्णन करते हुए बताया है कि समाज में लोग मोहग्रस्त हो गये हैं । शुभकर्म को लोभ ने हड़प लिया है । वर्ण एवं आश्रम धर्म समाप्त हो गये हैं । ब्राह्मण 'श्रुतिबेचक' और राजा प्रजा का अन्न खाने वाले हो गए हैं । पंडिताई डींग हाँकने तक ही सिमट गयी है । दम्भी लोग संत बन रहे हैं । दूसरों के धन को अपहृत करने वाला चतुर कहा जाता है । 'मसखरी' करने वाले और भूठ बोलने वाले ही गुणी समझे जाते हैं । आचारहीन व्यक्ति ही ज्ञानी-वैरागी समझे जाते हैं । बड़े-बड़े नख और जटा रखने वाले तपस्वी माने जाते हैं । अशुभ-वेष और आभूषण धारण करना एवं भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं करने वाले ही योगी और सिद्ध माने जाते हैं । 'लबार' को वक्ता कहा जाता है । पुरुष स्त्रियों के वैसे ही वशीभूत है जैसे मदारी के अधीन बन्दर । काम और लोभ ने सबको वश में कर लिया है । अभागिनी स्त्रियाँ अपने गुणवान और सुन्दर पतियों को छोड़कर पराये पुरूष का सेवन करती हैं । सौभाग्यशाली स्त्रियाँ बिना आभूषण के रहती है, पर विधवाएँ नित्य नवीन श्रृंगार करती हैं । शिष्य और गुरू में बहरे और अंधे का हिसाब हो गया है । गुरू शिष्य के धन को अपहृत करता है, किन्तु उसके शोक को नहीं । जीविका चलने वाली विद्या ही लोग अपने बच्चों को पढ़ाते है । कौड़ी भर लाभ के लिए भी ब्राह्मणों और गुरूओं की हत्या कर दी जाती है । सभी जगह 'परतिय लम्पट कपट सयाने, मोह द्रोह ममता लपटाने' जैसी स्थिति दिखलायी पड़ती है । आर्थिक दृष्टि से विपन्न और अपेक्षया निम्न समझी जानेवाली जातियों के लोग पत्नी आदि के मर जाने पर अपनी अपनी सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ा कर संन्यासी का वेश धारण कर अपनी जीविका चलाते हैं । ब्राह्मणों में भी अनेक लोग अनपढ़, लोभी, कामी, मूर्ख, आचारभ्रष्ट, निम्न जाति की व्याभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं । सन्यासी धन के लालची और विलासपूर्ण जीवन जीने वाले हो गये हैं । कुलीन और सच्चरित्र स्त्रियों को पुरुष घर से निकाल देते हैं और दासी को घर में रख

लेते हैं। पुत्र अपने माता-पिता का सम्मान तभी तक करता है जब तक वह स्त्रीमुख का दर्शन नहीं करता । विवाह हो जाने पर उसे घर से ज्यादा ससुराल ही प्यारी लगती है । अपने कुटुम्बियों को वह शत्रु समझने लगता है । कलिकाल में बार-बार अकाल पड़ता है और लोग अन्न के अभाव में भूखों मरते हैं । मानव धर्म सभी जगह समाप्त हो गया है एवं उसकी जगह केवल 'तामस' धर्म ही दिखाई पड़ता है । मनुष्य सर्वत्र रोग ग्रस्त हैं । कहीं भी सुख नहीं है । बिना कारण ही लोगों में शत्रुता और अभिमान के भाव भर गये हैं । कलिकाल ने सबको बेहाल बना दिया है । जाति-कुजाति सभी लोग 'मँगता' बन गये हैं । सर्वत्र अविवेक और असंतोष दिखायी पड़ता है । ईर्ष्या, कटुवचन, लालच आदि ने सभी जगह विषम स्थिति कर दी है । ममता कहीं नहीं बची है ।[20] इस विवरण से स्पष्ट है कि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में कलिकाल के वर्णन के अन्तर्गत अपने समय की यथार्थ स्थिति का ही वर्णन किया है । 'रामचरितमानस' में ऐसी ही और भी उक्तियाँ रखी जा सकती हैं । यथा --

सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ।।[21]

'कवितावली ' की अनेक उक्तियों में तुलसीदास के निजी जीवन की गरीबी का मार्मिक प्रतिबिम्बन हुआ है । वस्तुतः वे उक्तियाँ केवल तुलसीदास की ही नहीं, वरन समाज में एक बड़े वर्ग की स्थिति का प्रतिबिम्बन करती हैं -- कुत्सित दरिद्रता के कारण लोग दीन और मलिन थे । वस्त्र के नाम पर उनके शरीर पर केवल 'कन्धा' और 'करवा' ही होता था ।[22] भूख से बेहाल लोग 'कूकर-टूकन' के लिए भी ललाते थे ।[23] वैसे लोग लोक रीति छोड़कर 'लँगरई' पर उतर आते थे । उनके लिए पेट की भूख को शान्त करना ही सबसे बड़ा स्वार्थ होता था, पर शायद उसमें भी वे सफल नहीं हो पाते थे, क्योंकि --

चाकरी न आकरी, न खेती न बनिज-भीख,

जानत न कूर कछु कसब कबारू है ।[24]

दरिद्रता, दुर्भिक्ष, दुख, पाप आदि दुगुने वेग से बढ़ रहे थे एवं सुख और सुकृत सब जगह समाप्त हो रहे थे । उस भयानक समय में दबंग लोग डॉट-डपट कर अपना काम करवा लेते थे, पर भले लोगों का हाल बड़ा बुरा था । साधारण लोगों की यथार्थ स्थिति के प्रतिबिम्बन की दृष्टि से वे कवित्त देखे जा सकते हैं जिनमें तुलसी कहते हैं कि श्रमिक, किसान, व्यापारी, भिखारी, भाट, सेवक, चंचल नट, चोर, दूत और बाजीगर सब पेट के लिए ही पढ़ते, अनेक उपाय रचते, पहाड़ों पर चढ़ते और शिकार की खोज में दुर्गम वनों में विचरते हैं । सब लोग पेट के लिए ही ऊँचे-नीचे कर्म तथा धर्म अधर्म करते हैं । यहाँ तक कि लोग अपने बेटा-बेटी तक को बेच देते हैं । वस्तुतः पेट की आग बड़वाग्नि की आग से भी बढ़कर है ।[25] एक अन्य कवित्त में वे कहते हैं कि किसानों की खेती नहीं होती, भिखारियों को भीख नहीं मिलती, बनियों का व्यापार नही चलता ओर नौकरी करने वाले को नौकरी नहीं मिलती । अतः जीविका से हीन होने के कारण सब लोग दुखी और शोक के वशीभूत होकर एक दूसरे से कहते हैं कि 'कहाँ जाये और क्या करें ? कुछ भी नहीं सूझता है । दरिद्रता रूपी रावण ने सारी दुनिया को दबा लिया है ।[26] ऐसी हालत में मात्र कुछ चने चबाकर हाथ चाटने वालों द्वारा दानी हरिश्चन्द्र और दधीचि तक को गालियाँ देना[27] आश्चर्यजनक नहीं माना जायेगा । गरीबी को स्वयं भोगनेवाले तुलसीदास का ह्रदय उस स्थिति से कचोट उठा है --

कलि की कुचलि देखि दिन-दिन दूनी, देव !

पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु है ।[28]

शक्तिसम्पन्न लोग एवं दुष्टजन निर्बलों को सब प्रकार से दमित कर रहे थे । निर्बलों को पीड़ित करने के नये-नये तरीके खोज लिये जाते थे । इसका संकेत तुलसीदास ने किया है --

(क) त्रिबिध एक बिधि प्रभु-अनुग अवसर काहिं कुठार ।

सूधे टेड़े, सम-विषम, सब महँ बारहबाट ।।[29]

(ख) राजा-रंक रागी औ बिरागी, भूरिभागी, ये

अभागी जीव जरत, प्रभात कलि बाम को ।।[30]

सामाजिक जीवन में शत्रुता बढ़ रही थी । पारिवारिक जीवन में भी विषमता और विघटन के लक्षण दिखायी पड़ रहे थे । दोनों कवियों की रचनाओं में इस गम्भीर विषय पर स्वभाविक चिन्ता व्यक्त की है । विष्णुदास का 'महाभारत' तो इसका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

दोनों कवियों द्वारा वर्णित साधारण जन की विपन्नता कल्पना पर आधारित नहीं है । अकबर पूर्व के शासकों के समय की कौन कहे, स्वयं अकबर के समय भी प्रजा बेहाल थी । इसका उल्लेख इतिहासकारों ने भी किया है । इतिहासकारों ने सन् 1556 ई. में उत्तरभारत, 1573-74 में गुजरात और 1595-98 में सारे भारत में पड़े अकाल का ब्यौरा प्रस्तुत किया है । अंतिम अकाल में तो आदमी, आदमी तक को खा जाता था । तुलसीदास ने अकाल का नहीं, काशी की महामारी को भी भोगा था । यह भी एक कारण है कि तुलसीदास ने सुख और प्रसन्नता की अभिव्यक्त के लिए "जैसे गरीब को संपत्ति मिल जाय" की आलंकारिक आवृत्ति केवल 'रामचरितमानस' में ही बीस से भी अधिक स्थलों पर की है। उस पर भी 'खल' अर्थात् राजाओं, सामंतों, राज्यकर्मचारियों के संगठित स्वार्थी समूह अपनी भोग लिप्सा और विलासिता के लिए प्रजा पर सब प्रकार के अत्याचार कर रहे थे। वे मोटे तौर पर परद्रोही, परनिंदक, परमअपवाद और परदारारत थे ही, परसम्पत्ति को देखकर जलनेवाले, निर्दयी, कपटी एवं अत्याचारी थे । वे 'शिश्नोदरी' वृत्तिवाले थे । लोभ ही उनका ओढ़ना-बिछाना था तथा झूठ ही उनका लेना-देना भोजन था ।[31] डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने अनुमान किया है कि मानों तुलसीदास ने "तत्कालीन सामंतीय समाज के

सत्ताधारी वर्ग और स्वार्थी समूहों की सामान्य प्रवृत्तियों को 'खल' या दुष्ट या असाधु के चरित्र में केन्द्रीभूत कर दिया है ।''[32]

मध्यकालीन समाज के लोगों को तुलसीदास ने कई ढंग से वर्गीकृत भी किया है। उनके अनुसार औचित्य-अनौचित्य के आधार पर दो वर्ग के लोग थे -- अच्छे और बुरे अर्थात् संत और असंत या खल । गुण को सुननेवाले संत और उसे नहीं सुननेवाले खल कहे गये हैं ।[33] उन्होंने मनुष्य को तीन रूपों में देखा पाटल की तरह केवल फूल देने वाले, आम की तरह फूल और फल दोनों देने वाले और कटहल की तरह केवल फल देने वाले। अर्थात् समाज में कुछ लोग केवल कहने वाले होते है, कुछ दूसरे लोग कहने के साथ ही करने वाले भी होते हैं और कुछ लोग केवल करनेवाले होते हैं, वे कुछ कहते नहीं है । धार्मिक दृष्टि से भी तुलसीदास ने विषयी, साधक और सिद्ध अर्थात् तीन प्रकार के ही मनुष्यों की गणना की है, किन्तु विभिन्न सामाजिक समूह अनेक थे ।[34] संक्षेप में यह कहना असार्थक नहीं लगता कि अकबरकालीन समाज के आर्थिक इतिहास का प्रशासकीय पक्ष यदि टोडरमल ने प्रस्तुत किया था तो तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में उसके सामाजिक अन्तर्क्रियाओं वाले पक्ष को सटीक रूप में प्रतिबिम्बित किया है ।

5. ख. II नारी

विष्णुदास और तुलसीदास की कृतियों में नारी का अंकन एवं तत्सम्बन्धी विचार दो दृष्टियों से हुआ है -- वैष्णव भक्त की दृष्टि से और सामाजिक व्यक्ति की दृष्टि से । परिणामतः एक ओर नारी का अंकन जहाँ माया के विविध रूपों - काम, मोह, मान आदि को प्रत्यक्ष करता है, वहीं दूसरी ओर उसके विविध सामाजिक सम्बन्धों-माता, पत्नी, वधू आदि को प्रतिबिम्बित करता हैं । विष्णुदास की रचनाओं में नारी के प्रथम रूप का अंकन प्रायः नहीं के बराबर हुआ है, पर तुलसीदास ने नारी के अविद्या माया रूप का वर्णन अपेक्षित विस्तार से किया है । सम्भवतः इसी कारण, उनके प्रसंगानुरूप कथनों पर ध्यान

नही देते हुए, सपाट रूप में उन्हें नारी-निंदक तक कहा जाता है । यह ठीक है कि 'माया रूपी नारी' जब विश्व में रूप धारण कर प्रकट होती है 'नारि विश्व माया प्रकट' -- तो वह त्रिगुणात्मिका होती है । उसमें विद्या और अविद्या दोनों रूप होते हैं । पहले रूप में वह मानव अथवा भक्त की सहायता करनेवाली होती है ।[35] दूसरे रूप में वामाचरिता[36] जिसके काम, क्रोध आदि सेनानी होते हैं ।[37] भक्त तुलसीदास ने 'मायारूपी नारि' की ही पदे-पदे निंदा की है । उसके विपरीत नारी के पारिवारिक सामाजिक सम्बन्धो पर उनकी दृष्टि प्रायः यथार्थपरक मानी जाती है, यहीं उचित निष्कर्ष भी है ।

नारी के वर्णन में दोनों कवियों ने नारी सौन्दर्य का भी वर्णन किया है । विष्णुदास ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन इसी कारण नहीं किया है क्योंकि --

कवि जन हँसै पाप बहु होइ । तातै बरनन करतु न लोइ ।।
इक बालक देवी अवतारू । कैसै कहि बरनौं सिंगारू ।।

-- रामायन कथा, पृ. 11/118

उसके विपरीत 'महाभारत' में उसने द्रौपदी के सौन्दर्य का अतीव विस्तार से वर्णन किया है। यथा --

द्रोवे कुवरि करें सिंगारू । कसि कंचू उर मौतिनि हारू ।
अति रातौ दछिन कौ चीरू । मानहु भीज्यो दूध सिंदूरू ।।
लहरे केसु गुहैं पट्टियारा । दुतिया ससिहरू उवौ लिलारा ।
बैनी-दंडु तिसौ सोहंतू । कनकु-खंभ जनु नागु चढंतू ।।
ऊँची नाक आहि तिहि तूला । जनु बनहेले तिल कौ फूला ।
ता कपोल सौनै की बानी । उपजी मनहु कनक की खानी ।।
कारी भोंह बिसारे नेंना । ससिहर तेज ति बरनें बेंना ।
मधुर बचन जनु आहि मलाई । परिमलु होइ जबहि बिहिसाई ।।

तासु अधर जनु सुरंग पवारी । हाथ जनिकु ते कूँ कूँ वारी ।
नख निर्मल नान्ही अंगुरिया । ता कुच करनि जनिकु मुंदरिया ।।
जनु ऊपर द्वै भंवर बईठे । बोलें बचन सुहाए मीठे ।
झीन लंकु ता मूठि समाई । गहरी नाभि न बरनी जाई ।।
त्रिबली रेखति सोहति तीनीं । मानहु काम नसैंनी दीनीं ।
तासु नितंब आहि तिहि तूला । जंघा जनुकु कदलि के मूला ।।
मुरूवा पिंडुरी अति अविचारा । अंगूरी चरन अधिक सुकुमारा ।
तरवा गडइ जाइ के फूला । सोंहे चलत हंस के तूला ।।
नेवर स्वादु करहि झनकारा । रिखि मोहहि जौ करहि सिंगारा ।
कटिबरू तासु कस्यौ कंचुरिया । बिच-बिच सुबरन मनिया भरिया ।।
गोरें पट ज्यौं सुबरन-सरिया । तिन मह जोति करै संकरिया ।
कर कंकन गज मौतिन जरिया । सोहहि अधिकु बनी मुंदरिया ।।
कीने तिलकु बरन बहुब भती । और नारि मनु हरैं हसंती ।
सरल द्रिष्टि मन कपटु न जानें । चाहत मनहु मदन सर तानें ।।
ना ता गोतु पिता महतारी । होंम कुंड तें उपजी नारी ।
लखिन बतीस रूप-गुन सारी । द्रुपद राइ ग्रह भई कुंवारी ।।

महाभारत, पृ. 43-45/14-25

तुलसीदास ने सीता के सौंदर्य का वर्णन संक्षेप में किन्तु बड़ी शालीनता से किया है । उनके अनुसार --

सिय सोभा नहि जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ।।
उपमा सकल मोहि लघु लागीं । प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ।।

रामचरितमानस - 1/246/1

वे मानते हैं कि -- "सब उपमा कवि रहेउ जुठारी, केहि पट ढरउँ विदेह कुमारी ।"

इस आलोचना से स्पष्ट होता है कि यद्यपि तुलसीदास ने सीता सौन्दर्य वर्णन को विस्तार नहीं दिया है, पर थोड़े में ही सब कुछ कह दिया है । बहुत सारी पंक्तियों में भी विष्णुदास ने यह कह कर वह सफलता नहीं पायी है जो तुलसीदास ने कुछ पंक्तियों में कह कर प्राप्त कर लिया है । नारी सौन्दर्य के अंकन में भी तुलसीदास विष्णुदास से बीस पड़ते हैं ।

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने नारियों के पातिव्रत पर सर्वाधिक बल दिया है । पातिव्रत होना नारी की मर्यादा का सर्वोत्तम मानदण्ड दोनों ने स्वीकार किया है । दोनों की कृतियों में पातिव्रत को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाना इसी का उदाहरण प्रस्तुत करता है-

विष्णुदास :

1. छिन तुम बिन जा जीवहि जोई । सो तिवई कौ धरमु न होइ ।।[38]

2. पुनि जो पतिव्रतु पालति सोइ । करम पाप ता त्रिय नहिं होइ ।।[39]

तुलसीदास :

1. सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
   जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ।।[40]

2. जौं मन बच क्रम मम उर माहीं । तजि रघुबीर आन गति नाहीं ।
   तौ कृसानु सब कै गति जाना । मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ।।[41]

विष्णुदास ने कुंती, सुभद्रा, द्रौपदी के जो भी चित्र अंकित किये हैं, वे सब इसी के आदर्श है । विष्णुदास और तुलसीदास ने 'रामायन कथा' एवं 'रामचरितमानस' में सीता मन्दोदरी आदि को आदर्श पातिव्रता के रूप में ही उपस्थित किया है । दोनों कवियों ने नारी के विभिन्न रूपों को रूपायित करते हुए स्वभाव से कोमल, पतिधर्म परायण, अबला,

कोमलांगी, ममता एवं स्नेह की मधुर मूर्ति, कुटुम्ब के ललाट पर तिलक स्वरूप नारी को स्वीकार किया है । वे ही प्रतिकूल समय में कठोरहृदया, कुलकलंकिनी, मायारूपिणी, चंचला, पतिता, विवशा आदि रूपों में भी अंकित हुई हैं, किन्तु दोनों ने महत्त्व दिया है पतिव्रताओं को ही । विष्णुदास की घोषणा है -- "जौ साँई को कह्यौ न कीजै, कहै नारि तो नरक परीजै ।"[42]

सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर दोनों कवियों ने नारी को माता, पत्नी, पुत्री, सास-बहू, स्वामिनी आदि रूपों में प्रायः समान रूप में ही अंकित किया है, पर 'रामायन कथा' और 'महाभारत' की तुलना में 'रामचरितमानस' में अंकित चित्र अधिक उत्तम बने हैं। 'महाभारत' में विष्णुदास ने वनवास काल में पाण्डव-पत्नी द्रौपदी के चित्र, वनवासी राम-पत्नी सीता के चित्र की अपेक्षा अधिक यथार्थपरक हो सके हैं । उनका कथन है कि जो स्त्री पति की भक्ति नहीं करती, उसके द्वारा किये गये सभी व्रत अकारथ होते हैं --

सब ब्रत नारि अकारथ करहीं,
पुरुष भगति जे हिये न धरहीं । महाभारत, 10/100

यों वनवास में पति-पत्नी के पारस्परिक सहयोग के चित्र 'रामचरितमानस' और 'रामायन कथा' दोनों में समान प्रकार से ही अंकित हुए हैं, पर तुलसीदास ने उसके अंकन में जैसी सफलता पायी है, विष्णुदास उससे चूक गये हैं । इस दृष्टि से 'पंचवटी-निवास' और 'चित्रकूट-निवास' में वर्णित तुलसीदास की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं --

क. कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ।

ख. एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज का भूषण राम बनाए ।
सीताहिं पहिराये प्रभु सादर । वैसे फटिक सिला पर सुन्दर ।

ग. राम लषन सीता सहित सोहत परम निकेत ।
जिमिवासव बम अमरपुर सची जयंत समेत ।।

आलोच्य कवियों के समय नारियों की स्थिति दयनीय थी, उसकी पुष्टि दोनों की रचनाओं में वर्णित विविध प्रसंगों में प्राप्त उक्तियों से होती है । नारी का भोग्या रूप अधिक प्रमुख हो गया था । कामवश लोग कुमारियों तक को चिकनी-चुपड़ी बातों से अपना बना लेते थे । वैसी स्थिति में उनका खास तर्क होता था कि संभोग करना पाप नहीं है । माता-पिता को गर्भधारण का पता नहीं चलेगा --

जब रवि जानी कोंति कुवारी । तब दिनयर समुझाई नारी ।।

करि संभोगु न ह्वैहै पापू । गर्भु न लखिहैं माई-बापू ।[43]

और तिस पर भी यदि कुमारियाँ संभोग हेतु प्रस्तुत नहीं होतीं तो वे उन्हें दण्डित करने से भी नहीं चूकते । वैसी स्थिति में कुवारियाँ उन्हें अपने को सौंप देती । सूर्य और कुन्ती के प्रसंग की उक्तियाँ उसी का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं --

अबहि न आयौ मानति मोहीं । वोड़हि छोरि सरापहुँ तोही ।

डरपि कुवरि रम्यौ जब भानू । कोंति कुंवरि कौं रहयो अघानू ।।[44]

उस समय -शिश्नोदरी' समाज में शासक विलासी हो गया था । अभागिनी स्त्रियाँ एवं परकीयाएँ पराये पुरुषों का सेवन करती थी । तुलसीदास की कतिपय पंक्तियाँ इस दृष्टि से देखी जा सकती है --

क. नारि बिबश नर सकल गोसाईं ।

नाचहि नर मर्कट की नाईं ।। -- रामचरितमानस 7/98/1

ख. गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी ।

भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ।। -- रामचरितमानस - 7/98/2

शायद इसी कारण इस युग में नारियों की स्वतंत्रता समाज को मान्य नहीं थी । तुलसीदास को नारी-निंदक घोषित करनेवाले शायद यह भूल जाते हैं कि उन्होंने प्रसंगानुसार पुरुषों पर भी वैसी ही उक्तियाँ की हैं । पुरुष स्वभाव की निकृष्टता के अनेक

कथन तुलसीदास ने किये हैं । यथा --

क. सरिस स्वान मधवान जुवानु । -- रामचरितमानस - 2/301/4

ख. कलिकाल बिहाल किये मनुजा ।

नहिं मानत कवौ अनुजा-तनुजा -- रामचरितमानस 7/101/3

तुलसीदास की नारी विषयक उक्तियों की शोधपरक समीक्षा करते हुए ज्ञानवती त्रिवेदी ने स्पष्ट मत दिया है कि -- "तुलसीदास एक विरल संत थे । प्रसिद्ध है कि पत्नी की भर्त्सना के कारण ही उन्हें विराग हुआ था । इसी के आधार पर उनकी उन उक्तियों को नारी के प्रति उनकी हेय दृष्टि का परिणाम मात्र उन्हें नारी निन्दक ठहरा दिया गया । जो चल पड़ा, सो चल पड़ा । उसकी छानबीन की अधिक आवश्यकता नहीं समझी गयी । तुलसीदास के नारी-निन्दक समझे जाने का यही रहस्य है । अन्यथा हमारे विचार से तो नारी जाति को जितने ऊँचे आसन पर उन्होंने प्रतिष्ठित किया और जो पूज्य दृष्टि से देखने की शिक्षा समाज को दी, उनका कृतज्ञ होना चाहिए ।"[45] तत्कालीन नार्यासक्त समाज की विषमताओं को दूर करने के लिए तुलसी ने नारी विषयक कटूक्तियाँ कही है एवं नारी को ही नारी के सुखों का हनन करने वाली बताया है ।

विष्णुदास की नारी विषयक उक्तियाँ अपेक्षया कम हैं । उनकी धारणाएँ भी तुलसीदास की तरह व्यापक नहीं हैं । 'रामायन कथा' एवं 'महाभारत' में नारी चरित्रों के चित्रण के माध्यम से ही उन्होंने थोड़ी बातें कही हैं । या नारी रूप को स्थापित किया है । कैकेयी, मंथरा, शूर्पणखा आदि के माध्यम से उन्होंने नारी सुलभ दुर्बलताओं को उभारा है। विराट नगर की महारानी सुदेष्णा के यहाँ द्रौपदी सैरिन्ध्री बन कर रहती है । सुदेष्णा का भाई कीचक द्रौपदी पर आसक्त होकर अपनी बहन से सैरिन्ध्री को अपने पास भेजने को कहता है । उस पर सुदेष्णा ने उसे अनेक उदाहरण देकर समझाने का प्रयत्न किया है।[46] पर वह एक नहीं सुनता । रानी उसे पुकारती है--

रानी कहै ढीठु बौरानों । मुखु फाटें बोलै अगरानों ।

जौ न पराई नारि लहीजै । तौ कयों मानु-परेखौ कीजै ।[47]

यहाँ विराट पत्नी सुदेष्णा का चरित्र बड़े उत्तम रूप में उभारा गया है । उसके विपरीत मंथरा परिवार में कुचक्र का बीजवपन करती है --

पेट पैठि उन लीनौ राज । बहुत तिहारौ भयौ अकाज ।

स्वामिनि धर्म लागि सिख देइ । कौसिल्या आधीन न होइ ।।[48]

और कैकेयी के कठोर स्वभाव पर दशरथ की टिप्पणी है --

तू भुजंगि वाचा मोहि डसी । काकी सीख कुमति मन बसी ।।[49]

यह ध्यान देने योग्य है कि त्रिया-चरित्र के माया जाल में दशरथ को प्राणोत्सर्ग करना पड़ता है । तुलसीदास ने नारी चरित्र को उजागर करते हुए दशरथ से कहलवाया है --

कवने अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्बास ।

जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास ।।[50]

कतिपय स्थलों पर नारी-चित्रण में तुलसीदास निश्चय ही अधिक अनुदार हो गये हैं। शूर्पणखा द्वारा प्रणय-प्रस्ताव रखे जाने पर उनकी टिप्पणी उनके संत रूप को अग्रसारित करती है--

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।

होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ।[51]

विष्णुदास ने नारी वर्ग की इतनी कड़ी टिप्पणी कहीं भी नहीं की है । अन्यों की क्या कही जाय, तुलसी का रावण भी नारी की निंदा करता है ।[52] तपस्विनी शबरी स्वयं नारी होकर भी नारी को अति नीच मानती है --

अधम तें अधम अधम अति नारी ।   -- रामचरितमानस - 3/34/2

वस्तुतः नारी अंकन का यह एक पक्ष है जो उनकी पतनावस्था का उल्लेख

करता है, पर दूसरा पक्ष भी है जिसमें आलोच्य कवियों ने नारी को शक्तिरूपा स्वीकार किया है । नारी के उस पक्ष पर भी विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास का ध्यान अधिक टिका है । वस्तुतः सामाजिक जीवन में नारी की अनिवार्यता सब प्रकार से आवश्यक मानी गयी है --

धर्म-नेम-तप-तीरथ-न्हानू । त्रिय बिनु पुरुष होइ अपमानू ।

त्रिय बिनु राज भोग सब सूनू । त्रिय बिन होय न होम न पूनू ।।[53]

5. ग. II गुरू

समाज में गुरू का महत्त्व सदा आदरणीय रहा है । संतों और भक्तों ने अपनी रचनाओं में गुरू को विशेष स्थान और महत्त्व प्रदान किया है । आलोच्य कवियों में विष्णुदास ने अपनी रचनाओं में सुन्दरनाथ का उल्लेख दीक्षागुरू के रूप में किया है --

क. सहज नामु उत्तम गोविंद । पाप पहारनि करत निकंद ।।

सुंदरनाथ पास लई दक्ष्या । हरत परत सब पातक रक्या।।

भूत भविष्य मान जो रहै । निसदिन जा कहँ अवगत रहैं ।।

तैसी समरथ सृष्टि दूसरी । ता सिष विष्नुदास कवि करी ।।[54]

ख. ता गुरु चरन सीसु हों धरऊँ । पान-फूल बहु सेवा करऊँ ।।

पुनि पनऊँ ब्रह्मा हरि ईसू । गंगा चरन बढै ता सीसू ।।[55]

विष्णुदास ने सहजनाथ का भी उल्लेख किया है ।[56] वे विष्णुदास के गुरू नहीं, वरन गोपाचल की नाथ गद्दी के संस्थापक गुरू थे । वे गुरू और विप्रों की सेवा कर, उनकी स्तुति कर उनसे आशीर्वाद पाकर ही महाभारत की रचना करते हैं । 'रामायन कथा' की रचना करने के पूर्व उन्होंने अपने गुरू, अपने उक्त परम्परा के आदि गुरू की वंदना की है । इससे विदित है कि वे काव्य रचना के लिए गुरू की कृपा और आशीर्वाद को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं ।

तुलसीदास ने अपने गुरू का प्रत्यक्षनामोल्लेख नहीं किया है । अनुमान किया गया है कि उनके गुरू 'नररूपहरि' अर्थात् नरहर्यानंद होंगे । 'रामचरितमानस' के आरंभ में मंगलाचरण के पश्चात् तुलसीदास ने सर्वप्रथम गुरू की विस्तृत एवं भावपूर्ण वंदना की है। उनके गुरू कृपा के समुद्र नररूप में श्री हरि ही हैं जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समूह हैं । वे मानते हैं कि गुरू के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है जिसका स्मरण करते ही ह्रदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है । ह्रदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं एवं संसार रूपी रात के दोष-दुख मिट जाते हैं । साथ ही रामचरित्र रूपी मणि-मणिक्य से सब स्पष्ट दिखायी पड़ने लगते हैं। तुलसीदास के अनुसार गुरू का महत्त्व इतना अधिक है कि उनकी कृपा के बिना ब्रह्मा और शंकर के समान लोग भी संसार को पार नहीं कर सकते ।

गुरू बिनु भवनिधि तरै न कोई ।
जो विरंचि संकर सम होई

वे मानते हैं कि ब्रह्मा के कुपित होने पर भी गुरू रक्षा करता है, पर गुरू के क्रुद्ध होने पर शिष्य की रक्षा कोई नहीं कर पाता ।

राखे गुरू जो कोप विधाता ।
गुरू विरोध नहिं कोउ जगत्राता ।।

इसी कारण राम भक्ति की चौदह भूमिकाओं में एक गुरू सेवा को भी तुलसीदास ने महत्वपूर्ण माना है । इस विवेचन से विदित होता है कि गुरू का महत्त्व यद्यपि विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने स्वीकार किया है, तथापि तुलसीदास के गुरू विषयक विचार अधिक प्रशस्त और महत्वपूर्ण हैं । विष्णुदास में वैसे कथन नही हुए हैं । गुरू-शिष्य संबंधों में गुरू के प्रति शिष्य की आज्ञाकारिता, सेवाभाव, गुरू-कृपा से दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के साथ ही भाग्य-परिवर्तन के भी उल्लेख हुए हैं । तुलसीदास ने सच्चे

गुरू की जितनी प्रशंसा की है, खोटे और लोभी गुरूओं की उन्होंने पूरी खबर भी ली है । शिष्यों की शंकाओं का समाधान नहीं करनेवाले एवं शिष्यों से दक्षिणा लेने वाले गुरूओं की तुलसीदास ने घोर निंदा की है --

हरइ शिष्य धन सोक न हरई,

सो गुरू घोर नरक महँ परई ।।

और कहना नहीं होगा कि उस काल में ऐसे ढोंगी-गुरूओं की समाज में कमी नहीं होगी ।

5. घ II दैनन्दिन उपकरण

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में दैनन्दिन व्यवहार में आनेवाली विभिन्न वस्तुएँ भी उल्लिखित हुई हैं । विभिन्न प्रसंगों में भोजन सामग्री के साथ ही रोज दैनिक उपयोग में आनेवाली सौन्दर्य-प्रसाधन की वस्तुएँ भी यत्र-तत्र उल्लिखित हो गयी हैं। घरेलू उपकरणों में मिट्टी-निर्मित विभिन्न भाण्ड[57], सोना-चाँदी के थाल और कलश आदि[58], सौन्दर्य-प्रसाधन की वस्तुओं में फूल, चंदन, कस्तूरी, अगरू[59] आदि के नाम मिलते हैं। आवगमन के लिए राजे-राजवर्ग, सामन्त आदि हाथी, घोड़े आदि वाहनों का प्रयोग करते थे।[60] रथों एवं दिव्य रथों के भी उल्लेख मिलते हैं ।[61] लंका विजय के पश्चात राम अपने पक्ष के लोगों के साथ 'पुष्पक विमान' से अयोध्या लौटते हैं, विमान का उपयोग देवता लोग ही वाहन के रूप में करते हुए वर्णित हुए । सामन्त घर की महिलाएँ डोली या पालकी का व्यवहार वाहन रूप में करती थी ।[62] दैनिक उपयोग की वस्तुओं में पुरुषों और स्त्रियों के परिधान भी उल्लिखित हुए हैं । इनकी चर्चा आगे यथास्थान की जायेगी।

दैनिक उपयोग की वस्तुओं में घर अर्थात् निवास स्थान का विशेष महत्त्व है । मानवीय निवासों में विष्णुदास और तुलसीदास की दृष्टि मुख्यतः नगरों ओर राजमहलों पर ही गयी है । गाँवों और सामान्यजन के घरों की ओर उनकी दृष्टि गयी ही नहीं है । ऐसा अनुमान करना गलत नही होगा कि विष्णुदास और तुलसीदास द्वारा वर्णित हस्तिनापुर,

इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या, जनकपुर, लंका आदि के वर्णनों में तत्युगीन वास्तुकला- उत्तरमध्ययुग में निर्मित आलीशान किले, मकबरे एवं तोमर राजाओं द्वारा निर्मित भव्य मन्दिरों और प्रासादों आदि की प्रच्छाया है । उस दृष्टि से यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है ।

विष्णुदास :

क. कोलाहल सुनियौ बलबीर । जनु धनु गाजत भादँव नीर ।।
रतन जोति दीसहि चौपास । मनहु बीजु चमकति आकास ।।
जोजन तीस तासु चकराई । सौ जोजन देखिये ऊँचाई ।
तिहि ठां बिसकर्मा निर्मई । नामु लंक इक सोबरन मई ।।
लामी साठ कोस की धाप । जोजन तीन चाकरी मापि ।।
पुरी बसति इतनै परमान । स्वर्ण कुआ बावरी निवन ।।
इक सोवर्न सीस कौ कोट । कनै पगारति घर घर वोट ।।
सुवरन मंदिर अगनित लाख । चहुँ दिसि दिसिहिं ध्वजा पताख ।।
उच्च पौरि ता धौरे गेह । दीसहिं मनौ सरद के मेह ।।
सुबरन तोरन बंदन वार । जनु चमकति बीजूरी अकार ।।
तरवर बर्न चित्रु लेखियौ । बहुत बर्न हय गय पेखियों ।।
ऊँची छतुरीं लागीं गयनि । सूझत नहीं तहाँ दिन रयनि ।।
सवा लाख मंदिर परधान । लोगनि की को संख्या जान ।।
सब मंदिर दीसहिं सत खनै । घर ही घर पेयल पेखनै ।।[63]

ख. बहुत भाँति के खांभ उकीरे । बिचह सेत बिच कारे पीरे ।
राते लीले हरे बहूता । सबै खंभ दीसैं इकसूता ।।
चित्र कराए बहुत असंखी । चित्रे बनचर सावज पंखी ।
हिरनकुसह धरे हेरेंना । ते सब आने मंदिल देंना ।।

दैयत असुर संग जे आए । ति घर देव साधे सोंराए ।
खुभी-खझारू-कमल बहु सोहें । सभा-सरोवर मुनियर मोहें ।।
झलहलंत जहं दीसै नीरू । तहां चलत भीजै न सरीरू ।
जलचर पंछी दीसै छाए । तामह पंखि न उड़ै उड़ाए ।।
जनु काटे जहहै कुम्हिलाई । तरवर-बारी असुर सिराई ।
रितु बसंत नंदन बन तूला । तैसे पीरे दीसहि फूला ।।
एकु अचंभौ है असमाना । होइ बयारि न हालहि पाना ।
देखि चित्रु आनंद्यौ राऊ । मुहर सहस दस सौंपे ताहू ।।[64]

तुलसीदास :

क. मनि दीप राजहिं भव भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची ।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची ।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रूचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।।[65]

ख. बनइ न बरत नगर निकाई । जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई ।।
चारू बजारू बिचित्र अँबारी । मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी ।।
धनिक बनिक बर धनद समाना । बैठे सकल बस्तु लै नाना ।।
चौहट सुंदर गली सुहाई । संतत रहहिं सुगंध सिंचाई ।।
मंगलमय मंदिर सब केरे । चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें ।।
पुर नर नारि सुभग सुचि संता । धरमसील ग्यानी गुनवंता ।।
अति अनूप जहँ जनक निवासू । बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासु ।।
होत यकित चित कोट बिलोकी । सकल भुवन सोभा जनु रोकी ।।
धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति ।

सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति ।।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा । भूप भीर वट मागध भाटा ।।

बनी बिसाल बाजि गज साला । हय गय रथ संकुल सब काला ।।

सुर सचिव सेनप बहुतेरे । नृपगृह सरिस सदन सब केरे ।।

पुर बाहेर सर सरित समीपा । उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ।।[66]

प्रायः इससे मिलते-जुलते वर्णन ही अन्यत्र प्राप्त होते हैं । तुलसीदास ने 'चारू चित्रसाला गृह-गृह प्रति लिखे बनाई'[67] और विष्णुदास ने 'ऊँचे मंदिर कोट पगार । कंचन कलसु जु सोहित द्वारा'[68] जैसे कथन अनेकत्र किये हैं । राजमहलों, सभा-भवनों, नगरों के ऐसे भव्य वर्णनों से यह समझना सरासर गलत होगा कि भारत की जनता के घर या ग्रामीण घर भी ऐसे होंगे । वस्तुतः आज भी भारत के अधिकांश गाँव और वहाँ के घर मिट्टी निर्मित और खर-पात से छाये हुए हैं । निश्चय ही आश्चर्य का विषय है कि इन कवियों का ध्यान उस ओर एक दम नहीं गया है । ऋषि मुनियों एवं वनवासियों के वर्णनों में बाँस-बेंत निर्मित पर्ण कुटीरों के संकेत हुए हैं । मनुष्यों के घर या तो गाँवों में होते थे या नगरों में । गाँव का वर्णन तो आलोच्य कवियों में से किसी ने नहीं किया है, पर नगर-निवेश के वर्णन हुए हैं । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों की कृतियों में वास्तुकला के उदाहरण स्वरूप अयोध्या, जनकपुर, लंका आदि के वर्णन देखे जा सकते हैं । 'रामायन कथा' में अयोध्या का वर्णन आरंभ में ही हुआ हैं । विष्णुदास के अयोध्या वर्णन का उद्देश्य राजधानी के प्रकृत रूप से परिचय कराना है --

सरजू सरित अजुध्या पुरी । सो विसकर्मा आपुन करी ।

बारह जोजन बसति लँबाई । तितनै फेर फिरी चौंराई ।

ऊँचे मन्दिर कोट पगार । कंचन कलसु जु साहित द्वार ।

बहुत बाग मठ सर बाउरी । कुवा निवाननि सोभित पुरी ।

ठाँ ठाँ बिप्रु जू कहत पुरान । करहि अखारौ वीर सुजान ।

ठाँ ठाँ नट नाटक पेखने । जोगी जती सती तहं घनै ।

पूजा बहु देवनि की होई । प्रति घर धर्म करै तिय लोइ ।

गज रथ साहन तुरग भंडारू । बढ्यौ राज सुरपति आकारू ।

रामायन कथा - 2/15-19

लंका में प्रवेश कर हनुमान ने नगर को जिस रूप से देखा, वह भी नगर-वर्णन का उत्तम उदाहरण बना है । यथा --

कोलाहल सुनियों बलवीर । जनु घनु गाजत भादँव नीर ।

रतन जोति दीसहि चौपास । मनहु बीजु चकमति आकास ।

जोजन तीस तासु चकराई । सौ जोजन देखिये ऊँचाई ।

तिहि ठां विसकर्मा निर्मई । नामु लंक इक सोबरन मई ।

लागी साठ कोस की धाप । जोजन तीन चाकरी मापि ।

पुरी बसति इतनै परमान । स्वर्ण कुआ बावरी निवान ।

इक सोवर्न सीस कौ कोट । कर्ने पगारति घर घर वोट ।

सुवरन मंदिर अगनित लाख । चहु दिसि दिसिहिं ध्वजा पताख ।

उच्च पौरि ता धौरे गेह । दीसहिं मनौ सरद के मेह ।

सुबरन तोरन बंदन वार । जनु चमकति बीजूरी अकार ।

तरवर बर्न चित्रु लेखियौ । बहुत बर्न हय गय पेखियौ ।

ऊँची छतुरी लागी गयनि । सूझत नहीं तहाँ दिन रयनि ।

सवा लाख मंदिर परधान । लोगनि की को संख्या जान ।

सब मंदिर दीसहिं सत खनै । घर ही घर पेमल पेखनै ।

काहल ताल पखावज बीन । रहहिं ते पंच सबद मिलि लीन ।

किंकिनि सादु होई झुनकार । जनु बोलहिं रावन जैकार ।
गिरिवर ऊपर सोहति पुरी । नाह उछंग जनकु सुंदरी ।
हनू वीर मन विसमय भयौ । उद्दिम नृफल हमारौ गयौ ।।

रामायन - कथा - 93/31-40

तुलसीदास ने रामराज्य की स्थापना के पश्चात अयोध्या का सुन्दर वर्णन किया है । वर्णन इतना स्वाभाविक है कि पाठक को अनायास ऐसा भ्रम होता है, मानों वह नगर के मध्य ही कही खड़ा है । यथा --

जातरूप मनि रचित अटारी । नाना रंग रूचिर गच ढारीं ।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर । रचे कँगूरा रंग रंग बर ।।
नव ग्रह निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमरावति आई ।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा । जो बिलाकि मुनिबर मन नाचा ।।
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत ।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं
मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची ।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची ।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रूचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।।
चारू चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ ।।

रामचरितमानस 7/26-27

तदुपरान्त नगर की बाटिका एवं उसमें गुंजार करने वाले पक्षी का आकर्षक वर्णन हुआ है--

सुमन बाटिका सबहिं लगाई । बिबिध भाँति करि जतन बनाई ।।

लता ललित बहु जाति सुहाईं । फूलहिं सदा बसंत कि नाईं ।।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारूत त्रिबिधि सदा बह सुंदर ।।

नाना खग बालकन्हि जिआए । बोलत मधुर उड़ात सुहाए ।।

मोर हंस सारस पारावत । भवननि पर सोभा अति पावत ।।

जहँ तहँ देखहिं निज परिछाही । बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ।।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक । कहहु राम रघुपति जनपालक ।।

राज दुआर सकल बिधि चारू । बीथीं चौहट रूचिर बजारू ।।

रामचरितमानस - 7/27

एवं इसके पश्चात् नगर के निकट प्रवाहित सरयू नदी की छटा भी दर्शनीय है --

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर ।

बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर ।।

दूरि फराक रूचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ।।

पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ।।

राजघट सब बिधि सुंदर बर । मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ।।

तीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर ।।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी । बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ।।

तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ।।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई । बाहेर नगर परम रूचिराई ।।

देखत पुरी अखिल अध भागा । बन उपबन बापिका तड़ागा ।।

बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं ।।

सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ।।

बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुजारहीं ।

आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हकारहीं ।।

रामचरितमानस - 7/28/ छंद

दोनों कवियों ने लंका का वर्णन हनुमान से करवाया है लंका में प्रवेश करने के उपरांत हनुमान ने उसे जिस रूप में देखा उसका वैसा ही वर्णन किया है (रामायन कथा, 93/31-40, रामचरितमानस, 5/छ. 3) । किन्तु दोनों के वर्णन में एक अंतर है । विष्णुदास के वर्णन में कवि-दृष्टि लंका के विस्तार पर टिकी है, पर तुलसीदास के वर्णन में लंका के ऐश्वर्य रूप के साथ ही उसके विकट और भयंकर रूप का भी वर्णन हो गया है। जनकपुर का 'रामायन-कथा' में वर्णन नहीं, उल्लेख भर हुआ है --

गंग उतरि दक्खिन दिसि गए । चलतहिं मिथिलापुरी संभए ।

देखि अचंभौ भयौ कुमारा । ता सम नगर नही संसारा ।।

इस उल्लेख से संकेत होता है कि वह नगर अयोध्या से भी सुन्दर होगा, तभी कुमार द्वय उसे देखकर आश्चर्यचकित होते हैं ; क्योंकि वे कुमार अयोध्या के ही निवासी थे। 'रामचरितमानस' में राम ने जनकपुर को जैसा देखा, उसका कथन इस रूप में हुआ है--

बापीं कूप सरित सर नाना । सलिल सुधासम मनि सोपाना ।।

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा । कूजत कल बहुबरन बिहंगा ।।

बरन बरन बिकसे बनजाता । त्रिबिध समीर सदा सुखदाता ।।

सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास ।

फूलत फलत सुपल्ल्वत सोहत पुर चहुँ पास ।।

बनइ न बरनत नगर निकाई । जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई ।।

चारु बजारु बिचित्र अँबारी । मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी ।।

धनिक बनिक बर धनद समाना । बैठे सकल वस्तु लै नाना ।।

चौहट सुंदर गलीं सुहाई । संतत रहहिं सुगंध सिंचाई ।।
मंगलमय मंदिर सब केरें । चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें ।।
पुर नर नारि सुभग सुचि संता । धरम सील ग्यानी गुनवंता ।।
अति अनूप जहँ जनक निवासू । बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू ।।
होत चकित चित कोट बिलोकी । सकल भुवन सोभा जनु रोकी ।
धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति ।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति
सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा । भूप भीर नट मागध भाटा ।।
बनी बिसाल बाजि गज साला । हय गय रथ संकुल सब काला ।।
सूर सचिव सेनप बहुतेरे । नृपगृह सरिस सदन सब केरे ।।
पुर बाहेर सर सरित समीपा । उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ।।
देखि अनूप एक अँवराई । सब सुपास सब भाँति सुहाई ।।
कौसिक कहेउ मोर मनु माना । इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना ।।

रामचरितमानस - 1/212-213

इस वर्णन में जनकपुर के बाग, सरोवर, कुंज, बावड़ी, पक्षी, गढ़, राजद्वार, हाथी-घोड़े आदि का पर्याप्त संकेत हुआ है । यह तुलसीदास के वर्णन की विशेषता है । इनके अतिरिक्त किष्किन्धा का वर्णन भी दोनों में हुआ है जो संक्षिप्त होने के बावजूद सटीक है । तुलसीदास को चित्रकूट से अधिक लगाव है । अतः उनका चित्रकूट वर्णन अधिक भाव-प्रवण हो सका है । चित्रकूट के प्रति विष्णुदास में तुलसीदास जैसी दुर्बलता नहीं है । तभी वे उसका संक्षिप्त उल्लेख कर कथा को आगे बढ़ा ले जाते हैं ।

5. III प्रकृतिः मानव की सहचरी

प्रकृति मानव की सहचरी और सहयोगिनी मानी गयी है । जीवन में उसका

बड़ा महत्त्व है । सम्भवतः इसी कारण प्राचीन काल से ही मानव घरों के पिछवाड़े में या साथ में बाग लगाने की बात स्वीकृत रही है । गाँवों में भी बाग-बगीचे लगाने का चलन रहा है। इससे फल-फूल, इन्धन आदि की प्राप्ति तो होती ही है, जलवायु को शुद्ध बनाये रखने में इनका अतीव महत्त्व हैं । प्रबन्धात्मक कृतियों में वस्तु वर्णन के रूप में मानव आवास के साथ-साथ प्रकृति वर्णनों के रूप में बाग-बगीचे, वन-पर्वत आदि के वर्णन भी किये जाते रहे हैं । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों की रचनाओं में उसे महत्त्व मिला है । महाभारत और रामाख्यानक आधारित कृतियों में प्रकृति वर्णन का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि रामकथा के विकास का अधिकांश, कम से कम चौदह वर्ष, तो प्रकृति के मध्य नाले, नदियों, पहाड़ों आदि के सानिध्य में बीता था । इसी प्रकार पाण्डवों के जीवन के बारह वर्ष भी वनों आदि में ही बीते थे । प्रकृति का वर्णन किया है दोनों कवियों ने पर दोनों के वर्णनों में विशिष्ट अन्तर हैं । विष्णुदास के वर्णन जहाँ विस्तृत और प्रायः नाम परिगणात्मक हैं, वही तुलसीदास के वर्णन अलंकार के रूप में अधिक हुए हैं । तुलसीदास ने प्रकृति के आलम्बन रूप पर भी दृष्टि टिकायी है, पर वैसे अंश प्रायः कम हैं । 'महाभारत' में विष्णुदास ने खाण्डव-वन-दहन के प्रसंग में उसमें निवास करने वाले पशु-पक्षियों का उल्लेख किया है (महाभारत, पृ. 66/27-33)। इसी प्रकार पाण्डव के वनवास-प्रसंग को आधार बनाकर वन और उसके वृक्षों का विस्तृत वर्णन किया गया है (महाभारत, पृ. 89-90/9-31)। उन्होंने 'रामायन कथा' में किष्किन्धा में प्रवेश करते समय लक्ष्मण द्वारा देखी प्रकृति (रामायन कथा, पृ. 57/2-8) का एवं लंका में अशोक वन का हनुमान द्वारा ध्वंस किये जाते समय उस बाग का (रामायन कथा, पृ. 107/258-263) विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । उनके उदाहरण आगे रखे जाते हैं । यथा --

क. खाण्डव वन-दहन-प्रसंग से --

सर बेधियहि पंखि अंतराला । रहहि ति जरहि अगिनि की ज्वाला ।।

नौरा गोह साल धुसरारा । गेडा डाढहिं करहिं चिकारा ।
चीते चरख डाढारेदार । बँदर गौहदू होहि संघारा ।।
ठाढे कृस्नु पंथु बनु बारहि । डाढहि सावज बहुत चिकारहि ।
सिंघ बाघ बन हिरन सिगारा । रहहिं ति जरहि अगिनि की झारा ।।
गीध सिचातें बाघ कराही । तीतुर हूका परहिं उडाही ।।
पांडुक स्यामा अरू प्रतिहारा । डाढहि गोल्ह चील्ह अनियारा ।।
चटक परेवा अरू कठकूटा । बगरा बाज कुही के बूटा ।
लवा बटेरे फोदन लाटा । लगरा बाज कुरिच के ठाटा ।।
भरदा फेंचा सूवा सारी । हारिल उगति तीन संघारी ।
झाझहिगोचर मोर चकोरा । छापका हूका अरू बडमोरा ।।
महरी लोंगा औरू पतोरी । लेंटी बाटउचाई मोरी ।
दाढहि चमगादर तिहि झारा । उडत बान बेधहि असरारा ।।
बहुतक पंछी पछिनि खारा । बहुत रूखतें उडन न पाए ।।
उडहि ति सर बेधहि अतराला । रहहि ति बरहि आगिनि की ज्वाला ।।
जलचर पंखि धुवां अकुलाने । तेऊ सरवर छाड़ि उड़ानें ।
सारिस हंस बुडेला आरी । उडत हुतासन घालै जारी ।
चकवा सोंना जल कूकरिया । अगिनित भाँति टीटरी जरिया ।
सुरंग पखेरू हते बहूता । तेऊ जरत झार संजूता ।।
पंखी जाति न होहि बखाने । भनै बिश्नु कबि अंतु न जानै ।
तेऊ जरे ति बसते सरवर । उठी अगिनि दौं लागी तरवर ।।

महाभारत - 66/27-33

ख. वन-वर्णन --

दीसहि बर पीपर ति पलासा । नींब केंमला गेता पासा ।

महुआ आम सघन आमिलिया । सरर खजूरि फरहि ते भलिया ।।
बहुत सदाफर कंद बिजौरे । दारयौ दाख बिलेछह जौरे ।
खिरी छुहारी पिंडखजूरी । बन-आँवरी रही भूरिपूरी ।।
सेतौ करहू बहुत गुरदेंनी । बांस भिरे बहु लागें गेंनी ।
साल्है सेंमरि बहुतक न्यारी । बीजौ सीसौ सिरसी कारी ।।
चिरहुल मोखौ अरू पापरिया । बेरि बँबूरू औरू छौकरिया ।
मेंढि कसौध कटाई जांमू । सघन बकाइनि लगे न घांमू ।।
फरियौ बेल मेंनहर तेंदू । बहुतु अकाउच खेंदू सेंदू ।
बहु अखरोट और घूसइरा । ताल तमाल बहेरे हररा ।।
बहुत करील जपि लुवारोरी । धौ धामन अधनीम मकोरी ।
खैरू हिगोटु सिहुरी दीसै । ता बन-खंडह राउ सरीसै ।।
चपल चखीला बेल असंखी । तिहि बन दीसहि सावज पंखी ।
कोंहा ऊमरि काकैसोरी । हरै नारियर घनी मकोरी ।।
हरराचार लोध बनु दीसै । आलि राइसें निलोदु मजीठै ।
असिया बेल सु चिरहुल सौंना । रूप कुमाइ न दीसैं कोना ।।
महुवा सेंमरू सेंहुडु भिंडू । बरूनु लसूरो असिया अंडू ।
तहाँ अकोलु सुहिजनों दीठा । सेंहुडु जामुनि अरू बिरहीटा ।।
अगरू सिरीखँडु धुपकठ रूखा । देखि जँभीरिनि भागै भूखा ।
मोखै पिलुवा पारसुरारू । फिरतिर नगिरी पतरजुगारू ।।
कनयरि नेगडि औरू बसेंदू । रेवजु गूगरू सेंगरू तेंदू ।
सहसौनौ जादूरी बहूता । औरू लीलि जिहि राचहि सूता ।।
अझाझारौ औरू कसोंधी । सांट पवारू धतूरौ महदी ।

जाखि दूधरो औरू लभेरौ । अति घन किरौ करोंदा केरौ ।।
सबल बनै नारंगी भिलाए । पीठौनौ सागौनु सुहाए ।
दुधी पूरना अरू गोखुरूवा । नाहितीपतरू सेंतौ मरूवा ।।
बहुत चिहुटिनी कोंचामारी । दूजी और चिहुटिनी कारी ।
मिलै गिलोइ अरू द्यौदारा । ताके गुनहि लहइ को सारा ।।
जीया औरू गुलाबु ककरिया । बेरि बिना गुनि ह्वै चामलिया ।
तरवर फूटि भरेखी होंई । काटै व्याधि देइ गुनु सोई ।।
पीपरि लोंग मिरच सपतिजिया । खूम्ही चिरहुल मलसिल असिया ।
सेंमि करेछि कंछु कंदूरी । सेंमा सेंमि और बनचूरी ।।
मेंटी दुधी छिरहटा जानों । करहारी बारूनी बखानों ।
चितावारि आथी बनपोई । ढेही सिरफद फूलै सोई ।।
केऊ कंद ककोरनि बेली । सघन रूख ते चटीं करेली ।
पथरसगा गठही के फंदा । बौलसिरीनु सराहि नरिंदा ।।
जाही जुही रू चंपौ खूझौ । बहु कचनारू सरसो बीजौ ।
नाइनि पाडर सुरंग सिंदूरी । कै वे बेसरि कैकुसूरी ।।
बौरसिरी देखी धौरवना । बेलु निवारी बांसौ करना ।
किदा त्योरिया माली मलिया । सरकंडु कनयरू अरू पापरिया ।।
औरू कुसम दीसहि चहुपासा । थाकहि भवर मालती बासा ।
औरों मूल कंद बन दीसा । सबै लोग ता बनह सरीसा ।।
कुरो चिलमिली और धमूरी । बनकुकरा सरखडु सखचूरी ।
तरूवर मूल कंद हे जेते । बढ़े कथा जौ बरनौ तेते ।।

महाभारत - 89-91/9-30

'रामायन कथा' में सुग्रीव के अभिषेक के पश्चात् राम-लक्ष्मण किष्किन्धा की पार्श्ववर्त्ती शोभा का निरीक्षण करते हैं । उस क्रम में वनांचल के साथ ही तड़ाग का भी वर्णन हो गया है । यथा --

सिंघ बाघ गज मृग सार्दूल । दीसहिं बनचर तिहिवन पूर ।
अमृत फर तरवर बन घनै । विष्नुदास पहँजात न गनै ।।
बरनि न जाइ तरूनि की जाति । समुझै नहीं तहाँ दिन राति ।।
ताल झिरन तहँ निर्मल नीर । देखि ठाँउ हरषौंवर वीर ।।
हंस आदि पंक्षी वन माँह । पुरइनि कमल कमोदनि छाँह ।।
चौरी सिल दीसति तिहिं ठाँइ । परम सघन चहूँ दिसि अमराइ ।।
पंछी सबदु होत कलराउ । बनु दीसहि नगरी के भाउ ।।
देख्यौ पर्वतु झिरन निवानु । पर्वत ऊपर लागे जानु ।।
देखीं सिला बहुत चौपास । जनु देवनि निर्मयो अवासु ।।
बिच बिच थूल थंभ आकार । बिच बिच दीसहिं खिरकी बार ।।
चहुंधाँ दीसहिं तिसे समान । मनौ ढरी कंचन के बान ।।
बहुतक बरन चित्र परिगए । जनु बिसकर्मा कर निर्मए ।।
मंद सुगंध बहै चहुँ पास । रंज्यौ राम देखि बन तासु ।।
धनुहरू तूनगुप्त करि धरयौ । तोरे त्रन धालौ संथरौ ।।
जे पावहिं ते बन फल खाहि । सिंघ बाघ गज डर न डराहिं ।।
कबहुक मेघ उसरि निसि गए । विमल अकास तरायन भ्‌ए ।।
भरि किरननि बिस्तरियो ससी । देखि राम मन सीता बसी ।।
मन करमरि उठि बैठयौ राम । ता ससि किरनि लग्यौ जनु धाम ।।
हियराँ भई तिरीछी नारी । धुनै सीस राघव तब भारी ।।

रामायन कथा - 53/1-10

इस वर्णन में ताल के निर्मल नीर, कमल, कुमुदिनी आदि का संकेत हो गया है। ऐसे वर्णनों को आचार्य रामचंद्र शुक्ल "केवल वस्तुओं और व्यापारों की गिनती गिनाना" मानते है । इसकी तुलना में तुलसीदास कृत 'पंपासर-वर्णन' अधिक प्रकृत और उत्तम हो गया है ।

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ।।
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख्खु संजुत जाहिं ।।
बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ।।
बोलत जलकुकुट कलहंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ।।
चक्रबाक बक खग समुदाई । देखत बनइ बरनि नहिं जाई ।।
सुंदर खग गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ।।
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ।।
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ।।
नव पल्लव कुसुमित तरू नाना । चंचरीक पटली कर गाना ।।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ।।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ।।

रामचरितमानस - 3/39-40

वर्षा एवं शरद ऋतुओं के वर्णन दोनों कवियों ने किये हैं, पर इनमें तुलसीदास के वर्णन अलंकार रूप में होकर भी अधिक उत्तम बने हैं । विष्णुदास द्वारा वर्णित अशोक-वन में भी प्रकृति का नाम परिगणात्मक रूप ही मिलता है । यथा --

आम नीम कदंब जामुनि हरर चार करील ।

नाँरगी दाख बहेड़ चिंचिनि बेल बेत जँभीर ।।
गुरदौनि महुआ करह तैंदू आलिलोद मजीठ ।
निसु रावन एक बंदर सब उपारे ढीठ ।।
मेढ़ी सुपारी खिरनि महँदी पापरौ पदमाख ।
नागकेसरि पिंडखर्जूरि बेलु अति घन साख ।।
मैनहर तैंदू धाइ सेहुड बहुत तरूवर बैन ।
निमिष महं तिहि ढीठ बंदर तोरि कीन्हों खेत ।।
रोरी सिहार्रो हंसि केकी खारिकौ सुख रासु ।
देवदारू अपार चंदन नागवेढहि जासु ।।
आँवरे केरि अकाथ बीजौं आम ऊमरि लारि ।
तोरि डोर मूढ बंदर जरैं लई उखारि ।।
खूझौं निवारी जाइ जूही सिंदूरी कचनार ।
बेल बकइनि औ अगस्तिय केतकी सैंहारू ।।
त्यौंरिया पाडर और कनचर केत सेत कनैर ।
होइ रावन देव पूजा जानि कीन्हौं चौंर ।।
जूथौं कुरोल अकोलु पतरज खरहरंत जतेय ।
ढ़ारयौं गन्यारि जसौंध असिया सब उपारयौं बंग ।।
यौत्यों हिंगोडु जु नागकेसरि रायसेनि पतंग ।
एक वीर प्रचंड रावन सब उखारयौं दंग ।।
धौंसर लुलीली चखैंडी कटहर फूल सेनी आक ।
सालै कसौंदी आगरू धूसरल सेमरि लाख ।।
पीलू बकाइनि रकत चंदन सघन पेड़ खजूरि ।

हमहिं देखत एक बंदर सकल डारे चूर्रि ।।
सातौ वसैदिह खंर कोहां महासार अपार ।
कुरौं फरेंदु वरन अररू बहुत फल किरवार ।।
सागौंन खिरनी अरँड जिगिनी बौंरसिरि सुरखान ।
हयमुखी कहिय प्रचंड रावन तोरि करि मैदान ।।
सघन करौंदा नेगाडि बिरौं । डारक बना इरच पर जुरौं ।।
छातौं न्यातर बन गूगरी । बैठो टोरि सु बानर बली ।।
फरे बिजौंरे इरनी फूल । सुपक कटाई अमृत तूल ।।
लहसौंरा सुसलौंनौं घना । डार न उबरी एक्कै बना ।।
तमोरिया लिखि सौरौं घनौं । पीठौनी तरूवर को गनौं ।।

रामायन कथा 107-108/258-267

'रामायन कथा' अथवा 'महाभारत' में विष्णुदास ने संध्या,चंद्रोदय, सूर्योदय आदि के वर्णन नहीं रखे हैं, किन्तु 'रामचरितमानस' में उनके उदाहरण प्राप्त होते हैं । नदी, पहाड़ आदि के वर्णन यत्किंचित् विष्णुदास ने किये हैं अवश्य, पर तुलसीदास के 'मानस' की तुलना में वे नगण्य ही ठहरते हैं । तुलसीदास ने 'मानस' के अतिरिक्त 'गीतावली', 'कवितावली' आदि में भी प्रकृति के चित्र उकेरे हैं । विष्णुदास की छोटी रचनाओं -- 'सनेहलीला', 'स्वर्गारोहण', रूक्मिणी मंगल' आदि में प्रकृति वर्णन के उदाहरण नहीं मिलते हैं । आलोच्य कवियों द्वारा वर्णित प्रकृति पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए यहीं कहना सार्थक है कि दोनों ने प्रकृति के कई बड़े विस्तृत चित्र अंकित किये हैं । यों मार्मिकता और प्रभावोत्पादन की दृष्टि से तुलसीदास के वर्णन अधिक उत्तम हैं, पर विस्तार और नाम परिगणन में विष्णुदास की अद्वितीयता स्पष्ट है ।

5. IV रीति-रिवाज एवं आचार-व्यवहार

आलोच्य कवि द्वय उत्तर भारतीय, हिन्दी क्षेत्र के निवासी और हिन्दू वर्ग से थे।

उनकी रचनाएँ भी हिन्दुओं के मान्य ग्रंथों पर आधारित हैं । अतः स्वाभाविक है कि उनकी रचनाओं में वर्णित रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार मोटे तौर पर उत्तर भारत के हिन्दी क्षेत्र के हिंदूओं में प्रचलित रहे हैं । उनमें प्रायः समान प्रकार के वर्णन मिलते हैं । अन्तर प्रायः नहीं है । जो किंचित अन्तर दिखायी पड़ता है, वह स्थान विशेष में प्रचलित रीतियों आदि के कारण हैं ।

5. क. IV अभिवादन

अभिवादन के विभिन्न रूप प्रचलित रहे हैं । इस निमित्त कई प्रकार के शब्दों के चलन तो थे ही, कभी-कभी उन शब्दों का उच्चारण करते समय विशेष प्रकार की अंग भंगी भी प्रदर्शित की जाती थी । सामान्यतः 'नमो', 'नमस्ते', 'नमस्कार', 'प्रणाम' आदि अभिवादन सूचक शब्द दोनों की रचनाओं में प्रयुक्त हुए हैं।[69] श्रद्धेय एवं पूज्य व्यक्तियों और देवताओं के लिए साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने का चलन था ।[70] छोटों के लिए 'आशीर्वाद, 'आशीर्वचन', 'चिरंजीवि', 'दीघार्यु' आदि मंगलार्थक शब्द प्रयुक्त होते थे।[71] श्रद्धा प्रदर्शन के लिए कतिपय - शारीरिक क्रियाएँ, यथा-- 'चरण पखारों', चरण-धुलि लेने, पाँव छूने', 'ह्रदय से लगाने', 'प्रदक्षिणा करने'[72] आदि के प्रचलन थे। अभिवादन की ये सभी पद्धतियाँ उत्तर भारत के पूरे हिन्दू समाज में प्रचलित थीं। हिन्दू भिन्न जातियों में अभिवादन के भिन्न रूप प्रचलित होंगे, पर उनका उल्लेख आलोच्य कवियों में नहीं मिलता है।

5. ख. IV शिष्टाचार :

अभिवादन के पश्चात् कतिपय लोकाचार और शिष्टाचार प्रत्यक्ष होते हैं । कुशल-क्षेम पूछना, अतिथि का स्वागत करना, सम्माननीय व्यक्तियों से बातें करते समय हाथ जोड़ना, सिर नवाना, ब्राह्मणों, श्रद्धेयजनों, बुजुर्गों आदि द्वारा आशीर्वाद दिये जाते समय हाथ ऊपर उठाने, अभ्यागतों एवं प्रियजनों की आगवानी करने, छोटों को स्नेह सहित चूमने, थपथपाने जैसे लौकिक आचारों के उल्लेख दोनों की रचनाओं में यत्र-तत्र हुए हैं।[73]

अतिथियों को देवता रूप मानने का चलन हिन्दू समाज में है । अतः उनके प्रति विशेष सम्मान का भाव प्रकट करने का उल्लेख दोनों ने किया है । उन्हें ससम्मान आसन पर बैठाने, पाद्य-अर्घ्य से पूजने, उनके समक्ष मूल्यवान वस्तुएँ समर्पित करने आदि के संकेत भी दोनों की रचनाओं में हुए हैं । कार्य-सिद्धि के लिए श्रद्धास्पद व्यक्तियों से बात करते समय अपनी विनम्रता सूचित करने के लिए 'कृपा करने', 'उद्धार करने', जैसे शब्द भी प्रयुक्त किये जाते थे । बातचीत करते समय बीच-बीच में व्यक्तियों को योग्यता एवं कर्मानुसार संबोधित किया जाता था । 'देव', 'नाथ', 'तात', 'आर्य' जैसे उत्तम एवं 'नीच', 'दुष्ट', 'खल', 'अधम', 'पापी', 'निकृष्ट' जैसे संबोधन ।[74] दोनों की रचनाओं में मिलते हैं । कहीं-कहीं उपालम्भ के उल्लेख भी हुए है । इस दृष्टि से दोनों कवियों द्वारा वर्णित प्रसंगों में रामलक्ष्मण द्वारा सुग्रीव की मित्रता नहीं निभाने पर, सीता का राम के प्रति 'अग्नि परीक्षा एवं निर्वासन' के समय स्पष्ट उल्लेख हुए हैं । विष्णुदास ने 'महाभारत' में द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग (पृ. 86/44) में भी उपालंभ से काम लिया है ।

5. ग. IV भोजन

भोजन से सम्बन्धित उल्लेख में प्रायः भोजन-सामग्री का ही उल्लेख दोनों कवियों ने किया है । वह उल्लेख भी अति सामान्य रूप में हुआ है । एक दिन में कितनी बार भोजन किया जाता था, क्या परिवार के सभी सदस्य एक ही साथ भोजन करते थे या नहीं जैसे विषयों का उल्लेख नहीं हुआ है । जो थोड़ी बहुत सूचनाएँ मिलती हैं उससे इतना पता चलता है कि पर्व-त्यौहार के दिनों, मांगलिक कृत्यों आदि के दिनों अथवा अतिथियों के आने पर भोजन का प्रबंध विशेष रूप से किया जाता था । भोजन सामग्री का विस्तृत उल्लेख नहीं हुआ है। विविध प्रकार के भोजन, व्यंजन सहित भोजन, कंद-मूल फल अर्पण, पंचामृत भोजन जैसे शब्द प्रयुक्त हुए है ।[75] भोजन से अतिथियों को परितृप्त अथवा संतुष्ट करना गृहस्थ का प्रायः पवित्र आचार माना जाता था । इस स्थिति का प्रतिबिम्बन

दोनों की रचनाओं में हुआ है । राम-विवाह के अवसर पर तुलसीदास ने बरातियों के भोजन कराये जाने का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है । लेकिन वहाँ भी भोज्य-सामग्री का उल्लेख प्रायः नहीं हुआ है, केवल दाल-भात और गाय का घी (सूपोदन सुरभी सरपि) के नाम लिये गये हैं --

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे । बोलि सूपकारी सब लीन्हे ।।
सादर लगे परन पनवारे । कनक कील मनि पान सँवारे ।।
सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत ।
छन महुँ सब के परूसि गे चतुर सुआर बिनीत ।।
पंच कवल करि जेवन लागे । गारि गान सुनि अति अनुरागे ।।
भाँति अनेक परे पकवाने । सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने ।।
परूसन लगे सुआर सुजाना । बिंजन बिबिध नाम को जाना ।।
चारि भाँति भोजन विधि गाई । एक एक बिधि बरनि न जाई ।।
छरस रूचिर बिंजन बहु जाती । एक एक रस अगनित भाँती ।।
जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी । लै लै नाम पुरुष अरू नारी ।।
समय सुहावनि गारि बिराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा ।।
एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा । आदर सहित आचमनु दीन्हा ।।[76]

'जानकी मंगल' में भी बारातियों के भोजन का वर्णन प्रायः ऐसा ही है । वहाँ भी भोज्य सामग्री का उल्लेख नहीं है । कथन में सक्षिप्ता 'चहु प्रकार' और बहु भाँतिन्ह शब्दों से व्यक्त की गयी है । बरातियों के भोजन के समय बारातियों की ओर से महिलाएँ गीतों के मिस गाली और उपालंभ भी देती है । यह एक प्रसिद्ध लोकाचार है । इसका भी पालन तुलसीदास ने किया है । 'रामचरितमानस' के साथ ही 'जानकी मंगल' में भी इसका उल्लेख हुआ है । यथा --

चहुँ प्रकार जेवनार भई बहु भाँतिन्ह ।
भोजन करत अवधपति सहित बरातिन्ह ।
देहिं गारि वर नारि नाम लै दुहुँ दिसि ।
जेंवत बढयों अनंद सुहावनि सो निसि ।।[77]

विष्णुदास ने राम विवाह का संक्षिप्त कथन तो किया है[78], पर बरातियों के भोजन का वर्णन नहीं किया है । वनवास में रामादि का एवं ऋषि मुनियों का भोजन प्रायः -- कंद-मूल-फल है । इसका संकेत भी हो गया है, पर साधारण जनता के भोजन और उनकी भोज्य-सामग्री का उल्लेख किसी में नहीं हुआ है । तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यही कहना सार्थक है कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास की कृतियों में भोजन एवं उससे सम्बन्धित तथ्यों का उल्लेख अधिक एवं उत्तम रूप में हुआ है ।

5. घ. IV संस्कार

हिन्दू जीवन-पद्धति में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इनका चलन शायद मानव की ज्ञान-चेतना के साथ ही हुआ होगा, जो काल प्रवाह में परिवर्तित होते हुए आज भी प्रचलित हैं । कहा गया है कि दोषों के परिहरन और गुणों के आधान से शरीर और मन को अभिनव सौन्दर्य और प्रभास मण्डित करने की क्रियाएँ ही संस्कार है -- 'संस्कारों हि गुणाधानेव वा स्याददोषापनयेन वा' (वेदान्तसूत्र, शांकर भाष्य - 1/1/4) । विभिन्न स्मृतिकारों ने कुल चालीस संस्कार गिनाये हैं । उनमें से व्रत और यज्ञों से सम्बद्ध संस्कारों को निकाल देने पर उनकी संख्या दस हो जाती है -- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकरण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, समावर्त्तन और विवाह । कई स्मृतियों में सोलह संस्कार उल्लिखित हैं । उनमें से वेद चतुष्टय विषयक संस्कारों को निकाल देने से संस्कार बारह ही रह जाते हैं -- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकरण, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकरण, उपनयन, समावर्त्तन, विवाह और

अंत्येष्टि । आजकल मुख्यतः गर्भाधान, नामकरण, उपनयन, विवाह और मृत्यु संस्कार के ही प्रचलन हैं। विष्णुदास और तुलसीदास ने अपनी कृतियों में गर्भाधान, विवाह और मृत्यु संस्कार के वर्णनों में रूचि दिखायी है । शेष का संकेत या उल्लेख मात्र कर दिया गया है।

गर्भाधान : विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों ने 'गर्भाधान' के संकेत मात्र किये हैं ।[79] 'रामचरितमानस' में दशरथ के संतानोत्पत्ति पर उत्सव (जन्मोत्सव) मनाये जाने का अति विस्तृत वर्णन हुआ है,[80] पर 'रामायन कथा' में उसका अभाव है ।

जातकर्म - शिशु-जन्म के पश्चात मनाये जाने वाले संस्कारों में जातकर्म काफी महत्वपूर्ण है। इसमें प्रायः नाड़ीछेद, शिशुस्नान, शिशुमुख में दधि और मधु का स्पर्श, शिशु को स्तनदान आदि करने का विधान है । ये सभी कर्म प्रायः किये तो जाते हैं, पर रचनाओं में इनका उल्लेख शायद ही किया जाता है । विष्णुदास ने इसका संकेत तक नहीं किया है, पर तुलसीदास ने जातकर्म का ब्यौरा रखा है, साथ ही इसी के अन्तर्गत उन्होंने 'छठी' और 'बरही' मनाये जाने एवं 'छठी' की रात में जागरण करने आदि का भी उल्लेख किया है ।[81]

नामकरण - आलोच्य कवियों ने नामकरण की तिथि या समयावधि का उल्लेख नहीं किया है । यह संस्कार आठवे और दसवे दिन किया जाता है । तुलसीदास ने नामकरण के लिए उचित दिन का शोधन अवश्य करवाया है ।[82] वस्तुतः तुलसीदास ने इसे उत्सव रूप में ही वर्णित किया है ।[83]

कर्णवेध - कर्णवेध का तुलसीदास ने केवल उल्लेख (रामचरितमानस 2/9/3) किया है, विष्णुदास ने इसका उल्लेख भी नहीं किया है । यथा -

जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ।।

करनवेध उपबीत बिआहा । संग संग सब भए उछाहा ।।

रामचरितमानस - 2/9/3

चूड़ाकरण - इसका वर्णन किसी में नहीं मिलता है । तुलसीदास ने केवल सूचना ही दी है। विष्णुदास ने इसका उल्लेख भी नहीं किया है ।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई । बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ।।

परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चरिउ सुकुमारा ।।

रामचरितमानस - 1/202-2

यज्ञोपवीत - तुलसीदास ने उसे 'उपबीत' नाम से लिखा है एवं इसी क्रम में उन्होंने विद्यारम्भ का भी उल्लेख किया है । विष्णुदास ने इसका उल्लेख भी नही किया है । यथा--

भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरू पितु माता ।।

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप काल बिद्या सब आई ।।

रामचरितमानस - 1/203/2

विवाह - सभी संस्कारों में विवाह संस्कार को दोनों कवियों ने विशेष महत्त्व दिया है । विष्णुदास ने महाभारत में शान्तनु-गंगा, शान्तनु-मत्स्यगंधा, पाण्डु-कुंती, धृतराष्ट्र-गांधारी, पाण्डव-द्रौपदी, अर्जुन-सुभद्रा के विवाहों के मूलतः उल्लेख किए हैं, वर्णन नहीं । राम-सीता एवं राम के भाइयों के साथ सीता की बहनों के विवाहों के वर्णन विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने किये हैं । विष्णुदास द्वारा वर्णित राम-सीता विवाह अत्यंत संक्षिप्त है । यथा --

जनक विवाही कन्या चारि । अति आनंद करी मनुहारि ।।

रामचंद्र सीता सुन्दरी । उरंमिला लछिमन कहँ बरी ।।

दोऊ जनकराइ की धिया । पानिग्रह इन दोहन किया ।।

और कुसुमधुज तनीं कुमारीं । भईं ति भरथ संतोषन नारी ।।

मंडफ पास भरथ की धनी । श्रुति श्रुवा संतोषन तनी ।।

हय गय रथ बहु रत्न जराइ । पाटबर सोबर्न भराइ ।।[84]

इसके विपरीत तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' और 'जानकी मंगल' में इसे पूरे विस्तार के साथ वर्णित किया है । 'गीतावली' एवं 'कवितावली' में राम-सीता विवाह को यथास्थान महत्त्व दिया है । राम-सीता विवाह के अतिरिक्त तुलसीदास ने शिव-पार्वती विवाह का वर्णन भी 'रामचरितमानस' में किया है एवं 'पार्वती मंगल' में इसे स्वतंत्र रूप से वर्णित किया है । तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने अपनी कृतियों में विवाह संस्कार का वर्णन अत्यंत उत्साह और विस्तार से किया है । उनके द्वारा वर्णित विवाहों की पड़ताल करने से पता चलता है कि प्रत्येक वैदिक और लौकिक विधि को क्रमबद्ध रूप में उपस्थित करने पर वर्तमान समय में उत्तर भारत के गाँवों में प्रचलित वैवाहिक विधि का विश्वसनीय और यथार्थ चित्र उपस्थित हो जाता है । तुलसीदास द्वारा वर्णित लौकिक आधारों में बरात के आगमन पर द्वाराचार, परिछन, विवाह के अवसर पर गाली गीत, कोहबर (कौष्ठवर), द्यूतक्रीड़ा, लहकौर (लघुकौर), ज्यौनार, कन्या की विदाई, वधू स्वागत, चतुर्थी कर्म[85] इत्यादि मुख्य हैं। विवाह में एक सर्वथा लौकिक आचार 'नहछू' को भी तुलसीदास ने एक स्वतंत्र काव्य विषय बनाया हैं। लौकिक आचारों के साथ ही वैदिक कृत्यों के ब्यौरेवार वर्णन तुलसी-वर्णित विवाहों में प्राप्त होते हैं । यहाँ उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं । मांगलिक कृत्यों का तुलसीदास में एकत्र उल्लेख इस प्रकार हुआ है --

हरद दूब दधि पल्लव फूला । पान पत्र फूल मंगल मूला ।।

अच्छत अंकुर लोचन लाजा । मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा ।।[86]

तुलसीदास द्वारा वर्णित विवाह संस्कार में वैदिक और लौकिक विधियों का पूर्ण समुच्चय हुआ है । इतना विस्तृत विश्वसनीय और जीवन्त वर्णन अपने आप में अद्वितीय है। इसकी तुलना में विष्णुदास का वर्णन नामोल्लेख से आगे बढ़ नहीं सका है ।

अंत्येष्टि संस्कार - मानव जीवन का अंतिम संस्कार अंत्येष्टि है । इसके अन्तर्गत दाहपूर्व शव-स्नान, चिता-निर्माण, सुगन्धित द्रव्यों का शव एवं चिता पर छिड़काव, तर्पण आदि वर्णित किये जाते है । विष्णुदास एवं तुलसीदास की रचनाओं में कई व्यक्तियों की अंत्येष्टि के उल्लेख तो हुए हैं, पर संस्कार के वर्णन नही किये गये है । उसके विपरीत राजा दशरथ एवं जटायु की अंत्येष्टि को तुलसीदास ने अपेक्षित विस्तार प्रदान किया है ।[87] विष्णुदास ने उनका केवल संकेत किया है, वर्णन नहीं ।

संस्कारों के उपरिवत् वर्णन से विदित होता है कि आलोच्य कवियों ने विभिन्न संस्कारों के वर्णन तो किये है, पर तुलसीदास में उन्हें अपेक्षित विस्तार भी मिला है । अधिकांश संस्कारों के संकेत या उल्लेख हुए पर विवाह-संस्कार का तुलसीदास ने अति विस्तृत वर्णन किया है ।

5. V पर्व-त्यौहार और लोक-विश्वास

पर्व त्यौहार का सम्बन्ध जहाँ धार्मिक कृत्यों से होता है, वही वह सामाजिक व्यवस्था का अंग भी होता है । पर्व त्यौहार समाज की गतिमानता के सूचक भी समझे जाते हैं । पर्व त्यौहार कुछ तो सर्वभारतीय होते है और कुछ का महत्त्व केवल क्षेत्रीय अथवा आंचलिक होता है । विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में मूलतः वैसे त्यौहारों पर्वो के संकेत या उल्लेख हुए हैं जिनका महत्त्व किसी न किसी रूप में धार्मिक है । लोक पर्वो के रूप में तुलसीदास ने हिंडोला, दीपामालिका और होली के वर्णन किये हैं । विष्णुदास में उनके वर्णन नहीं मिलते हैं । उत्तर भारत में सावन के महीने में हिंडोले का आयोजन किया जाता है । तुलसीदास द्वारा इसे स्वीकार किया जाना उनकी लोकदृष्टि का परिचायक है । गीतावली (7/18) में तुलसीदास के राम और सीता अन्य स्त्रियों के साथ हिंडोले पर झूलते हुए वर्णित हुए हैं । राम के राज्याभिषेक के पश्चात् तुलसीदास ने दीपावली के अवसर पर अयोध्या की सजावट का वर्णन करते हुए उसका वर्णन पूरे एक पद किया है गीतावली,

(7/20) । इसी प्रकार उन्होंने होली का वर्णन आनंद और उल्लासपूर्वक किया है --

नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु ।

खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सब संग ।।

गीतावली - 7/21

इसी प्रकार आलोच्य कवियों कृतियों में लोकविश्वास के भी अनेक तथ्य उल्लिखित या वर्णित हुए है । लोकविश्वास से जन जीवन ज्यादा प्रभावित रहता है । दोनों कवियों ने अनेक लोक विश्वासों का प्रसंगानुरूप कथन किया है । नांदीमुख श्राद्ध, व्रत-उपवास, सत्संग जैसे धार्मिक महत्त्व के सामान्य विश्वासों के कथन दोनों में प्रायः समानरूप में मिलते है । शाप और वरदान के उल्लेख भी दोनों ने किये है । धर्मेतर लोकविश्वासों में भाग्यवाद[88], ज्योतिष का महत्त्व[89], टोना-टोटका[90], दुष्ट-दृष्टि और दृष्टिग्रहों एवं उनसे रक्षार्थ बालको के लिए रक्षा-कवच आदि की व्यवस्था एवं शुभ तथा अशुभ शकुन[91], स्वप्न, अभिशाप[92], आशीर्वाद इत्यादि के उल्लेख दोनों की रचनाओं में हुए है। राम के अभिषेक के समय ब्राह्मणों द्वारा ज्योतिष गणना और ग्रहों के प्रभाव का उल्लेख किये जाने का कथन विष्णुदास ने इस प्रकार किया है --

कहत विप्र तुम सुनहु भुवार । आठै पुष्य और गुरुवार ।।

वेध शुक्र शनि मंगल तनौ । या लग्नहि औगुनि अति घनौ ।।

सगुन हमारौ ऐसी कहै । बैठत राज रामु बन लहै ।।

जो बैठहि तो छाँडहि ठाउँ । प्रान परिहरै दशरथ राउ ।।

ऐसौ बचन जोतिषी कहौ सिद्धि होत असिद्ध मत लहौ ।।[93]

5. VI मनोरंजन

प्रत्येक समाज में मनोरंजन के विविध रूप प्रचलित रहते हैं । विविध आयुवर्ग के लोगो में मनोरंजन के रूप भी अलग-अलग होते हैं । मनोरंजन के उल्लेख विष्णुदास

की अपेक्षा तुलसीदास की कृतियों में अधिक हुआ है । बच्चे की क्रीड़ा के रूप में तुलसीदास ने राम और कृष्ण की बाल की लीलाओं-आँगन में ठुमकने, किलकने, घुटनों के बल चलने, वंशीवादन, चौगान खेलने, घुड़सवारी करने[94] आदि के वर्णन किये है । बड़ों के मनोरंजन हेतु मृगया का उल्लेख दोनों ने किया है । विष्णुदास ने महाभारत में द्युत-क्रीड़ा का वर्णन किया है । द्यूत-क्रीड़ा में हार के कारण ही पाण्डवों का सर्वस्व हार कर वनवास जाना पड़ा था । इसी कारण कवि ने विदुर और पितामह भीष्म की राय का उल्लेख करते हुए कहा है--

मंत्रु दयौ गुरू बिदुर ने और पितामह तासु ।

जुवा परिहरौ राउसुनि द्वै हैं मूल बिनासु ।। महाभारत, 81/ दो. 5

आगे भी उसी प्रकार का कथन हुआ है --

कहै गंगेउ सुनहु कुर राई । अबिचलु राजु करहु सौ भाई ।।

जुवा परिहरहु मेरी बुद्धी । मूल विनासहिं करहिं असिद्धी ।।

महाभारत, 82/86

तुलसीदास ने द्यूतक्रीड़ा अथवा उसके दोषों का उल्लेख नहीं किया है ।

5. VII प्रसाधन एवं वस्त्राभूषण

नारी-वर्णन में आलोच्य कवियों ने उसके सौन्दर्य प्रसाधन के सम्बन्ध में भी किंचित संकेत किये हैं । इसमें स्नानपूर्व और स्नान-पश्चात् प्रसाधनों के भी संकेत हो सके हैं । स्नानपूर्व शरीर में तेल उबटन आदि की मालिश के एवं स्नान के पश्चात् कतिपय सुगन्धित द्रव्यों-चंदन, कस्तूरी आदि के लेप किये जाने के संकेत या उल्लेख हुए हैं । दोनों में इस सम्बन्ध में मितव्ययिता बरती है । प्रायः नारी के सोलह श्रृंगारों के उल्लेख विद्वानों ने किये हैं । यथा -- चीर या असितपट, केश रचना या वेणी बंधन, बालों में फूल खोंसना, तिलक, कर्णावतंस, आभूषण अथवा हार, कंकण, नूपुर आदि। इन सब का अलग-अलग

वर्णन भले ही न हो, पर दोनों की रचनाओं में इनमें से अधिकांश आ गये है । कवि प्रायः सब का अलग-अलग कथन नहीं, करते हुए 'सर्व अलंकारों भवति सुरूपानाम्' के अनुरूप ही कथन किये हैं । तुलसीदास का कथन 'भूषन सकल सुदेस सुहाए (रामचरितमानस 1/296/1) इसी के अनुरूप है । पूर्व उद्धृत द्रौपदी के सौन्दर्य वर्णन (महाभारत 44/12-25) में भी उसके उदाहरण आ गये हैं । सीता विवाह के अवसर पर तुलसीदास ने नारियों के प्रसाधन और वस्त्राभूषण का उल्लेख निम्नांकित रूप में किया है --

पहिरें बरन बरन बर चीरा । सकल बिभूषन सजें सरीरा ।
सकल सुमंगल अंग बनाएँ । करहिं गान कलकंठि लजाएँ ।।
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहि । चालि बिलोकि काम गज लाजहिं ।।

रामचरितमानस - 1/317/1-2

वस्त्राभूषणों में स्थानीय प्रचलनों को ही अधिक महत्त्व मिला है । नारी के वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त पुरुषों के परिधानों और अलंकारों के भी उल्लेख हुए हैं ।

5. VIII आदर्श कल्पना

आलोच्य कवियों ने समाज के यथार्थ रूप का वर्णन तो किया ही है, साथ ही उन्होंने अनेक विषयों पर अपनी राय व्यक्त की है। यह और बात है कि दोनों कवियों ने अपने जो मन्तव्य दिये हैं, उनमें उनका शुद्ध सामाजिक व्यक्ति अथवा समाजशास्त्री का रूप नहीं वरन् वैष्णव आदर्शों से प्रेरित आदर्श की झलक अधिक मिलती है। उसके बावजूद यही मानना उत्तम होगा कि वे उनके आदर्श प्रतिमान हैं। आज उनकी प्रासंगिकता कितनी है, यह विचार का विषय नहीं है। उनकी विचारधारा पर विचार करने का तात्पर्य है उनके आदर्श प्रतिमानों को उपस्थित करना जिन्हें आगे कतिपय शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जाता है।

5.क. VIII परिवार

दोनों कवियों की रचनाओं में परिवार के जिस आदर्श रूप की कल्पना हुई है,

वह आज की शब्दावली में संयुक्त परिवार है । उसमें केवल पति-पत्नी और पुत्र ही नहीं, वरन् माता-पिता, चाचा-चाची, ताऊ-ताई पारिवारिक सेवक आदि भी परिगणित होते हैं । तुलसीदास और विष्णुदास ने दशरथ- परिवार को आदर्श परिवार के रूप में अंकित किया है । विष्णुदास ने 'महाभारत' में धृतराष्ट्र (कौरव) परिवार का वर्णन किया है, पर वह उनका आदर्श नहीं है । वही उन्होंने पाण्डव-परिवार को आदर्श स्वीकार किया है । वस्तुतः 'महाभारत' में कौरव और पाण्डव परिवारों के अतिरिक्त कई और परिवार भी चित्रित हुए हैं, यथा -- द्रुपद परिवार, श्रीकृष्ण परिवार, राजा विराट का परिवार आदि, किन्तु इन सब पर कवि का ध्यान अधिक जमा नहीं है । दोनों कवियों ने कलियुग वर्णन में जहाँ विघटित और पतनशील परिवार का अंकन किया है, वहीं दशरथ और पाण्डव परिवारों के चित्र सुसंगठित परिवार के उदाहरण बने हैं जिनमें "अनुचित उचित विचार तजि, ते पालहिं पितु बैन" जैसे पुत्रों की कल्पना की गयी है ।

दोनो कवियों ने दाम्पत्य जीवन की सुख-समृद्धि को अधिक महत्त्व दिया है । इस निमित्त नारी धर्म का अर्थ प्रायः पति सेवा ही मान लिया गया है । इस सम्बन्ध में दोनों कवियों की ये उक्तियाँ देखी जा सकती हैं --

विष्णुदास :

क. जौ साँई कौ कहयौ न कीजैं । कहै नारि तौ नरक परीजै ।।

महाभारत - 20/90

ख. तिवई धर्म कहौं बैठारि । सेबैं पुरुष सु उत्तम नारि ।।

रामायन कथा - 32/2

ग. छिन तुम बिन जो जीवहि जोइ । सो तिवई कौ धरमु न होइ ।।

रामायन कथा - 19/34

विष्णुदास ने पुरुष के लिए स्त्री की जीवन-संगिनी के रूप में अनिवार्यता का कथन निम्नांकित रूप में किया है --

धर्म-नेम-तप-तीरथ-न्हानू । त्रिय बिनु पुरुष होइ अपमानू ।।
त्रिय बिनु राज भोग सब सूनू । त्रिय बिनु होय न होम न पूनू ।।
त्रिय बिन पुरुष न लहै बड़ाई । त्रिय दुख बक्ष सहन क्यों जाई ।।
त्रिय तें दुखु दालिद्रु न होई । त्रिय तें क्रिया धर्म सब कोई ।।

महाभारत - 7/63-64

तुलसीदास :

क. नारिधरमु पति देउ न दूजा । - रामचरितमानस - 1/101/2

ख. एकइ धर्म एक व्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ।

रामचरितमानस - 3/4/5

ग. सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।

रामचरितमानस - 3/5/ सो. क

आलोच्य कवियों द्वारा अंकित नारियाँ कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सीता, पार्वती, कौशल्या, मन्दोदरी आदि पातिव्रत के आदर्श रूप को अग्रसारित करती हैं । पति-पत्नी का कर्तव्यनिष्ठ स्नेह दाम्पत्य जीवन की धुरी होती है इसका अंकन दोनों कवियों में कई स्थलों पर हुआ है । यहाँ एक उदाहरण रखा जाता है । यथा --

विष्णुदास :

भरथ पास को बिनती करै । कैसैं अन्न वस्त्र बिनु सरै ।।
देखौ साँई हियै बिचारि । सोहति किसी पुरुष बिनु नारि ।।
रवि बिन दिवस चंद बिन रैनि । तैसी पति विहीन मृग नैनि ।।
हौं पुनि साथ तुम्हारे जाउ । घन पाटन वन वन खड गाँउ ।।

रामायन कथा - 19/35-36

तुलसीदास :

सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ।

पाय पखारि बैठि तरू छाहीं । करिहऊँ बाउ मुदित मन माहीं ।।

रामचरितमानस - 2/66/1

वस्तुतः पारिवारिक सुख-समृद्धि के लिए दाम्पत्य जीवन का सुखी होना, पति के कार्य में पत्नी का सहभागिनी बनना दोनों कवियों को स्वीकार्य है । कहना पड़ेगा कि उनके ये आदर्श एक सीमा तक वैष्णव आदर्श से अनुप्राणित हैं । दोनों ने भक्त रूप में दास्य भक्ति को सर्वोपरि महत्त्व दिया है जिसमें स्वामी-सेवक भाव होता है । पति-पत्नी के सम्बन्ध जिस रूप में भी उनके ये आदर्श बने हुए हैं -- वे पति को स्वामी और पत्नी को सेविका रूप में ही आदर्श स्वीकारते हैं ।

विष्णुदास ने महाभारत में दो लम्बे उदाहरण रखे हैं -- पहला है कुन्ती की आत्मसमीक्षा । पाण्डु द्वारा मृगवेशी ऋषि बाणबिद्ध होने पर पाण्डु को शाप देते हैं, जिसे जानकर कुन्ती अपने जीवन में किये गये कर्मो की आत्मसमीक्षा करती है । वस्तुतः उक्त आत्मसमीक्षा से ही बाते कही गयी हैं जिनके करने पर व्यक्ति और परिवार को दुख भोगना पड़ता है । अर्थात् प्रकारान्तर से कवि ने सुखी जीवन के लिए उन सभी का निषेध किया है। यथा --

कै मैं दुखए बंह्मान देवा । कै में करी न गुरु की सेवा ।

कै मैं फूलत काटी जाई । कै में चरत बिडारी गाई ।।

कै मैं बालकु तिवई मारी । कै में दूधहि मिलाई खारी ।

कै में मारे बंधु बिसासी । कै में पंछिनि रोपी पासी ।।

कै में बिप्रु नेउति फटकारयौ । कै बिल साँपु धुंवां दे मारयौ ।

कै में होमु बुझायौ पानी । किधों जेठ की करी न कानी ।।

कै में तीरथ निंदे गंगा । कै दो घाली बिसहर दंगा ।

कै में करयौ गवरि ब्रत भंगू । तीरथ चलत निवारयौ संगू ।।

कै में दियहि दिवालें बारयौ । कै धिय पर-घर देत निवारयौ ।।

कै में लोभह थाती लोपी । कै मंगन कहँ बोल्यों कोपी ।।

कै में पुरिख बिछोही नारी । कै गैया दुहि सुनहीं पारी ।

कै में बचनु बड़े को टारयौ । कै में मानसु बिसु दे मारयौ ।।

कै में सखी मंत्रु परगास्यौ । कै में काजु सगे कौ नास्यौ ।

कै में कास्यौ पां धरि ठेल्यौ । कै में जती अभाख्यौ बोल्यौ ।।

कै में निंद्यो पर उपगारू । कै में सखी चुरायौ हारू ।।

कै में पाननि सार न कीनी । रिषि जु सराप राइ कँह दीनी ।।

महाभारत, पृ. 15-16/38-45

5. ख. VIII समाज

समाज के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर विष्णुदास ने एक दूसरा लम्बा उपदेश रखा है । वह धृतराष्ट्र सभा में द्यूतक्रीड़ा के आयोजन के पूर्व उसके निषेध हेतु किया गया लम्बा वक्तव्य है, किन्तु उसमें समाज के प्रायः सभी पक्षों को ध्यान में रख कर कथन किया गया है कि वैसा करने से विनाश होता है । यथा --

बिनसै धर्मु कियें पाखंडू । बिनसै ग्रेहु नारि परचंडु ।

बिनसै राजु कुमंत्री बाहै । बिनसे धनिकु न वैच्यौ चाहै ।।

बिनसै नारि जु पुख्यि उदासी । बिनसै प्रीति होइ अति हांसी ।

बिनसै पूतु जुबा लपकायौ । बिनसै सेवकु करि मन भयौ ।।

बिनसै बिप्रु तजै षटकर्मू । बिनसै चोरू प्रगासै मर्मू ।

बिनसै पुत्रु कुपुत्रह जायौ । बिनसै गर्वु करें पदु पायौ ।।

बिनसै करन जु कहियै कामू । बिनसै लौभ ब्यौहरै दामू ।

बिनसै रांडु पढायौ पांडे । बिनसे ज्वारी खेलहि डाडें ।।

बिनसै नरू जो राच्यौ बेसा । बिनसे नेहु मित्रु परदेसा ।

बिनसै रोगी कुपथु करई । बिनसै धनु होतें रिन करई ।।

बिनसै तरवरू नदी करारें । बिनसै धरू जु बढाए रारें ।

बिनसै असकति कीजै ब्याहू । बिनसै अति लोभी नरनाहू ।।

बिनसै बनिकु बिसन व्यौहारी । बिनसै पुरुषु जु जीत्यौ नारी ।

बिनसै बेदु सुरा-रस भीनैं । बिनसै दानु कुबंभन दीनें ।।

बिनसै कला कुठाकुर सेवा । बिनसै गनिका पूजै देवा ।

बिनसै नीच जोग उपगारू । बिनसै सूत पुरानें हारू ।।

बिनसै छत्री भाषै दीनू । बिनसै नटु कलागुन हीनू ।।

बिनसै तप जो कीजै कोहू । बिनसै करहि बिसासि जु दोहू ।।

बिनसै गीतु बात जौ कीजै । बिनसै कथा जौ न चितु दीजै ।

बिनसै मंदिरू रावर पासा । बिनसै काजु पराई आसा ।।

बिनसै बधिकु मया मन धरही । बिनसै बांभनु सेवा करही ।

निसै ब्रतु हीनें आहारू । बिनसै हथरस हीनें टारू ।।

बिनसै सौनों लोह चढायौ । बिनसै धनु जु कुमित्रन खायौ ।

बिनसै मंगनु करै जु लाजा । बिनसै जोधा होइ कुसाजा ।।

बिनसै खेती आरसु कीजै । बिनसै पोथी पानी भजै ।

बिनसे विद्या कुसिष पढाई । बिनसै सुंदरि परघर जाई ।।

महाभारत - पृ. 81-82/73-85

उपरि विवरण से स्पष्ट है कि उसमें समाज का कोई भी पक्ष छूटा नहीं है ।

यदि कवि के कथानुसार व्यक्ति आचरण करे तो समाज सब प्रकार से समृद्ध हो सकता है।

वस्तुतः विष्णुदास और तुलसीदास दोनों कवियों ने विविधता में एकता और द्वैतता में अद्वैतता की जो कल्पना भक्ति के क्षेत्र में की है, उसे ही वे सामाजिक क्षेत्र में भी आदर्श रूप में स्वीकार करने के हिमायती हैं । समाज का प्रत्येक पक्ष चाहे राजनीति हो या अर्थ, परिवार हो या समाज सभी उनके अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं । अद्वैत भिन्न प्रतिमान उन्हें किसी भी क्षेत्र में स्वीकार नहीं है । उनके विचार की आधारशिला तुलसीदास की यह पंक्ति मानी जा सकती है --

सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ ।। वैराग्य संदीपनी - 31

सामाजिक विधि-निषेध की कानूनी स्वीकृति की अपेक्षा मानवीय मूल्यों को दोनों ने अधिक महत्त्व दिया है । वैष्णव शब्दावली में उसे ही वे 'धर्म' या 'पुण्य' कहते हैं एवं उनके विपरीत कर्म को 'अधर्म' अथवा 'पाप' की संज्ञा देते हैं । वे मानते हैं --

विष्णुदास : धर्म मूल ह्वै पर उपकार । महाभारत - 162/8

तुलसीदास : पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।। रामचरितमानस - 7/40/1

तुलसीदास ने इस सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ अनेक स्थलों पर व्यक्त की है । उसी कारण वे संसार को राममय स्वीकार करते हैं एवं सबसे प्रीति करने की बात करते हैं --

1. जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि । - रामचरितमानस 1/7 (ग)
2. सीय राममय सब जग जानी - रामचरितमानस 1/7/1
3. अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ।

रामचरितमानस - 7/95 (क)

विष्णुदास और तुलसीदास ने जिस समाज को देखा और भोगा था, वह समाज विभक्त यानी बिखरा हुआ था । वह सब प्रकार से ह्रासोन्मुखी था । उसके विपरीत जिस

आदर्श समाज की वे दोनों कल्पनाएँ कर रहे, उसे होना चाहिए भक्त यानी सब प्रकार से संगठित, व्यवस्थित और समान विधि-निषेध से संचालित । विभक्त समाज की विशेषता थी विषमता । उसके विपरीत भक्त समाज की आधारशिला होनी चाहिए समता यानी साम्यभाव (साम्यवाद नहीं) । साम्य भाव पर आधारित जिस समाज की कल्पना दोनों की रचनाओं में मिलती है, वही समाज का आदर्श रूप है ।

दोनों कवियों को यह मान्य है कि जिस समाज की वे कल्पना करते हैं उसे कानून द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता । उसके लिए कानूनी व्यवस्था से अधिक महत्त्व मानवीय मूल्यों को देना होगा । जीवन में सब प्रकार की सुचिता, निर्बलों पर दया, विपत्ति और कष्ट झेल रहे लोगों की सहायता, उपकार आदि को इसके लिए महत्त्व देना पड़ेगा । जीवन में सत्य और अहिंसा पर इस हेतु दोनों ने बल दिया । सत्य के सम्बन्ध में विष्णुदास ने लम्बा कथन किया है (रामायन कथा, 23/13-16) । वे मानते हैं कि 'वाचा सत्य प्रीति अरू धर्म, यहई दृढ़ जो उत्तम कर्म' (23/15) । तुलसीदास का मानना है 'धरमु न दूसर सत्य समाना' (रामचरितमानस 2/94/3)। सत्य की तरह ही दोनों ने अहिंसा को भी महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है। तुलसीदास मानते हैं काम, क्रोध आदि एक-एक भी अनर्थकारी हैं, फिर यदि एक साथ सभी एकत्र हो जायें तो उनसे बचना असंभव है --

ग्रहग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार ।।
ताहि पियाई बारूनी, कहहु कौन उपचार ? ।। दोहावली - 271

विष्णुदास के अनुसार मित्र, यती, वृद्ध आदि आठ प्रकार के लोगों पर पहले कभी प्रहार नहीं करना चाहिए --

मित्र जती बूढ़ौ गुरू राउ । बालक तिया गौंत कौ घाउ ।।
आठ विचारि करै नर जोइ । तेहि सुग्रीव नर्क नहिं होइ ।।

रामायन कथा - 164/43

ऐसा करने पर पाप और राज दोष होता है । असमान से विग्रह नहीं करना चाहिए । दुश्मनी अकारण नहीं होती, नीच का साथ नही करना चाहिए, कन्या सज्जन के घर में ही देना चाहिए, बड़ों की आज्ञा पालन करना चाहिए[95] आदि ।

समाज की शांति व्यवस्था व्यक्ति के संयमित जीवन पर निर्भर करती है । इसके लिए मन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है । इसी तरह प्रत्येक कार्य का सम्पादन करने के पूर्व उसके परिणाम पर विवेकपूर्ण निर्णय लेना चाहिए । दोनों की मान्यता है सुमति में समृद्धि और कुमति में विपत्ति निहित होती है । किसी बात का निर्णय करने में यदि व्यक्ति अकेले समर्थ नहीं होता तो उसे अन्य लोगों से भी तद्विषयक राय लेनी चाहिए। पुनः समाज की दृष्टि से परम्परा से मान्य बातों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है ।

5. ग. VIII अर्थ

भौतिक सुख-सुविधा की दृष्टि से अर्थ का विशेष महत्त्व है । अर्थ के अभाव में व्यक्ति का जीवन कष्टमय और प्रायः अशान्त रहता है । दोनों कवियों की दृष्टि भौतिकवादी नहीं थी । इस कारण उनकी रचनाओं में अर्थ विषयक प्राप्त मान्यताएँ सामाजिक दृष्टि से खरी नहीं कही जायेंगी । उनकी दृष्टि साधु-संयासियों वाली और वैष्णवी ही अधिक कही जायेंगी । पुनः एक अन्तर भी दोनों की दृष्टियों में है । विष्णुदास को बचपन में तुलसीदास की तरह आर्थिक कष्ट नहीं झेलना पड़ा था । उनके पिता कथावाचक (व्यास) थे । इस कारण घर में अभाव नही रहता था । बाद में विष्णुदास को राजाश्रय प्राप्त हो गया । राज्याश्रित कवि होने के कारण उन्हें कभी गरीबी की मार झेलनी नहीं पड़ी । तुलसीदास को यह सुविधा कभी नहीं मिली । बचपन बहुत अधिक अभाव और कष्ट में बीता था । उसके लिए चने के चार दाने भी कभी चार पुरुषार्थ पा लेने के बराबर होते थे । यही कारण है विष्णुदास की रचनाओं में आर्थिक अभाव की चिन्ता नहीं के बराबर है जबकि तुलसीदास ने जीवन के पूर्वार्द्ध में जो कष्ट भोगा था, उसके कारण वे

इस बात से अधिक चिंतित प्रतीत होते हैं कि किसानों को खेत नहीं है, भिखारी को भीख नहीं मिलती है, बनियों का व्यापार भी नहीं चलता है और नौकरी खोजने वालों को नौकरी भी नही मिलती है । जीविका विहीन लोगों को कुछ समझ में नहीं आता । वे एक दूसरे से यही कहते हैं कि ऐसी स्थिति में कहाँ जाये और क्या करें ? इस प्रकार की चिन्ता उन्होंने कई स्थलों पर व्यक्त की है । वे जानते हैं कि पेट की आग सबसे भीषण होती है । वे स्वयं इसके भुक्तभोगी थे । इस कारण उन्हें यह चिंता थी कि सबको कम से कम इतनी समृद्धि अवश्य चाहिए कि उसे भूखों नहीं रहना पड़े । विष्णुदास की रचनाओं में ऐसी चिंता एक दम नहीं मिलती है । तुलसीदास ने इसी कारण आय के अनुरूप ही व्यय करने वालों को 'बुद्धिमान', 'सामर्थ्यवान', 'चतुर', 'पुण्यात्मा' आदि भी कहा है । उनकी राय है कि खर्च अपनी आमदनी के अनुरूप ही करो --

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु, सयान ।

जो बिचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ।। दोहावली - 471

वस्तुतः तुलसीदास ने आर्थिक पक्ष सँभालने का दायित्व राजा और राज-व्यवस्था पर सौंपा है । उनके अनुसार प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा हेतु सामग्री के वितरण का दायित्व मुखिया को होना चाहिए । एक रूपक के द्वारा उन्होंने अपनी मान्यता इस प्रकार रखी है--

मुखिया मुख सो चाहिये खान-पान कहुँ एक ।

पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ।।

रामचरितमानस - 2/315

धन का महत्त्व विष्णुदास भी स्वीकार करते हैं । वे मानते हैं कि धन के अभाव में कोई सुखी नहीं होता अर्थात् जीवन में सुख प्राप्ति के लिए धन का होना आवश्यक है --

धन बिनु भोग किसौ करि होइ ।

धन बिनु सुखहिं न पावै कोइ ।। रामायन कथा - 97/99

ध्यातव्य है कि विष्णुदास वैष्णव होकर भी घर-बारी थे, पर तुलसीदास का जीवन वैरागी का जीवन था । उसके बावजूद ऐसा लगता है कि जीवनगत परिस्थितियों के प्रभाववश अर्थ सम्बन्धी तुलसीदास की मान्यताएँ ज्यादा व्यावहारिक हैं ।

5. IX निष्कर्ष

उपरि विवेचन के उपरान्त सारांशतः कहा जायेगा कि विष्णुदास और तुलसीदास की सामाजिक विचारधाराओं पर युगीन परिस्थितियों से अधिक धार्मिक और पारम्परीण पुराणकथाओं का प्रभाव है । उनकी रचनाओं में सामाजिक मान्यताएँ दो रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं -- यथार्थ रूप में और आदर्श रूप में, यथार्थ रूप में वे ह्रासोन्मुखी सामाजिक व्यवस्था का अंकन करते हैं जिसे वे कलियुग के प्रभाव के रूप में देखते हैं । वर्ण और आश्रम पर आधारित प्राचीन सामाजिक व्यवस्था सब प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है । दोनों कवि रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के प्रति भी समान रूप में चिन्तित दिखायी पड़ते हैं ।

धार्मिक और नैतिक दृष्टि से खोखले बने पतनोन्मुखी समाज का धर्मप्राण, निष्ठावान और सब प्रकार से उन्नत बनाने के लिए विष्णुदास और तुलसीदास दोनों की चिन्ताएँ प्रायः एक-सी है । विष्णुदास की तुलना में तुलसीदास की चेष्टा में वैष्णवी और संन्यासी का आदर्श अधिक मुखर है ।

आदर्श समाज के लिए जनता की आर्थिक समृद्धि आवश्यक है । आर्थिक विपन्नता में समाज भी विपन्न और अशान्त रहेगा । इस कारण आलोच्य कवियों की दृष्टि व्यक्ति की आर्थिक स्थिति पर भी गयी है । वैयक्तिक स्तर पर आय-व्यय का समुचित समायोजन अर्थात् आय के अनुरूप ही व्यय का सिद्धान्त मान्य हुआ है । धन की आवश्यकता सदा रहती है । उसके अभाव में समाज के अधिकांश कार्य नही हो पाते हैं। समाज के शासक आदि से इस बात की अपेक्षा की गयी है कि वह समाज की आर्थिक

स्थिति ठीक करने के लिए समुचित उपाय करे । वैसा करने पर ही समाज के प्रत्येक अंग का उचित पोषण हो सकेगा । इस निमित्त मुखिया का रूपक तुलसीदास ने बाँधा है । विष्णुदास और तुलसीदास सही अर्थो में न तो सामाजिक चिंतक थे और न अर्थशास्त्री । अतः उनकी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक दृष्टि भक्त कवि के दृष्टिकोण के अनुरूप है । उसके बावजूद यह मानना पड़ता है कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास की सामाजिक आर्थिक विचारधारा अधिक व्यावहारिक है ।

संदर्भ :

1. शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ 221
2. वाल्मीकि युगीन भारत (मंजुला श्रीवास्तव) के 'दो शब्द' - डॉ. सूर्यकान्त, पृ. 4
3. बौधायन धर्मसूत्र - प्रश्न 2, खण्ड 11-1
4. 'गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमाश्रमम्' । - रामायन - 2/18/17
5. शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ 222
6. रामचरितमानस - 7/वेदस्तुति, 5 वाँ छंद
7. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ.रमा श्रीवास्तव,पृ.149
8. शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक - डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, पृ 222
9. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ.रमा श्रीवास्तव, पृ.150
10. 'कलि शयानोभवति' वाला श्लोक
11. तुलसी आधुनिक वातायन से - डॉ. रमेश कुंतल मेघ - पृ. 85
12. रामायन कथा - 216/85-86
13. -वहीं- 94/54
14. -वहीं- 223/56
15. -वहीं- 223/61
16. -वहीं- 224-225/81-84
17. -वहीं- 181/15-16
18. महाभारत, पृ. 171-173
19. -वहीं- पृ. 175
20. रामचरितमानस, 7/97-102
21. -वहीं- 7/99/5
22. कवितावली - 7/67
23. -वहीं- 7/56
24. -वहीं- 7/67
25. -वहीं- 7/96
26. -वहीं- 7/97
27. -वहीं- 7/99
28. -वहीं- 7/80
29. दोहावली - 50
30. कवितावली - 7/83
31. रामचरितमानस - 7/39/1-4
32. तुलसी आधुनिक वातायन से - डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृ. 81
33. रामचरितमानस 1/5/3-5 एवं 1/6/1

34. रामचरितमानस, 7/123/3
35. -वहीं- 3/8/3, 3/15/6
36. -वहीं- 3/8/2, 3/15/5
37. -वहीं- 7/71 (क)
38. रामायन कथा 19/34
39. -वहीं- 194/20
40. रामचरितमानस - 3/5 सोरठा
41. -वहीं- 6/108/4
42. महाभारत - 20/90
43. -वहीं- 11/118-119
44. -वहीं- 11/120
45. गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में नारी और मानव जीवन में उसका महत्व, डॉ. ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ. 262
46. महाभारत 121/41-46
47. -वहीं- 120/40
48. रामायन कथा 15/186
49. -वहीं- 17/2
50. रामचरितमानस - 2/29
51. -वहीं- 3/16/3
52. -वहीं- 6/15/2
53. महाभारत - 7/63
54. रामायन कथा - 1/7-8
55. महाभारत - 4/23
56. रामायन कथा - 1/9 ; महाभारत (स्वर्गारोहण), पृ. 171
57. कृष्णगीतावली - 3
58. रामचरितमानस - 1/193/2
59. -वहीं- 1/143/4, 2/236/1, 3/2/2
60. -वहीं- 1/300/1
61. -वहीं- 1/299
62. -वहीं- 1/299/2
63. रामायन कथा - 93/32-38
64. महाभारत - 69/3-8
65. रामचरितमानस - 7/26 छंद

66. रामचरितमानस, 1/212-213/2
67. -वहीं- 7/27
68. रामायन कथा - 2/16
69. रामचरितमानस 1/331/4 ; रामायन कथा - 3/32
70. -वहीं- 1/307/2
71. -वहीं- 1/326/4
72. -वहीं- 1/307/3, 1/338/4, 2/240 ; रामायन कथा - 4/3, 22/81
73. -वहीं- 1/327/2 ; रामायन कथा - 205/9
74. -वहीं- 3/18/6 ; वही, 205/10
75. -वहीं- 1/328 ; 2/249/1
76. -वहीं- 1/327/4 एवं आगे
77. जानकी मंगल - 178-179
78. रामायन कथा - 11/119-122
79. रामायन कथा, 5/18 ; रामचरितमानस - 1/190।2-3
80. रामचरितमानस - 1/192-195
81. -वहीं- 1/193, 1/335/2 ; गीतावली - 1/4-5
82. गीतावली - 1/6
83. रामचरितमानस - 1/196।1
84. रामायन कथा - 11/119-120
85. जानकी मंगल 160 ; पार्वती मंगल 38 ; रामचरितमानस 1/326/2 ; जानकी मंगल 146 ; पार्वती मंगल 133 ; रामचरितमानस- 1/326/2 छंद, 1/327 ; 1/336/4 ; 1/349 ; 1/359/1
86. रामचरितमानस - 1/345/2-3
87. -वहीं- 2/247/1, 3/32
88. रामचरितमानस - 1/164/4, स्वर्गारोहण
89. रामाज्ञा प्रश्न ; रामायन कथा - 14/162
90. गीतावली - 1/21 ; कृष्णगीतावली -8 ; हनुमान बाहुक - 26, 30 ; विनयपत्रिका - 26/7
91. रामचरितमानस - 1/197/3 ; गीतावली - 1/12 ; महाभारत - 14/15, 84 / दोहरा ; रामायन कथा - 100/135
92. रामचरितमानस - 7/106/2-3, 7/107 (क)
93. रामायन कथा - 14/162-164
94. गीतावली - 1/30, 1/32, 1/39, 1/41, 1/45 ; कृष्णगीतावली - 3
95. रामायन कथा - 49/82 ; महाभारत - 51/6, 26/40, 13/4, 26/33 आदि

षष्ठ अध्याय

राजनैतिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

षष्ठ अध्याय

राजनैतिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

6. I उपक्रम

राज्य की रक्षा और शासन को दृढ़ करने का उपाय बतानेवाली नीति राजनीति कही जाती है ।[1] प्राचीन समय में राजवेत्ताओं ने इसे ही दंड-नीति कहा था । महाभारत के शांति पर्व में इसे ही राष्ट्र का प्रजागर या जागरण कहा है । उसके अनुसार दंड (राजनीति), प्रजा का शासन, रक्षण और पालन करता है एवं सबकी निद्रावस्था में भी यह जाग्रत रहता है । इसीलिए इसे राजा का धर्म भी कहा गया है ।[2] भीष्म के माध्यम से महर्षि व्यास ने जिस राजधर्म का कथन कराया है, उससे स्पष्ट है कि राज धर्म ही परम धर्म है[3] एवं सभी प्राणियों का परम आश्रम है ।[4] इससे विदित होता है कि भारत में राजनीति को धर्म से कभी सर्वथा अलग नही माना गया है । भीष्म ने उसे नित्य शाश्वत धर्म माना है -- 'नमों धर्माय महते ....।'[5] भारत में राजनीति अथवा दण्ड नीति राजा के धर्म के रूप में मान्य हुई है, इसी कारण प्रायः सभी कवियों ने प्रसंगानुसार इसकी महत्ता का कथन किया है । आलोच्य कवि द्वय की रचनाएँ भी इससे अछूती नहीं हैं । विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में राजनीति विषयक विचार मुख्यतः दो प्रकार के मिलते हैं-- (क) तत्कालीन व्यावहारिक या यथार्थ राजनीति और (ख) राजनैतिक आदर्श । आगामी पृष्ठों में इन्हीं दो रूपों में दोनों कवियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है ।

6. II तत्कालीन राजनीति

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में अभिव्यक्त राजनीति से तात्पर्य है । तत्कालीन छोटे-बड़े राजाओं द्वारा प्रयुक्त व्यावहारिक राजनीति या यथार्थ राजनीति जिसके वे दोनों कवि स्वयं भोक्ता थे एवं जिनके कारण उनके भाव और विचार प्रेरित प्रभावित हुए

थे । तत्कालीन परिस्थितियों में व्याप्त राजनीति सम्बन्धी प्रमुख तथ्यों का आवश्यक संकेत आगे किया गया है ।

6. क. II राजा

राजा (सं. राजन्) शब्द 'राज' धातु में 'अन्' प्रत्यय जुड़ने से बना है, जिसका अर्थ है वह व्यक्ति जो किसी राज्य (भूखण्ड) का स्वामी हो और उसमें बसने वाले लोगों पर सब प्रकार के शासन करता हो एवं दूसरे राजाओं के आक्रमणों आदि से उनकी रक्षा करता हो । 'महाभारत' में राजा के गुणों और कर्त्तव्यों की जो विवेचना मिलती है, उसके अनुसार उसमें दो गुणों का होना आवश्यक है -- (i) प्रजारंजन (लोकरंजन)[6] और (ii) प्रजापालन (लोकरक्षण)[7] । राज्य में विभिन्न कारणों से अशान्ति एवं प्रजा की अरक्षिततता उपस्थित होने की संभावना होती है । जिनसे प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य होता है । इसी कारण राज्यारोहण करते समय राजाओं में प्रतिज्ञा करायी जाती थी कि मैं भूमि पर ब्रह्मस्वरूप प्रजा का पालन करूँगा -- 'पालयिष्याम्यहं भौमब्रह्म इत्यैव चासकृत ।'[8] अतः अकारण नहीं कि भारतीय राजनीति में राजा को काल का कारण अर्थात् काल का नियामक माना गया है ।[9] इस सिद्धांत से राजा अथवा शासन विभिन्न कालचक्रों (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) का कारण होता है । सम्यक राजनीति (दण्ड नीति) का परित्याग और असत् उपायों से प्रजा-पीड़न करना ही कलियुग[10] माना गया है। विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने अपने समय के राजाओं एवं उनकी राजनीति के जो चित्र पौराणिक राजाओं के अंकन के मिस रूपकों आदि में उपस्थित किया है, उनका मूल्यांकन उपरि उल्लिखित आधारों पर ही किया जाना चाहिए ।

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने राम के लिए प्रायः नृप, नृपति, भूपाल, महिपाल, नरनाथ, भूपति, महीप, महीस आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं । दोनों की दृष्टि में भारतीय राजशास्त्र में वर्णित धार्मिक राजे ही आदर्श हैं, किन्तु युगीन राजाओं को दोनों ने

अधार्मिक माना है ।[11] विष्णुदास तो हिन्दू राजा के अधीन थे, पर तुलसीदास के समय मुगलशासक थे । उनके शासन में प्रजा को कष्ट था ।[12] वे राजा कृपालु नहीं थे । उनकी प्रकृति दानव जैसी थी । साधुजन को कष्ट देना एवं दुष्ट प्रकृति के लोगों को प्रोत्साहित करना उन राजाओं का कर्त्तव्य-सा हो गया था ।[13] दोनों ने तद्युगीन राजाओं के कार्यो को म्लेच्छ के कार्यो के समान घोषित किया है ।[14] पूरी राजव्यवस्था अन्याय और अत्याचारपूर्ण थी । मानो भूमिचोर ही भूप बन गये थे । राजे लोभी[15], अहंकारी[16], कामातुर[17], अनाचार-व्यभिचारी[18] हो गये थे । प्रजा का विनाश करना उनका काम हो गया था । आलोच्य कवियों के शब्दों में राजा और उनकी राजनीति का अग्रांकित चित्र तत्कालीन राजनीति को स्पष्ट करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है --

क. विष्णुदास : रावन राजनीति परिहरै । सब जग लोग सतावत फिरै ।
पर धन परतिय लेत छुड़ाइ, दुखी करै सब पृथिवी ।।[19]

ख. तुलसीदास : गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल ।
साम न दाम, न भेद कलि, केवल दंड कराल ।।[20]

वस्तुतः विष्णुदास की उक्ति 'दुखी करै प्रिथिवी' और तुलसीदास की उक्ति 'केवल दंड कराल', महाभारत[21] के कथन से शब्द भेद के बावजूद एक समान तथ्य के ही द्योतक हैं । विष्णुदास एवं तुलसीदास ने उस युग की राजनीति को व्यक्त करने के लिए क्रमशः दुर्योधन एवं रावण के पौराणिक वृत्तों को स्वीकार किया है । दुर्योधन की समृद्धि के पश्चात् युधिष्ठिर ने एवं रावण की समाप्ति के पश्चात् श्रीराम ने जिन आदर्शों की स्थापना करनी चाही है, उन्हीं के आदर्शों को क्रमशः युधिष्ठिर प्रतापभानु और श्रीराम के राज्य (राम राज्य) के वर्णन उपस्थित किये हैं ।

6. ख.II प्रजा

समाज और समाज में प्रचलित राजनीति परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होती है। कहा भी जाता है, यथा राजा तथा प्रजा । विष्णुदास की रचनाओं में वर्णित राजनीति एवं राजनीतिक विचारधारा का अध्ययन तो नहीं हुआ है, पर तुलसीदास एवं उनके रामचरितमानस में वर्णित राजनीतिक विचारों के साथ ही उनकी प्रजा विषयक दृष्टि के कई स्वतंत्र अध्ययन हुए हैं ।[22] 'रामायन कथा' एवं 'महाभारत' में प्रजा विषयक उतने कथन नहीं मिलते हैं जितने 'रामचरितमानस' अथवा 'कवितावली' आदि में । तब भी इतना तो स्पष्ट है ही कि राजा के अधार्मिक, भूमिचोर और अत्याचारी होने पर राज्य के प्रजावर्ग में अशांति, असुरक्षा और अधर्म की वृद्धि हो जाना स्वभाविक है । दोनों कवियों ने प्रजा की इस स्थिति का बड़ा विस्तृत वर्णन 'कलि-वर्णन' में रखा है ।[23] इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी छिटपुट वर्णन हुए है । समाज पर विचार करते हुए पिछले अध्याय में इस पर आवश्यक विचार किया जा चुका है । कलि-वर्णन यद्यपि पुराणानुसारी है, तथापि उसमें व्यंजित कटु सत्य की मात्रा कम नहीं है । संक्षेप में दोनों कवियों के अनुसार प्रजा का स्वभाव ही बिगड़ गया था । सर्वत्र आचार भ्रष्टता थी । लोग लोभी और कामी बन चुके थे । राजनीति का उद्देश्य मात्र धन प्राप्त रह गया था । भाग्यवाद का बोलबाला हो गया था । लोग मानते थे 'पूरब लिखौ न मेटौ जाई' ।[24] कृषि से जो उपजता, उसे राजा ले लेता था, सर्वत्र हाहाकार था, राज सेवक पूरी तरह बिगड़ गये थे ।[25] राजसेवकों का काम मानों केवल कर वसूलना भर रह गया था ।[26] देह धर्म को प्रमुखता प्राप्त होने के कारण ही कदाचित् अत्याचार का अधिक सहारा लिया जा रहा था ।[27] विष्णुदास और तुलसीदास के शब्दों में--

विष्णुदास : *लोभ लगत लगि करै अकर्म । दुष्टाई कौ किछु न सर्म ।*[28]

तुलसीदास : मारग मारि, महीसुर मारि । कुमारग कोटिक कै धन लीयौ ।[29]

इस वर्णन से इतना अनुमान करना सहज हो जाता है कि विष्णुदास और तुलसीदास के समय समाज में राजनीतिक दुर्व्यवस्था थी । उस समय के राजाओं ने परम्परागत आदर्श से छुट्टी पा ली थी । विष्णुदास यद्यपि हिन्दू राजा डूँगरेन्द्र सिंह के आश्रित थे, तथापि उनके राज्य की स्थिति भी भिन्न नहीं थी । तुलसीदास के क्षेत्र में विदेशी मुगलों का शासन जो कुरान और हदीस पर आधारित भारतीय आदर्शों से भिन्न रूप में था। राजनीतिक दुरवस्था अंकित करने के लिए विष्णुदास ने दुर्योधन और रावण को एवं तुलसीदास ने रावण के शासन को प्रतीक रूप में स्वीकार किया है ।

6. III राजनैतिक आदर्श

विष्णुदास और तुलसीदास को भारतीय परम्परा से मान्य राजनैतिक आदर्श ही स्वीकार्य हैं । दोनों ने राजनीति को धर्म से मिलाकर ही रखा है । केन्द्र में है धर्म एवं उसी के चारो ओर सभी वस्तुएँ घूमती हैं जिसमें राजनीति भी है । तात्पर्य यह कि राजा को धार्मिक होना चाहिए, राष्ट्र और प्रजा में भी धर्म को प्रधानता मिलनी चाहिए । यहाँ धर्म का संकीर्ण अर्थ 'रिलिजन' नहीं, विस्तृत अर्थ सम्पूर्ण जीवन-पद्धति 'वे आफ लाइफ' स्वीकार किया गया है, एवं उसकी रक्षा और उन्नति के लिए राजा की आवश्यकता बतायी गयी है। महाभारत में कहा गया है 'धर्माय राजा भवति न काम कारणाय तु' ।[30] तात्पर्य यह कि राजा और राज्य की सिद्धता धर्म के पालन के लिए हैं । विष्णुदास ने राजा युधिष्ठिर एवं दोनों कवियों ने दशरथ आदि का अंकन धर्मपरायण राजा के रूप में ही किया है । धैर्यपूर्वक प्रजा का पालन करना ही राजा का धर्म वर्णित हुआ है (महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय - 71)।

6. क. III राजनीति का आधार : राज-धर्म

महाभारत में राज-धर्म के रचयिताओं (राजशास्त्र प्रणेतारः) में वृहस्पति,

विशालाक्ष, शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचतेस् मनु, भारद्वाज और गौड़शिरस, ये आठ नाम गिनाये गये हैं ।[31] उनके द्वारा अग्रसारित सिद्धांतों के आधार पर चलनेवाली राज व्यवस्था भारत में आदर्श मानी जाती रही है । विष्णुदास और तुलसीदास ने इनमें किसी भी एक के विचार को अपनाया नहीं है । पुनः दोनों की रचनाओं में राज-धर्म की कोई सुविचारित सैद्धांतिक व्यवस्था भी नहीं मिलती है । वस्तुतः दोनों राज-धर्म सम्बन्धी कतिपय मुख्य बातों को अपनी कृतियों में प्रसंगानुसार स्थान दिया है । यद्यपि विष्णुदास राजाश्रित कवि थे, तथापि उनकी अपेक्षा तुलसीदास की कृतियों में ही 'राज-धर्म' की बातें अधिक मिलती हैं, भले ही वे चलते रूप में ही क्यों न प्रयुक्त हुए हों ।[32]

प्राचीन राजशास्त्रियों ने षाड़गुण्य[33] के पालन पर ही सप्तांग राज्य की अवनति और उन्नति का निर्भर होना बताया है । विष्णुदास एवं तुलसीदास की रचनाओं में उसका एकत्र उल्लेख नहीं हुआ है, उन्होंने कहीं उनका नाम ही लिया है, पर जब वे दोनों राजधर्म के पालन की बात करते हैं तो उनमें षाड़गुण्य के पालन की बात मानना ही उचित होगा। विष्णुदास के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित को राज्य सौंपे जाने के पूर्व राजनीति का उपदेश करते हुए कहते हैं --

बहतु कहा सिखऊँ तुम जोगु । राजनीति प्रतिपालौ लोगु ।[34]

और तुलसीदास 'वेदोक्तमार्ग' के पालन की बात करते हैं --

राजु कि रहउ नीति बिनु जानें । अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें ।[35]

कौटिल्य निरूपित राजधर्म का सारांश इस रूप में स्वीकार किया जा सकता है --

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ।।

तस्मान्नित्योत्थितो, राजा कुमदिर्थानुशासनम् ।

अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ।।[36]

आलोच्य कवियों को भी दो बातें मान्य हैं । तुलसीदास के राम ने भरत को देश, कोष, कुटुम्ब, परिवार के साथ मुखिया के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए घोषणा की है -- 'राजधरम सरबसु एतनोई ।'[37] विष्णुदास के राम ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राजसिंहासन प्रदान करने के पूर्व भी इसी प्रकार की राय देते हुए कहा है --

'राजनीत प्रतिपालहु राजु ।'[38] इस कथन में कौटिल्य द्वारा स्वीकृत प्रजासुख, उत्थान, अर्थानुशासन (कोषवृद्धि) को नीति सम्मत स्थान मिल गया है । विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों ने उस राजधर्म को व्यावहारिक स्तर पर स्वीकार किया है । विष्णुदास के युधिष्ठिर, दशरथ, राम और जनक एवं तुलसीदास के प्रतापभानु, भरत आदि के आदर्श इसी के अनुरूप हैं ।

6. ख. III मंत्रिपरिषद

राज्यशासन के साथ ही राजा के पश्चात मंत्रियों और उनके परिषद अर्थात् मंत्री-परिषद का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है । विष्णुदास एवं तुलसीदास की रचनाओं में भी मंत्रियों को विशेष महत्व तो मिला है, पर मंत्री-परिषद या उससे संबंधित उल्लेख व्यवस्थित रूप में नहीं हुए हैं । उनकी रचनाओं के आधार पर मंत्री-परिषद के स्वरूप, उनके गठन, उनके कार्य आदि का ब्यौरेवार वर्णन नहीं हुआ है ।

दोनों की रचनाओं के मंत्रियों के उल्लेख हुए हैं । यथा दशरथ के मंत्री सुमंत, जनक के मंत्री शतानंद, रावण के मंत्री माल्यवंत और विभीषण, सुग्रीव के मंत्री हनुमान, प्रतापभानु के मंत्री धर्मरूचि, धृतराष्ट्र के मंत्री विदुर आदि । मंत्री परिषद अथवा मंत्री विषयक उल्लेख विष्णुदास की तुलना में तुलसीदास में अधिक मिलता है । राम के राज्याभिषेक के पूर्व दशरथ का मंत्रिपरिषद से विचार-विमर्श करने[39], सुग्रीव का अपने मंत्री-परिषद से मंत्रणा करने[40], रावण का अपने मंत्री-परिषद से मंत्रणा करने[41], रावण से

युद्धपूर्व राम का सुग्रीव आदि से मंत्रणा करने[42] आदि के प्रसंग इस दृष्टि से उदाहृत किये जा सकते हैं । तुलसीदास के अनुसार मंत्री केवल एक राज्य का कर्मचारी भर नहीं, वरन् राजा का सर्वाधिक विश्वास पात्र होता है । दशरथ के लिए सुमंत केवल मंत्री नहीं, 'प्रियतम' और 'सखा' भी है ।[43] राम आदि सभी राजकुमार उन्हें 'चाचा' कहते हैं । राम सुग्रीव एवं विभीषण को 'सखा' कहकर संबोधित करते हैं ।[44] आलोच्य कवियों ने राजा के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन में मंत्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की है । मंत्रियों की योग्य राय पर ही कार्य की सफलता-विफलता निर्भर करती है । इसी कारण आलोच्य कवियों की राय में मंत्री को सब प्रकार के भय, डर आदि को छोड़कर सदा सत्य और उचित बात कहनी चाहिए । खुशामद में केवल मीठी और चिकनी चुपड़ी बातों से राजा को खुश तो किया जा सकता है, पर उससे राजा की हानि ही होती है । विष्णुदास की स्पष्ट मान्यता है --

वैद पुरोहित मंत्री जासु । तीनौं बोलहिं राज सुहासु ।।
काया धर्म अर्थ की हानि । ता लगि तीनौं करहिं कानि ।।[45]

उन्होंने अन्यत्र भी इस सम्बन्ध में लिखा है --

बचन सुहातो अधिक अहारू । ए जब तब दुख सहहिं अपारू ।
सो मंत्री जो करहि न कानि । बोलै धर्म पाप पहिचानि ।।[46]

विभिषण लंका एवं रावण की सभा का परित्याग इसी कारण करता है कि उसकी सही बात की भी अनसुनी की जाती है । वह यह कहते हुए सभा का परित्याग करता है --

तू साईं अरू जेठौ भाइ । जो हौं लात प्रहारयौ साँइ ।।
मोहिं न कछुवै विसमौ दाप । फिर नृप तोहिं होइ संताप ।।[47]

निश्चय ही राजनीति बड़ी ही दुस्तर है । जैसे धर्म का मूल परोपकार है, वैसे ही राजा

द्वारा व्यावहारिक राजनीति का पालन करना है । विष्णुदास की मान्यता है --

क. राजनीति अति अगम विलास । दसए दाउ जो मंत्र प्रकास ।

कर्म विचारि जो करिहै कोइ । ता पाछैं तें दोष न होइ ।[48]

ख. धर्म मूल ज्यों पर उपगार । राजहिं राजनीति व्यवहार ।।

राजनीति राजनि आभरनि । राजनीति दुस्तर भय तरनि ।।

राजनीति सुख सुजस भँडार । मूलगयैं निरफल व्यौहार ।।[49]

तुलसीदास मानते हैं 'कि प्रजा, राज, समाज, घर, अपना शरीर, धन, धर्म और सेना को शान्त और सुयोग्य मंत्रियों के हाथ सौंपकर ही राजा सुख पूर्वक रह सकता है (दोहावली - 521) ।' अस्तु, उचित सलाह देना आवश्यक है । वैसा नहीं करने पर राजा और राज्य पर अनेक प्रकार के खतरे आ जाते हैं । तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर तुलसीदास की रचनाओं में मंत्री एवं मंत्री परिषद से सम्बन्धित वर्णन अधिक मिलते हैं ।

6. ग. III पुरोहित

आजकल पुरोहित से सामान्य अर्थ लिया जाता है कर्मकाण्ड जानने वाला वह ब्राह्मण जो धार्मिक कृत्य, संस्कार आदि सम्पादित कराता है, किन्तु प्राचीन समय में इसका अर्थ अपेक्षया अधिक विस्तृत था । भारतीय राज-धर्म में राजाओं के कुल-पुरोहितों, कुल-गुरूओं, आदि का विशेष महत्त्व होता था । विष्णुदास और तुलसीदास ने पुरोहित विषयक प्राचीन और पारम्परीण अर्थ ही स्वीकार किया है । दोनों की रचनाओं में कुल पुरोहित वसिष्ठ का अद्वितीय महत्त्व है । वे दशरथ परिवार के अभिन्न अंग हैं । उनकी ही राय सुनकर एवं उसके अनुरूप यज्ञ सम्पादित कर पुत्रहीन दशरथ पुत्रवान बनते हैं । राज्याभिषेक के पूर्व दशरथ ने वशिष्ठ से ही आज्ञा ली है ।[50] वन जाते समय राम अपने अधीनस्थ दास-दासियों का दायित्व वसिष्ठ को ही सौंपते है ।[51] दशरथ की मौत के पश्चात् वसिष्ठ ही भरत को राज्य का दायित्व वहन करने का आदेश देते हैं ।[52] चित्रकूट

में राम ने राज्य के शासन में कुल-गुरू के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि गुरु के चरणरज की कृपा से राज्य, कोष, कुटुम्ब, परिवार आदि सबका उत्तरदायित्व पूरा होता है।[53] राजगुरू के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए तुलसीदास के राम का यह कथन ही पर्याप्त है । राजकुल अयोध्या में जो महत्त्व वसिष्ठ को प्राप्त है, वही महत्त्व कुलगुरू वामदेव को मिथिला राज्य में प्राप्त है ।[54] दोनों कवियों ने राजगुरू अथवा कुलगुरू या पुरोहित का महत्त्व यद्यपि एक समान ही बताया है, तथापि तुलसीदास में उसका विवरण बड़ा ही स्पष्ट और विशद है । विभिन्न अवसरों पर उन्हें दान दिये जाने का भी कथन हुआ है । ऊपर कहा गया है कि राजमंत्री और राजवैद्य की तरह ही राजगुरु या कुल पुरोहित सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति होते थे एवं उनसे भी यही अपेक्षा की जाती थी कि सब प्रकार से भयमुक्त हो राजकुल और राज्य की सब प्रकार से उन्नति की क्रियाएँ करें।

6. घ. III राज्य का भू-भाग : ग्राम और नगर

प्रत्येक राज्य का एक निश्चित भूभाग होता है । आलोच्य कवियों ने दशरथ, जनक,बालि, रावण एवं धृतराष्ट्र (कौरव), पांडव (केवल विष्णुदास) ने वर्णन किये हैं, पर किसी के भी राज्य की सीमा का उल्लेख नहीं किया है । इसके लिए किसी प्रकार का सिद्धांत भी नहीं दिया गया है । राज्य की समृद्धि के लिए राजाओं की ओर से किये जाने वाले उपायों या कार्यो के भी उल्लेख किसी ने नहीं किये है ।

दोनों कवियों ने राजधानी नगर के रूप में अयोध्या[55], जनकपुर[56], किष्किन्धा[57], लंका[58] का उल्लेख किया है । विष्णुदास ने महाभारत में हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ[59] का भी उल्लेख किया है । नगरों के वर्णन में वहाँ बाग-बगीचे, तालाब आदि के भी वर्णन हुए हैं । नगरों की सीमा निर्दिष्ट नहीं है । तुलसीदास ने नगरों के वर्णन में विस्तार की अपेक्षा भव्यता को महत्त्व दिया है । उन्होंने 'देखि नगरू बिरागु बिसरावहि' और 'जातरूप मनि रचित अटारी[60] (अयोध्या) और 'बनइ बरनत नगर निकाई'[61] (जनकपुर) जैसी उक्तियों

से नगरों के वैभव का पूरा संकेत कर दिया है । तुलसीदास का यह वर्णन कौशल विष्णुदास में नहीं है। गाँव और गाँव के परिवेश का वर्णन प्रायः किसी भी कवि ने नही किया है । तुलसी ने राम-वनगमन के प्रसंग में ग्रामीण परिवेश का किंचित् उल्लेख अवश्य किया.हे ।[62] कवितावली में ग्रामीण नगरों का भी उत्तम वर्णन हुआ है ।[63] तुलसीदास ने चित्रकुट के वर्णन में विशेष रूचि दिखायी है । 'रामचरितमानस' एवं 'कवितावली' में चित्रकूट के वर्णन इसी का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं । इसके विपरीत विष्णुदास में किष्किन्धा के चतुर्दिक रम्य प्रकृति, लंका के अशोक-वन, महाभारत के खाण्डव-वन के वर्णन में विशेष रूचि दिखायी है ।

दोनों कवियों ने विभिन्न नगरो, नदियों, पहाड़ों, वनों आदि के वर्णन किये हैं जो राज्य की समृद्धि के सूचक हैं । साथ ही वे सब उनकी पौराणिक पहचान के भी सूचक माने जायेंगे । किन्तु उन नगरों में किस प्रकार की राजनीतिक हलचल, राजनीति विषयक वातावरण का उल्लेख प्रायः नही हुआ है । राम के अभिषेक की बात सुन अयोध्या वासियों में हर्ष-उल्लास का होना स्वाभाविक है । उनके वन-गमन की बात सुन लोग दुखी भी होते हैं, पर उसका प्रतिकार नहीं करते, न राजनैतिक स्तर पर उसका समाधान खोजने की पहल करते हैं । यह इस बात का सूचक है कि राजनीति में राजाज्ञा सर्वोपरि होती थी । राज्य के ग्राम या नगर निवासी का राजनीति निर्धारण में स्थान एकदम शून्य था । इस सम्बन्ध में दोनों कवियों के वर्णनों में पूरी समानता है ।

6. ङ. III राजकोष

राज्य संचालन एवं राज्य की समृद्धि के लिए राजकोष की आवश्यकता होती है। सभी राजशास्त्रियों ने राजकोष की समृद्धि पर बल दिया है । राजशास्त्रियों ने राजकोष संग्रह के दो साधन बताये हैं -- कर वसूली एवं दूसरे राज्यों के विजय आदि से प्राप्त धन। आलोच्य कवियों ने राजकोष को पर्याप्त महत्व तो दिया है, कोष समृद्धि के उपायों का

सिद्धांत रूप में कथन नहीं किया है ।

कोष की समृद्धि का प्रमुख साधन है प्रजा से कर वसूल करना । तुलसीदास ने इसके लिए साम, दाम नीति को अपनाने एवं प्रजा के हित की रक्षा करने पर बल दिया है।[64] उन्होंने कर वसूलने की तीन प्रक्रियाएँ मानी हैं -- उत्तम, मध्यम और अधम । उत्तम प्रक्रिया वह है जैसे वृक्ष के केवल पके फल को तोड़ना, मध्यम प्रक्रिया है अधपके फलों को तोड़कर घर में पकाना और अधम प्रक्रिया है कच्चे फलों को पत्ते इत्यादि के साथ ही नोंच डालना ।[65] भारत कृषि प्रधान देश है । तुलसी का ध्यान इस ओर भी गया है । इसलिए उन्होंने मन्तव्य दिया है कि किसान जब फसलों के पक जाने पर उन्हें खेतों से काटकर घरों तक ले आये, तभी अर्थात् किसानों की सम्पन्नता की स्थिति में ही राजाओं को उनसे कर वसूलना उत्तम होता है । सूरज को प्रतीक रूप में स्वीकार कर उन्होंने कहा है कि वाष्पीकरण द्वारा सूर्य जल को सोख लेता है । उसकी यह क्रिया लोगों से अलक्षित रहती है, किन्तु वही जल वर्षा के रूप में पुनः पृथ्वी पर आता है तो लोग प्रसन्नता का अनुभव करते हैं । तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने अप्रत्यक्ष कर को महत्त्व दिया है । कर वसूलने की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि प्रजा को कष्ट नहीं हो एवं प्रजा की दयनीय स्थिति में राज्य-शासन को पूरी उदारता से उनकी सहायता करनी चाहिए । इससे जनता में प्रसन्नता होती है । तुलसीदास के अनुसार बड़े सौभाग्य से कोई-कोई राजा प्रजानुरंजक होता है।[66]

उत्तर-मध्यकाल के मुस्लिम शासन में लूट-खसोट द्वारा भी धन संग्रह किया जाता था । किन्तु आलोच्य कवियों में से किसी ने भी उसका उल्लेख नही किया है । यों रावण के कृत्यों से तुलसीदास ने इस बारे में परोक्ष संकेत अवश्य किये हैं । तुलसी ने कर वसूलने की क्रिया को गाय के रूपक द्वारा भी स्पष्ट किया है --

धरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा-सुबच्छ पेन्हाइ ।
हाथ कछू नहिं लागिहै, किए गोड़ की गाइ ।। दोहावली, 512

विजय में प्राप्त धन से भी कोष वृद्धि होती थी, पर आलोच्य कवियों ने उसे महत्त्व नहीं दिया है । विष्णुदास ने जहाँ कर वसूलने का उल्लेख भर किया है, वही तुलसीदास ने कर वसूलने की प्रक्रिया पर 'दोहावली' में विभिन्न उदाहरणों से अधिक स्पष्टता से विचार किया है । तुलसीदास की रीति अधिक व्यावहारिक और उदार है ।

6. च. III दण्ड और न्याय

राजशास्त्रियों ने सुयोग्य प्रशासन के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद, इन चार पद्धतियों को स्वीकार किया है । विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में भी ये पारम्परीण रूप में विविध प्रसगों में स्वीकृत हुए हैं, पर तुलसीदास की तुलना में विष्णुदास में इनका उल्लेख व्यवहारिक रूप प्रायः कम ही मिलता है । तुलसीदास ने साम, दाम दण्ड और भेद के योग्यतापूर्वक उपयोग पर बल दिया[67] है । इनके कुशल और निष्पक्ष उपयोग से लोग बुरे मार्ग पर चलने में डरते हैं[68], लेकिन कलिकाल में मुस्लिम बादशाह राजनीति में केवल कठोर दण्ड का ही प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं ।[69]

दोनों कवियों ने दण्ड का उपयोग दुष्टों, दुर्नीति आदि का दमन करने के लिए कराया है । दोनों के राम ताड़का[70], सुबाहु[71], खर-दूषण[72], रावण[73] जैसे अत्याचारी और दुष्टों को दण्डित करते हैं। दोनों की दृष्टि में ईश्वर के अवतार का कारण दुष्टों को दण्डित करना ही है । इसी से धर्म ओर सज्जनों की रक्षा होती है ।[74] तुलसीदास यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि अन्य नीतियों के विफल होने पर ही दण्ड का उपयोग किया जाना चाहिए । इसका सर्वोत्तम उदाहरण समुद्र पर राम का क्रोध है । वे तीन दिनों तक विनयपूर्वक प्रतिक्षा करते हैं एवं उसके पश्चात् ही उसे दण्डित करने की बात सोचते हैं । उक्त प्रसंग में तुलसीदास ने वह बहुचर्चित कथन रखा है जिसमें कुछ विशेष प्रकार के लोगों -- ढोल, गँवार, शुद्र, पशु और नारी के भी ताड़न की बात कही है ।[75] विष्णुदास और तुलसीदास के राम ने बाली का भी वध किया है, पर उसका कारण औरों से भिन्न है--

विष्णुदास : देखतमूरख हिए विचारि, क्यौं हरि लै लहुरे की नारि ।।

हम जानत नरवैके धर्म, भ्रिगया सदा हमारौ कर्म ।।

तुलसीदास : अनुज वधू भगिनी सुतनारी, सुनुसठ कन्या सम ए चारी ।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ कोई, ताहि बधे कछु पाय न होइ ।

रामचरितमानस - 4/9/4

वस्तुतः दण्ड का उपयोग अंतिम उपाय के रूप में दोनों ने कराया है । सुग्रीव द्वारा कर्तव्य को भुला दिये जाने पर राम ने लक्ष्मण को कहा है --

भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।[76]

सुशासन का एक प्रमुख आधार योग्य न्याय-व्यवस्था भी होता है । इस सम्बन्ध में विष्णुदास की अपेक्षा तुलसी - साहित्य में उदाहरण अधिक सहजता से प्राप्त होते हैं । राम राज्य के वर्णन में कहा गया है दण्ड केवल संन्यासियों के हाथ में ही रह गया है । वस्तुतः राम-राज्य के सुशासन का ही परिणाम माना जायेगा । सुशासन का परिणाम है कि सभी उदार और परोपकारी है । यों तब भी श्वान[77], पुत्र की मृत्यु वह ब्राह्मण[78], गीध और उल्लू[79] (तुलसी के यहाँ खग-उल्लू) को न्याय के लिए राम के पास जाना पड़ा एवं राम ने उन्हें उचित न्याय प्रदान किया था ।

इस वर्णन से विदित होता है कि आलोच्य कवियों का ध्यान सुशासन पर टिका है । सुशासन के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति को दोनों ने महत्वपूर्ण स्वीकार किया है । दण्ड का उपयोग दुष्टों के दलन एवं योग्य न्याय दिलाने के लिए दोनों में हुआ हैं । इसके बावजूद यह कहना सार्थक है कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास की दृष्टि इस विषय में अधिक स्पष्ट और व्यापक है ।

6. छ. III युद्ध और योधन नीति

राजनीति का एक प्रमुख अंग है युद्ध और उससे सम्बंन्धित नीति । इसके बारे

में दोनों की कृतियों में विवरण प्राप्त होते है । युद्ध एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार के छल-छद्म एवं विभिन्न योजनाओं की आवश्यकता होती है । युद्ध के पहले मंत्रणा, युद्ध में दूतों और गुप्तचरों की भूमिका, युद्ध हेतु अस्त्र-शस्त्र और सेना की तैयारी, युद्ध में व्यूह रचना और सैन्य संचालन आदि का विशेष महत्व होता है । धार्मिक प्रवृत्ति एवं भक्त होने के बावजूद विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में इस संबंध में प्रत्येक प्रकार की बातों का उल्लेख या वर्णन हुआ है, जिन्हें आगे अलग-अलग शीर्षकों में विवेचित किया जाता है ।

युद्ध के प्रकार

दोनों कवियों द्वारा वर्णित युद्धों के दो प्रकार मिलते हैं -- वैयक्तिक और सामूहिक । वैयक्तिक युद्धों की अपेक्षा दोनों में सामूहिक युद्धों के वर्णन अधिक हुए हैं । वैयक्तिक और सामूहिक वर्गों के युद्धों के अतिरिक्त उनके कुछ ओर भी वर्ग बनाये जा सकते हैं । यथा --

1. **मानव का मानव के साथ युद्ध** - भीम का दुर्योधन, कीचक, जरासन्ध से युद्ध, भरत का लव-कुश आदि के साथ युद्ध, पांडवों का कौरवों से युद्ध आदि ।
2. **मानव का राक्षस / असुर से युद्ध** - राम-रावण युद्ध, राम-खरदूषण युद्ध
3. **वानर का वानर के साथ युद्ध** - बालि-सुग्रीव युद्ध
4. **देवता का असुर-दानव के साथ युद्ध** - देवासुरसंग्राम, रावण-इन्द्र युद्ध
5. **राक्षस का वानर-भालू के साथ युद्ध** - हनुमान-सुग्रीवादि का लंका के राक्षसों के साथ युद्ध
6. **पुरुष का स्त्री के साथ युद्ध** - राम-ताड़का, हनुमान-लंकिनी युद्ध, कृष्ण-पूतना
7. **पक्षी का पक्षी से युद्ध** - गीध और उल्लू युद्ध (रामायन कथा)
8. **माया युद्ध** - मेघनाथ-लक्ष्मण युद्ध ।

सामूहिक युद्धों में सर्वोपरि महत्त्व का युद्ध है -- राम-रावण युद्ध । वैयक्तिक युद्ध में भीम-जरासंघ का मल्लयुद्ध अधिक महत्त्व का हो गया है । विष्णुदास ने इसका वर्णन कौशलपूर्ण किया है (महाभारत, पृ. 71) । एकचक्रा नगरी में भीम और दानव का मल्लयुद्ध (महाभारत, पृ. 41) भी उत्तम बना है । अधिकांश सामूहिक युद्धों के वर्णन में काफी भयंकरता मिलती हैं । मेघनाथ के मायायुद्ध से निपटने के लिए राम-पक्ष को भी मायायुद्ध की पद्धति अपनानी पड़ी है । सारतः यही कहा जायेगा कि दोनों कवियों ने विभिन्न प्रकार के युद्धों के वर्णन किये हैं ।

युद्ध मंत्रणा :

युद्ध करने के पहले मंत्रियों, सेनापतियों आदि की राय जानना एवं युद्ध सम्बन्धी विभिन्न बातों के लिए विचार-विमर्श करना आवश्यक होता था । इस सम्बन्ध में विष्णुदास और तुलसीदास की कृतियों में उल्लेख हुए हैं । महाभारत युद्ध के पूर्व पाण्डव और कौरव दोनों अपने अपने पक्ष के लोगों से विचार-विमर्श करते हैं । विष्णुदास ने इनका यथास्थान[80] उल्लेख किया है । इसी प्रकार दोनों कवियों के राम और रावण भी युद्धपूर्ण मंत्रणाएँ करते हैं। सुग्रीव, विभीषण आदि सचिवों के साथ राम के मंत्रणा करने की बात दोनों ने कही है।[81] तुलसीदास के राम तो विभीषण के साथ कानोंकान सलाह करते हैं ।[82] उससे मंत्रणा की गोपनीयता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है । मंत्रणा करते समय तुलसीदास ने राम के शिविर में बरती जाने वाली सावधानी का भी उत्तम परिचय दिया है । राम सुबेल पर्वत पर अपने सचिवों के साथ मंत्रणा करते हैं ।[83] रावण की मंत्रणा का भी दोनों ने वर्णन किया है ।[84] स्पष्ट है कि युद्ध पूर्व मंत्रणा को दोनों कवियों ने समान रूप में महत्त्व दिया है । विष्णुदास ने तो 'मंत्र मूल राजा त्यौं कहै' (127/57) कहकर उसकी महत्ता बतायी है ।

गुप्तचर एवं दूत :

राज्य शासन में गुप्तचरों का महत्त्व तो सदा होता है, पर युद्ध के समय इनकी

भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है । गुप्तचरों का राजशास्त्रियों ने राजा की आँख से उपमित किया है विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों की रचनाओं में गुप्तचरों एवं दूतों के वर्णन हुए हैं ।

हनुमान सुग्रीव-सचिव हैं, पर आवश्यकता पड़ने पर गुप्तचर और दूत का काम भी उत्तम ढंग से करते हैं । सीता की खोज करते हुए राम-लक्ष्मण दोनों सरोवर के निकट पहुँचे । सुग्रीव ने पहाड़ के ऊपर से उन्हें देखा और उसने हनुमान को गुप्तचर के रूप में वहा उनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी के लिए भेजा ।[85] राम पक्ष के भेद को जानने के लिए शुक-सारण रावण के दूत बनकर राम के शिविर में जाते हैं एवं पकड़े जाने पर उन्हें छोड़ दिया जाता है । वे ही लौटकर रावण को वहाँ का सारा भेद बताते हैं ।[86] युद्ध के पूर्व रावण के यहाँ राम ने अंगद को दूत बनाकर भेजा[87] है । रावण-अंगद संवाद के रूप में दोनों कवियों ने उसे महत्त्व दिया है, पर तुलसी का यह वर्णन अपेक्षया विस्तृत और उत्तम है । रावण क्रोध कर अंगद का वध करना चाहता है, पर दूत के अवध्य होने के कारण वह छोड़ दिया जाता है । तुलसीदास के खर-दूषण भी युद्ध करने के पूर्व राम के पास दूत भेजते हैं ।[88] विष्णुदास ने महाभारत युद्ध के पूर्व कृष्ण से दौत्य कर्म करवाया है । वे पाण्डवों की ओर से कौरव सभा में दूत बनकर गये है ।[89] इस विवरण से स्पष्ट है कि गुप्तचर और दूत को दोनों कवियों ने प्रायः समान रूप से महत्त्व दिया है ।

अस्त्र-शस्त्र और वाहन :

आलोच्य कवियों ने युद्धों में प्रयुक्त होनेवाली अस्त्र-शस्त्रों के उल्लेख किये हैं । अधिकांश अस्त्र-शस्त्र पारम्परीण हैं । विष्णुदास ने धनुष-वाण, खाण्डा, गदा, परशु, मूषल, असि, सुदर्शन चक्र, परिध, पट्टिश, शूल, तोमर, त्रिशूल, सुर, अर्द्धचंद्र पाश, चक्र आदि के उल्लेख महाभारत में किये हैं । 'रामायन कथा' एवं 'रामचरितमानस' में भिंडीपाल सांगी (बरछी), तोमर, मुद्गर, फरसा (परशु), शूल, दुधारी तलवार, परिध, धनुष-बाण, शक्ति,

कृपाण आदि के उल्लेख हुए हैं । वानरों एवं राक्षसों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले हथियारों में पेड़ों की डालियाँ, चट्टान एवं दाँत और नख को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । हनुमान के मुक्कों और थप्पड़ों के साथ पूँछ में लपेटकर पटकने के भी उल्लेख हुए हैं ।

युद्ध के वाहनों में रथ, घोड़े और हाथी के उल्लेख दोनों ने किये हैं । इनके अतिरिक्त तुलसीदास ने जल-जन्तु के साथ ही गदहों को भी स्वीकार किया है ।[90] विष्णुदास ने गदहे जुते रथ का वर्णन किया है 'गादह वाहन रथ आरूह्यौ ।[91] गदहों एवं गदहे जुते रथों की सवारी राक्षस ही करते हैं, राम पक्ष के लोग नहीं । कहा जायेगा कि दोनों कवियों ने अस्त्र-शस्त्रों एवं वाहनों के वर्णन में परम्परागत पौराणिक आधार को ही महत्त्व दिया है।

सेना और संचालन

विजय का मूल आधार है सेना एवं उसका कुशल संचालन । आलोच्य कवियों में विष्णुदास ने महाभारत में चतुरंग दल, अश्वारोही, गजारोही, रथी एवं पदातिक सेना का उल्लेख किया है । सेना विभिन्न दलों में बँटी हैं । यथा -- यादवगण, अलग-अलग युद्धों में अलग-अलग सेनापतियों के साथ उनकी सेना का भी उल्लेख हुआ है । पाण्डव पक्ष की सेना, कौरव दल की सेना जैसे नाम आये हैं ।

'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' में वर्णित सेना भी अलग-अलग टुकड़ियों में बँटी है । राम पक्ष की बानरी सेना कितनी बड़ी होगी उसकी कल्पना तुलसीदास द्वारा उल्लिखित यूथपतियों की उल्लिखित संख्या अठारह पद्म[92] से अनुमान किया जा सकता है। विष्णुदास में इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता है । रावण की सेना को तुलसीदास ने अपरिमित कहा है ।[93] सैन्य संचालन के समय एवं कभी-कभी युद्ध के बीच में भी विभिन्न तरह के रणवाद्यों के उल्लेख मिलते हैं ।[94] युद्ध के लिए सेना के प्रयाण करने के पूर्व यूथपतियों द्वारा सेना का निरीक्षण भी किये जाने के उल्लेख हुए है । राम की सेना के

युथपति हनुमान, अंगद, विभीषण, सुग्रीव, नल आदि भी अपनी-अपनी सेना का निरीक्षण करते हैं --

> कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ ।
> नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ।।
> प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा ।
> गर्जहिं भालु महाबल कीसा ।।
> देखी राम सकल कपि सेना ।
> चितइ कृपा करि राजिव नैना ।।[95]

विष्णुदास की 'रामायन कथा' में सेनापतियों द्वारा इस प्रकार सेना-निरीक्षण किये जाने का उल्लेख नहीं हुआ है, पर सेना के प्रयास के पूर्व सभी टुकड़ियों के जमा होने का उल्लेख अवश्य हुआ है ।[96] 'रामायन कथा' एवं 'रामचरितमानस' दोनों में उभयपक्षों की सेनाओं के सजाये जाने आदि के उल्लेख हुए हैं । युद्ध के लिए लंका के चारो द्वारों पर रावण द्वारा अलग-अलग टुकड़ियों में बँटकर उनका सामना करती है।[97] इस प्रकार का ब्यौरेवार उल्लेख विष्णुदास ने नहीं किया है । महाभारत में युद्ध के लिए आमने-सामने उसी सेना के मध्य जाकर यह देखना चाहते है कि कौरव पक्ष से कौन-कौन युद्ध के लिए आये हैं । इस निमित्त श्रीकृष्ण उनका रथ बीच में ले जाते हैं । कई दिनों तक युद्ध करने के पश्चात् भी भीष्म पितामह को पराजित नहीं करने पर पाण्डव वीर अर्द्धरात्रि के समय उनसे दुर्योधन को जीतने की रीति पूछने जाते हैं । इस प्रकार वे गंगापुत्र से भेद प्राप्त करते हैं ।[98] युद्ध के समय विरोधी पक्ष को भेद बताना योधन नीति के विपरीत है । भीष्म पितामह सेनापति थे । उन्होंने अपनी मृत्यु का भेद प्रकट कर योधन नीति के विपरीत कार्य किया । कम सेना के बावजूद कुशल सैन्य संचालन एवं छल-छद्म के कुशल उपयोग से पाण्डव कौरवों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । इन सारी बातों का

उल्लेख किये जाने के बावजूद यही मानना पड़ता है कि सैन्य संचालन का जैसा क्रमबद्ध 'रामचरितमानस' में हुआ है, वैसा 'रामायन कथा' या 'महाभारत' में नहीं हुआ है ।

योधन-नीति :

भारत में प्राचीन काल से ही युद्ध के संबंध में बरती जाने वाली कुछ नीतियाँ निर्धारित रही हैं , जिनका पालन किया जाता रहा है । वे नीतियाँ ही योधन-नीति मानी जाती थीं । यों आपद्काल में उन नीतियों का पालन करना आवश्यक नहीं होता था । पर उनके उल्लंघन किये जाने के उदाहरण कम मिलते हैं । आलोच्य कवियों की रचनाओं में भी उनका पालन हुआ है उनका क्रमबद्ध कथन या सिद्धान्त कथन किसी ने नही किया है, पर व्यवहार में ये बातें दिखायी पड़ती हैं --

क. युद्ध केवल दिन मे होते थे, रात में युद्ध नहीं होते थे ।

ख. असहय स्थिति में शत्रु का वध नहीं किया जाता था ।

राम-रावण युद्ध में भी ये नियम मान्य रहे है ।[99] लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर मेघनाद उनकी हत्या नहीं करता है ।[100] इसी प्रकार रावण के मूर्च्छित होने पर जामवंत उनकी हत्या नही करते, केवल लात मारकर चल देते हैं ।[101] किन्तु इनके अपवाद अर्थात् आपदधर्म में योधन नीति छोड़ने की बात दोनों कवियों में वर्णित है । कमर के नीचे गदा नहीं मारने की नीति थी, पर भीम दुर्योधन को गदायुद्ध में गदामार कर दुर्योधन की जाँघ तोड़ते हैं ।[102] 'रामचरितमानस' में विभीषण की राय पर लक्ष्मण सेना लेकर लंका जाते है एवं मेघनाद द्वारा किये जाने वाले यज्ञ का विध्वंस कर उसे यज्ञ करते समय ही युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं । यज्ञ अधूरा रह जाने के कारण ही मेघनाद का वध किया जाना संभव होता है ।[103]

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों कवियों ने युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म स्वीकार

किया है । राम की घोषणा है -- 'हम छत्री मृगया वन करहीं । तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं । रिपु बलवंत देखि नहीं डरहीं । एकबार कालहु सन लरही ।।[104] असमान व्यक्तियों, बलवालों आदि में निग्रह नहीं होना चाहिए ।[105] युद्ध को जनहित के विरूद्ध मानने के बावजूद दोनों धर्म के रक्षार्थ उसे अपरिहार्य मानते हैं । युद्ध का मुख्य लक्ष्य विजय प्राप्त करना होता है --

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ।।

दूतन्ह जाई तुरत सब कहेऊ । सुनि खर दूषन उर अति देहऊ।।

रामचरितमानस - 3/19/7

शत्रु को कभी छोटा या निर्बल मानना योधन-नीति के विपरीत है इसका तात्पर्य यह नहीं कि विजय प्राप्त करने के लिए एकमात्र युद्ध का ही सहारा लिया जाना चाहिए । वस्तुतः शत्रु को यदि प्रेम-भाव से जीत लिया जाये तो उससे अच्छा और कुछ हो ही नहीं सकता । साथ ही उनकी मान्यता है कि दुश्मनी अकारण कभी नहीं होती[106] युद्धों की भयंकरता के वर्णन 'रामायन कथा', 'महाभारत' और 'रामचरित मानस' तीनों में मिलते हैं, जिनका वर्णन विस्तार की दृष्टि से यहाँ रखा जाना ठीक नहीं होगा ।

युद्ध और योधन नीति के विवरणों से स्पष्ट होता है कि उनके वर्णन तो किये हैं दोनों ने, पर सभी विषयों के क्रमिक, सूक्ष्म और ब्यौरेवार विवरण में तुलसीदास विष्णुदास से बीस पड़ते हैं । साथ ही तुलसीदास के वर्णन में विश्वसनीयता भी अधिक है ।

6. IV आदर्श राजा और आदर्श राज्य

भारतीय राजशास्त्रियों के अनुसार राजा को लोकरंजक और लोकरक्षक होना चाहिए । ये दोनों गुण आलोच्य कवियों को भी मान्य है । इन गुणों से युक्त राजे ही धार्मिक भी कहे गये हैं । राजा के इन्हीं गुणों को स्वीकार कर महर्षि व्यास ने प्रजा को पुत्र और राजा को माता-पिता स्वीकार किया है ।[107] तुलसीदास ने दोहावली में कहा है कि

धरती रूपी गौ जब राजा की प्रजा वत्सलता तथा धर्मयुक्त उत्तम चरित्र रूपी चारे को चर कर दुग्धवती होती है और जब प्रजा रूपी सुन्दर बछड़े के द्वारा चोखे जाने पर पेन्हाती है, तभी उत्तम और अधिक दूध मिलता है, सिर्फ गाय की पिछली टांगों को बाँधकर दुहने से कुछ नहीं होता (दोहावली, 512) । उन्होंने प्रजावत्सल राजाओं की तुलना माली, भानु और किसान से की है (दोहावली, 507) । माली मुरझाये हुए पौधें को सींचता है खरपतवार को हटा देता है, कमजोर पौधें को लकड़ी का सहारा देकर बचाता है । तभी फल और फूलों का संग्रह करता है , सूरज बिना किसी को प्रत्यक्ष रूप से कष्ट दिये ही समुद्र, नदी आदि से जल खींच लेता है एवं उसे ही पुनः वर्षा के रूप में लौटा देता है एवं किसान खेत तैयार करता है, खाद देता है, बीज बोता है, सींचता है, फसल की रक्षा करता है एवं पकने पर उसे काटता है । प्रजावत्सल राजा का भी यही रूप होना चाहिए । प्रजापालन के अभाव में राजा कर्तव्यच्युत माना जाता है । दोनों कवियों की दृष्टि में राजा को देवता, ब्राह्मण और गुरू के प्रति भक्त होना चाहिए । साम, दाम, दण्ड और भेद युक्त राजा ही श्रेष्ठ होते हैं । उन्हें ही 'नीतिधर्म के चरन सुहाए'[108] कहा गया है । तुलसीदास के राम ने वनगमन के समय भरत के लिए जो संदेश छोड़ा है, उसमें भी प्रजापालन को महत्त्व मिला है --

कहब सँदेसु भरत के आएँ । नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ।।

पालेहु प्रजहि करम मन बानी । सेएहु मातु सकल सम जानी ।।[109]

भिन्न शब्दों में यही बात चित्रकूट में भी दुहराई गयी है -- पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी'।[110] विष्णुदास एवं तुलसीदास द्वारा वर्णित राजाओं में राम, युधिष्ठिर, प्रतापभानु, दशरथ आदि आदर्श राजा के उदाहरण हैं --

राम - प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम ।[111]

युधिष्ठिर - पुत्रवते करे जन-जन प्रतिपाल ।[112]

प्रतापभानु - अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु ।।[113]

दशरथ - धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी ।

हृदयँ भगति मति साँरगपानी ।[114]

दोनों आलोच्य कवियों के राम इतने प्रजावत्सल हैं कि वे आदर्श राजा और उनका राज्य (रामराज्य) आदर्श राज्य युगों-युगों से स्वीकृत रहा है । हर भारतीय समाजशास्त्री और राजशास्त्री का लक्ष्य रामराज्य की स्थापना करना होता है । इसके बावजूद यह स्वीकार करना पड़ता है तुलसीदास ने विष्णुदास की तुलना में राम को अधिक प्रजावत्सल चित्रित किया है । उन्होंने सिद्धान्ततः ही कथन किया है कि प्रजा का पिता के समान पालन करने वाला ही श्रेष्ठ राजा हैं और वही हैं श्रीराम । इस निमित्त उन्होंने राज्य को मुख की तरह और पेट की तरह स्वीकार किया है ।[115]

जिस राज्य का राजा आदर्श होगा, वहाँ की प्रजा भी आदर्श होगी 'यथा राजा तथा प्रजा' । राज्य में इस निमित्त सुशासन का होना आवश्यक है । इस निमित्त कर्मचारी पर ध्यान रखना आवश्यक होता है । तुलसीदास की स्पष्ट घोषणा है कि राजा की अपेक्षा उसके परिचारक वर्ग (राजकर्मचारी) विशेष दुखदायी होते हैं । इस सम्बन्ध में दोहावली में कई दोहे कहे गये है ।[116] राज्य किसका अचल रहता है, इस बारे में तुलसीदास का कथन है--

भूमि रूचिर रावन-सभा, अंगद-पद महिपाल ।

धरम राम, नय सीय बल, अचल होत सुभ काल ।। दोहावली - 516

यहाँ धर्म रूपी राम और सीता रूपी नीति पर विशेष बल दिया गया है । धर्म और नीति का शासन ही सुशासन होता है एवं उससे राज्य में स्थिरता आती है । इस प्रकार के विचार विष्णुदास में नहीं मिलते हैं ।

दोनों कवियों की दृष्टि में राम की राजनीति आदर्श है जिसकी परिणति

रामराज्य में हुई है । चूँकि राम कथा अति प्राचीन है और अनेक मोड़ों को पार करती हुई 'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' में पुनर्निमित हुई, इस कारण उनमें एक ओर जहाँ पौराणिक और मिथकीय आदर्शों की छाप है, वहीं दूसरी ओर युग की आवश्यकता की निर्मिति भी है । विष्णुदास राजाश्रय में होने का कारण युग की माँग को पूरी तरह समझ नहीं सके थे । तुलसीदास भक्त थे, इस कारण उनके राजनीति विचारों में 'श्रुति-स्मृति' की परम्परा की भी छाया है एवं 'मर्यादा' का नैतिक प्रभाव भी है । इसके बावजूद उन्होंने युग की जटिलता को पकड़ने की कोशिश की है ।

रामराज्य को आदर्श माना है दोनों ने[117], पर तुलसीदास ने रामराज्य का वर्णन अधिक विस्तार से किया है एवं सर्वोत्तम राजव्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत किया है । ध्यातव्य है कि रामराज्य के पूर्व 'दशरथ राज्य' था । राम ने निश्चय ही पूर्ववर्ती दशरथ-राज्य की व्यवस्थाओं में उत्तरवर्ती शासक राम ने क्रान्तिकारी और आमूल-चूल बदलाव किया,तभी वह आदर्श का पर्याय बन सका । आधुनिक युग में महात्मा गाँधी जी ने भी भारतीयों का नेतृत्व रामराज्य लाने का नारा देकर ही किया । दशरथ-राज्य और राम-राज्य के अन्तर को समझने की दृष्टि से परशुराम प्रसंग का किंचित सहारा लिया जा सकता है । शिव-धनुष के टूटने से क्रुद्ध परशुराम अपने को क्षत्रियद्रोही और ब्राह्मण घोषित करते हैं । यदि उस अवसर पर राम में क्षत्रिय जाति के परम्परागत संस्कार प्रबल हो जाते तो भीषण नरसंहार हो सकता था । परशुराम का चिंतन जाति पर आधारित है,जाति विशेष की सुरक्षा एवं विशेष जाति से शत्रुता पर आधारित होने के कारण ही उन्हें रावण के अत्याचार दिखायी नहीं पड़े । वे निरीह क्षत्रियों का मूलोच्छेद करने के विश्वासी हैं, पर राम की पद्धति इससे भिन्न है । वे भूले-भटके, मर्यादा विहीन हुए लोगों को सही राह पर लाने के विश्वासी हैं । दशरथ यद्यपि उत्तम राजा कहे गये है, तथापि उनकी स्थिति परशुराम से शायद भिन्न नहीं होगी । राजा थे दशरथ, पर संवैधानिक व्यवस्था राजपुरोहित एवं

कुल-गुरू वसिष्ठ के हाथों में थी । राम की अहंकार शून्यता के आगे परशुराम को भी पराजय स्वीकार करनी पड़ती है । वे अनुभव करते हैं कि युग को 'धनुर्धर' राम की आवश्यकता है, परशुराम की नहीं ।

राम राज्य "बाहरी ढाँचे में वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित होकर भी वर्ण को नही, व्यक्ति को महत्त्व देता है । जाति और वर्ण का महत्त्व गौण हो जाता है । व्यवस्था गुण-कर्मानुसार निर्धारित होती है । पतिता अहल्या का उद्धार राम करते हैं -- उसे सामाजिक मर्यादा वापस दिलाते हैं । राम निषाद से मित्रता करते हैं और जातीय हीनता से ग्रस्त शबरी को अपनाते हैं ।"[118] राम का मत है कि जाति, पाँति, कुल, धर्म, धन, बल आदि के बड़प्पन से कोई बड़ा नहीं होता जिसमें पीड़ितों के लिए पीड़ा नहीं, वह जलहीन बादल की तरह व्यर्थ है ।

क. जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई, धन बल परिजन गुन चतुराई ।
भगति विहीन नर सोहई कैसा, बिन घाम बारिद देखिय तैसा ।।

ख. जाति पाँति धन धर्म बड़ाई, प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।
सब तजि तुम्हइ रहेउ उरलाई, तेहिके हृदय बसहु रघुराई ।।

राम की मान्यता, यह आचार-विचार-उच्चार ही रामराज्य का मार्ग प्रशस्त करता है । 'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' में अंकित रामकथा जातीय वैषम्य या जातीय विद्वेष का कहीं भी पोषक नहीं है ।

राजनीति में आदर्श राजा और उसके आदर्श राज्य को अधिक महत्त्व मिलता है। 'रामायन कथा' में रामराज्य का वर्णन कुछ छंदों तक ही सीमित है --

तरुवर फूलहिं फलहि सपान । सौति विरह दुख तिय दिल धाम ।।
अरु दीजतु विप्रनि कौं दान । लाख धँनु हरिचंद समान ।।
दिये असंख्य वस्त्र आभरन । लाभ्यौ विप्रनि सेवा करन ।।

बीस कोटि मन सोनौ दियौ । पाछैं अस्वमेघ इक कियौ ।।

अरु दस सहस वृषभ धुर दीन । दीन्हों विप्र देखि धन हीन ।।

रोग सोग अपदा न होइ । विधवा नारि न दीसत कोई ।।

परजा धरम सकल विधि धरै । पर धन लोभ न कोऊ करै ।।

मीचु अकाल होइ नहिं काल । नित माँगे धन बरसहिं माल ।।

कछू अनीत न होइ अकाज । सात दीप महँ पालत राज ।।

मन दे राम कथा जो सुनै । बाढ़ै आयु विष्नु कवि भनै ।।[119]

'रामचरितमानस' का वर्णन विस्तृत है (7/20/4 से 7/23 तक) । यहाँ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं । राम राज्य में --

राम राज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ।

बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ।।

बरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ।।

सब नर करहि परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ।।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अध नाहीं ।।

राम भगति रत नर अरू नारी । सकल परम गति के अधिकारी ।।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरूज सरीरा ।।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ।।

सब निर्दभं धर्मरत पुनी । नर अरू नारि चतुर सब गुनी ।।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ।।

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ।।

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ।।

भुअन अनेक रोम प्रति जासू । प्रभुता कछु बहुत न तासू ।।

सो महिमा समुझत प्रभु कैरी । यह बरनत हीनता घनेरी ।।

सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी ।।

सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं यहा मुनिबर दमसीला ।।

राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ।।

सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नर नारी ।।

एकनारि व्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ।।

दंड जातिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समान ।

जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज ।।

फूलहिं फरहिं सदा तरू कानन । रहहिं एक सँग गज पंचानन ।।

खग मृग सहज बयरू बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ।।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ।।

सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ।।

लता बिटप मागें मधु चवहीं । मन भावतो धेनु पत्र स्रवहीं ।।

ससि संपन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भई कृतजुग कै करनी ।।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ।।

सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ।।

सागर निज मरजादाँ रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ।।

सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा विभागा ।।

बिधु महि पुर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज ।

मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ।।

वैसे राज्य के राजा (राम) की घोषणा है --

जो अनीति कछु भाखौं भाई, तो मोहि बरजहु भय बिसराई ।

आदर्श राज्य में शासन प्रजासम्मत होना आवश्यक है । यही कारण है कि तुलसीदास 'नृपनयन' के साथ 'साधुमत' और 'लोकमत' को भी महत्त्व देते है । राजकीय व्यवहार में कोरी राजनीति नहीं, जनमत और उच्चादर्श का संयोग होना चाहिए --

करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि । -- 2/258

विष्णुदास के अनुसार भी कुशल राजे अपने गुरू, मंत्री, दूत पारिवारिक जनों एवं प्रजा की सलाह पर ध्यान देता है और जो सर्व हितकारी होता है, उसी का अनुसरण करता है । वह प्रजा को भय और आतंक के वातावरण से मुक्त कराता है । वैसे राजा को मंत्री, मित्र आदि सही मंतव्य देते है । आदर्श राजा अपने शरणागतों की रक्षा तो करता ही है, शत्रु तक को भी शरण प्रदान करता है । लंका का परित्याग कर विभीषण का राम की शरण में आने पर हनुमान का कथन है --

दूजै हनुमत बोली साखि, इहि हौं मारत लीन्हौं राखि ।

यह है राम धर्म कौ मूल । याते और न जानि सुकूल ।।

रामायनकथा 133/16

और राम विभीषण को अपना लेते हैं --

चरन राम के धाले हाथ । हियैं लगाइ लियौ रघुनाथ ।[120]

विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास ने राजा और उसके कर्तव्य एवं महत्त्व आदि पर अधिक विस्तार से विचार किया है । तुलसीदास मानते हैं कि वह राजा नरक का भागी बनता है जिसके राज्य में प्रजा दुखी रहती है --

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ।।[121]

तुलसीदास का उद्घोष है -- 'चाहिअ धरमसील नरनाहू' । राजा को धर्म परायण एवं कर्तव्यपरायण होना आवश्यक है ।[122] राजा को सत्य, दया, तप और दान आदि का अनुसरण करना चाहिए । उसे सत्वगुण से युक्त प्रजावत्सल, न्यायप्रिय, पक्षपात रहित, करणायुक्त दृढ़-प्रतिज्ञा, निरभिमानी, सर्वशक्तिमान एवं वेदादि का ज्ञाता होना चाहिए।

राजा और राज्य में अन्योनाश्रित सम्बन्ध होता है । राजा के बिना किसी भी राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती । आलोच्य कवियों ने राज्य को एक धार्मिक और नैतिक संस्था के रूप में स्वीकार किया है । 'रामराज्य' धार्मिक और नैतिक आदर्शों का ही पोषक है । राम ऐसे राजा हैं कि उनके राज्यारोहण करते ही तीनों लोकवासी आनंदित हो उठते हैं --

रामराज बैठे त्रैलोका । हरषित भये गए सब सोका ।[123]

रामराज्य में जन-जन का सर्वांगीण विकास हो सका है एवं उन्हें सुखानुभूति हो सकी है, क्योंकि राम धर्मरथ पर आरूढ़ राजा के गुणों के मूर्त्तरूप है ।[124] तुलसीदास ने समय के अच्छे और बुरे होने का कारण भी राजा को ही स्वीकार किया है --

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग ।
कहिय कुबास सुबास तिमि काल महीस-प्रसंग ।।[125]

यह संभवतः उसी कारण संभव है क्योंकि राजा को वे ईश्वर का अंश स्वीकार करते हैं --

साधु सुजान सुसील नृपाला, ईश अंश भव परम कृपाला ।[126]

राजा के अच्छा होने पर प्रजा सुखी तो होती ही है, 'सुखी प्रजा जनु पाई सुराजा' वह बढ़ती भी है -- 'प्रजा बाढ़ि जिमि पाइ सुराजा' । रामाख्यान में वर्णित राजनीतिक विचारधाराओं की परीक्षा करते हुए डॉ. नजीर मुहम्मद ने मंतव्य दिया है कि -- "जहाँ एक भाई राज्य नृपवत् त्याग कर प्रसन्नतापूर्वक वन को चला जाता है, वहीं दूसरा भाई चरणपादुका की पूजा करते हुए चौदह वर्ष तपस्वी बनकर बिता देता है । उत्तराधिकार

की परम्परा का सही निर्वाह नहीं करने वाले मुस्लिम शासकों के लिए यह आदर्श सदा अनुकरणीय है ।''[127] 'रामायन कथा' में वर्णित रामराज्य काल्पनिक-सा इसलिए प्रतीत होता है कि राजदरबार में रहने के बावजूद विष्णुदास को युग वास्तविकता की पकड़ शायद नहीं हो सकी थी । इसके विपरीत तुलसीदास की तद्विषयक अवधारणा रामभक्ति और वर्णाश्रम व्यवस्था के ढाँचे के भीतर ही एक मानवीय व्यवस्था अथवा आदर्श राज्य (रामराज्य) की हो गयी है । उस दृष्टि से विष्णुदास वर्णित रामराज्य सम्बन्धी विचार उद्‌बोधक होकर रह गया है जबकि तुलसीदास के विचार रामराज्य की प्राप्ति के लिए जहाँ आंदोलन हेतु उद्‌बुद्ध करता है, वही संगठन के मार्ग का भी संकेत करता है । यहाँ सबको इंगित करना भी विस्तार मात्र होगा ।[128]

'रामायन कथा' और 'रामचरितमानस' में वर्णित राजनीतिक विचारों में साम्य ही अधिक हैं । अन्तर मूलतः है विस्तार और क्रम को लेकर जिसमें 'रामचरितमानस' के वर्णन बीस पड़ते हैं । यो 'रामचरितमानस' में निम्नांकित तथ्यों पर अधिक बल दिया गया है । 'रामायन कथा' में या तो इन पर विचार हुए ही नहीं हैं या यदि हुए भी हैं तो अत्यन्त कम। यथा --

1. राज्य एक नैतिक और धार्मिक संस्था भी है ।
2. राज्य को निरंकुश राजतंत्र नहीं होना चाहिए ।
3. यदि इच्छाशक्ति हो तो राज्य युद्धों को पूरा समाप्त कर सकता है ।
4. राज्य में प्रजा और भूमि दोनों की समृद्धि होनी चाहिए ।

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने तुलसीदास प्रतिपादित रामराज्य के आठ मुख्य सूत्र गिनाये हैं एवं उसके पश्चात् निष्कर्ष दिया है कि -- ''तुलसी ने राज्य का यह दर्शनशास्त्र केवल वेद-पुराणादि पढ़कर नहीं रचा, बल्कि अपने व्यापक, व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों के आधार पर रचा है ।''[129] इस मत से असहमत होने का कोई कारण नहीं

दिखता । तद्युगीन अनुभव के आधार पर ही तुलसीदास ने त्रिताप-दैहिक यानी दरिद्रता, भौतिक यानी दुख और अशांति एवं दैविक यानी पाप का उन्मूलन ही आदर्श राज्य का मूल लक्ष्य माना है । विष्णुदास ने दण्डशक्ति को अपेक्षया अधिक महत्त्व दिया है, जबकि तुलसीदास ने नैतिक बल पर अधिक भरोसा किया है । शेष बातें दोनों में प्रायः मिलती जुलती ही हैं । यद्यपि उनकी मान्यताएँ परम्परागत और पौराणिक हैं, तथापि उनकी प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है । यह कहना अयौक्तिक नहीं होगा कि महात्मा गाँधी और डॉ. राम मनोहर लोहिया ने उन्हीं आदर्शों पर रामराज्य की स्थापना की कल्पना की और भारत की आजादी के लिए किये जाने वाले आंदोलन में इसे नारे का रूप दिया गया । वस्तुतः प्रणाली चाहे कोई भी हो, शासन व्यवस्था किसी के हाथ में हो यदि उपरिवर्णित सुविधाएँ सामान्य नागरिक को मिलें तो वही आदर्श राज्य होगा, राम राज्य होगा ।

6.V निष्कर्ष

विष्णुदास एवं तुलसीदास की राजनीतिक विचारधाराओं के उपरि विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों भक्त कवि थे, राजनीतिक विचारक नहीं । विष्णुदास राज्याश्रित कवि होने के बावजूद राजनीति से बहुत परिचित नहीं लगते । भक्त कवि होने के बावजूद तुलसीदास को राजनीति की समझ विष्णुदास से ज्यादा थी । तत्कालीन राजनीति को उन्होंने निकट से देखा-समझा और भोगा भी था । विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूँगरेन्द्र सिंह की राजनीति से परिचित थे और तुलसीदास तत्कालीन मुगल शासन के भोक्ता थे । उसकी खूबियों और खामियों को उन्होंने गंभीरता से परखा था ।

आलोच्य कवियों ने तद्युगीन कलयुगी राजनीति और शासन-नीति को पुराण-वर्णित कलियुगी स्थिति के अनुरूप ही समझा । उन्होंने रावण और दुर्योधन की शासन नीतियों का प्रक्षेपण कर तद्युगीन स्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया है । दोनों ने उस कलयुगी शासन-नीति को समाप्त कर उसकी जगह प्रजा की सब प्रकार से सुख-समृद्धि के

लिए आदर्श राजा अथवा शासक एवं उसकी प्रजारक्षक और प्रजारंजक राजनीति के आदर्श प्रस्तुत किये । दोनों की दृष्टि में योग्य राजा साक्षात् ईश्वर अथवा ईश्वर का प्रतिनिधि परम वैष्णव ही हो सकता है । इस दृष्टि से दोनों की रचनाओं में कई आदर्श राजाओं के वर्णन हुए हैं, पर सबों में श्रेष्ठ और उत्तम एकमात्र नाम श्रीराम का ही है । दोनों ने राम की शासन-नीति को आदर्श नीति, उनके राज्य (रामराज्य) को आदर्श राज्य और सर्वोपरि आदर्श राजा श्रीराम को स्वीकार किया है । दोनों के द्वारा वर्णित रामराज्य में मूल्यगत अन्तर नहीं है, अन्तर है मात्र वर्णन-विस्तार को लेकर । दोनों की दृष्टि में रामराज्य ही जन कल्याणकारी राज्य है । दोनों की चिंता उसी जनकल्याणकारी रामराज्य की स्थापना को लेकर है । इस प्रकार दोनों के विचारों में साम्य ही अधिक है, वैषम्य प्रायः नहीं है ।

संदर्भ :

1. बृहत् हिन्दी कोश, पृ. 292
2. महाभारत, शांतिपर्व, 15/2
3. -वहीं- 56/2
4. -वहीं- 56/3
5. -वहीं- 56/10
6. -वहीं- 56/12 एवं 59/127
   -- रंजिताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्देत .... राज्ञा रंजनकाम्यया' ।
7. -वहीं- 57/42 'ऋते रक्षां सुतिस्पष्टां रक्षा लोकस्य धारणम्।''
8. -वहीं- 59/106
9. -वहीं- 69/79
10. -वहीं- 69/91,92
11. रामायन कथा - 225/83 ; रामचरितमानस - 7/100:3
12. रामचरितमानस - 7/100:3
13. दोहावली 559 ; कवितावली - 7/177
14. रामायन कथा, 225/82
15. -वहीं- 223/56
16. -वहीं- 223/56
17. रामायन कथा - 225/86
18. -वहीं- 225/86
19. रामायन कथा, 116/
20. दोहावली - 559
21. दण्डनीति परित्यज्य यदा कात्स्न्येन भूमिपः ।
    प्रजा क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेन तदा कलिः ।। 69/91
22. द्रष्टव्य - शोध सन्दर्भ के तीनों खण्डों के आवश्यक अंश
23. महाभारत, पृ. 171-175 एवं रामचरितमानस - 7/97-104 (ख)
24. -वहीं- पृ. 179 प्रथम पंक्ति
25. -वहीं- पृ. 171
26. कलि में ऐसौ चलि है राई, कर बसूलिहैं घरघर जाई । -- स्वर्गारोहण - 172
27. झूठ बोलिकै जारै दाम । निसिदिन लोग लोभ सों काम ।।
    सुनै न एकौ पुत्र कथन । बाढ़यौ देह कौ धरम सर्वत्र ।। -- स्वर्गारोहण - 175
28. महाभारत (स्वर्गारोहण) - 173
29. कवितावली - 7/179

30. महाभारत - 91 / 3
31. -वहीं- अध्याय, 58
32. रामचरितमानस - 2/315/1
33. सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी ह्लास, भाव-महाभारत (शांतिपर्व छं. 59)
34. महाभारत, (स्वर्गारोहण) पृ. 176
35. रामचरितमानस - 7/111/3 - तुलनीय-रामचरितमानस 3/20/4-5
36. अर्थशास्त्र, 1/9
37. रामचरितमानस, 2/315/1
38. रामायन कथा, 52/21
39. रामचरितमानस, 2/4/1-3 ; रामायन कथा, 14/162
40. -वहीं- 4/4/2 ; -वहीं- 45/18-19
41. -वहीं- 6/47/2 ; -वहीं- 127/60-61
42. -वहीं- 5/49/3 ; -वहीं- 4/42/3, 6/38/1
43. -वहीं- 2/149/1
44. -वहीं- 4/5, 5/50/1
45. रामायन कथा - 162/12 इस सम्बन्ध में एक श्लोक भी विष्णुदास ने लिखा है--

बांधव गुरू मंत्री च यस्य राज्ञा प्रियं वदेत् ।
शरीरं धर्म को शोभां कि प्रसादं महीपते - रामायन कथा, 127/श्लोक

तुलसी की उक्ति श्री उससे मिलती जुलती ही है -

सचिव वेद गुरू तीनि जौं प्रिय बोलहि भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ।। -- रामचरितमानस, 5/37

46. रामायन कथा, 128/76-77
47. -वहीं- 132/26-27
48. -वहीं- 133/13-14
49. -वहीं- 162/8-9
50. रामचरितमानस, 2/2/1
51. -वहीं- 2/79/2
52. -वहीं- 2/169
53. -वहीं- 2/314/4
54. -वहीं- 2/168/4
55. रामायन कथा - 2/15-19 ; रामचरितमानस, 7/27-29
56. -वहीं- 10/101 एवं आगे ; -वहीं- 1/211-214
57. -वहीं- 53/2 एवं आगे ; -वहीं- 4/6/2-3

58. रामायन कथा, 93/32-40 ; रामचरितमानस 1/177/3-4
59. महाभारत, 69/2-18, 145/2
60. रामचरितमानस, 7/26/1
61. -वहीं- 1/212/1
62. -वहीं- 2/112/1, 2/116/4
63. कवितावली, 2/22,23
64. दोहावली - 509
65. -वहीं- 510-511
66. -वहीं- 455-507, 508
67. रामचरितमानस, 6/37/5
68. -वहीं- 506
69. -वहीं- 559
70. रामचरितमानस, 1/209/3 ; रामायन कथा, 6/44
71. -वहीं- 1/210/3 ; -वहीं- 7/50
72. -वहीं- 3/20, -वहीं- 36/18
73. -वहीं- 6/103/3 ; -वहीं- 191/181
74. कवितावली, 7/122
75. रामचरितमानस, 5/58/3
76. -वहीं- 4/18
77. रामायन कथा, पृ. 234-235 ; विनय पत्रिका, 146
78. -वहीं- पृ. 238 ; गीतावली 7/24/2
79. -वहीं- पृ. 239 ; रामाता प्रश्न, 6/6/1
80. महाभारत, पृ. 144 एवं 145
81. रामचरितमानस, 6/38/1 ; रामायन कथा, 136/श्लोक 21-23
82. -वहीं- 6/10/3
83. -वहीं- 6/10/2-4
84. -वहीं- 6/42/3 ; रामायन कथा, 134/22, पृ. 131/17
85. रामायन कथा, 45/21 ; रामचरितमानस 4/1/2
86. -वहीं- 140/28-38 ; -वहीं- 5/52/2
87. -वहीं- 144/12 ; -वहीं- 6/16/3
88. रामचरितमानस, 3/18/4
89. महाभारत, 141/36
90. रामचरितमानस, 6/86/6

91. रामायन कथा, 110/4
92. रामचरितमानस, 6/54/2
93. -वहीं- 6/85/2
94. -वहीं- 6/78/5
95. -वहीं- 5/34/1
96. रामायन कथा, 124/1-3
97. रामचरितमानस, 6/38/1-5
98. महाभारत, 149/39-46
99. रामचरितमानस, 6/47/1, 6/71/1, 6/97/8
100. -वहीं- 6/53/4, 6/54
101. -वहीं- 6/97/1 ; रामायन कथा, 159/75
102. महाभारत, 165/59
103. रामचरितमानस, 6/75/2-3
104. -वहीं- 3/18/5
105. रामायन कथा, 49/82-83 ; दोहावली, 479
106. -वहीं- 51/6
107. महाभारत, (शांतिपर्व), छं. 69
108. रामचरितमानस, 6/37/5
109. -वहीं- 2/151/2
110. -वहीं- 2/314/4
111. -वहीं- 2/290
112. महाभारत, पृ. 171
113. रामचरितमानस, 1/154
114. -वहीं- 1/187/4
115. दोहावली, 522, 523
116. -वहीं- 500, 501, 502
117. रामायन कथा, 204/ 178-180 एवं रामचरितमानस, 7/20/1 से 7/23
118. रामायन कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक - डॉ. रमा श्रीवास्तव अध्ययन, पृ. 227
119. रामायन कथा, 203-204/176-180
120. -वहीं- 135/30
121. रामचरितमानस, 2/71/3
122. -वहीं- 2/179/1

123.रामचरितमानस, 7/19/4

124. -वहीं- 6/79/2-6

125.दोहावली, 505

126.रामचरितमानस, 2/28/4

127.आधुनिक संदर्भ में तुलसी काव्य की उपादेयता - 'मानस-संगम', 1986, पृ. 46

128.रामचरितमानस, 1/28/3-5 ; 3/314 ; 3/2 ; 1/170 ; 6/6/5 ; 6/28/10 ; 7/11/3 ; दोहावली, 517, 521, 525 आदि

129.तुलसी आधुनिक वातायन से - डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, पृ. 113

सप्तम अध्याय

काव्य विषयक विचाराधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

सप्तम अध्याय

काव्य विषयक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

7.1 उपक्रम

विष्णुदास और तुलसीदास भक्त कवि थे, काव्यशास्त्री नहीं । भारतीय काव्यशास्त्रियों के मतानुसार कवियों को काव्यशास्त्र का समुचित ज्ञान होना चाहिए । आचार्य भामह ने तो मात्र कवि को ही काव्यशास्त्र का अधिकारी बनाया है -- 'अज्ञस्येव प्रगल्भत्वमकवेः शास्त्रवेदनम्' ।[1] आचार्य वामन ने कवि के क्रमशः 'अरोचकी' और 'सतृणाभ्यवहारी' अर्थात् विवेकी एवं अविवेकी, में दो भेद करते हुए 'विवेकी' को काव्यशास्त्र का अधिकारी माना है पूर्वे शिष्याः विवेकित्वात् । नेतरे तद्विपर्ययात्' ।[2] कवि एजरा पाउण्ड का मत है कि कवि द्वारा निरूपित काव्य-सिद्धांत को अन्यव्यक्ति (समीक्षक?) के मत की अपेक्षा महत्त्व मिलना चाहिए । वे प्रश्न करते हैं कि आप यदि किसी मोटरगाड़ी के बारे में जानना चाहते हैं तो उसके बारे में उसे बनाने और चलाने वाले से पूछेंगे या किसी और व्यक्ति से जिसने उसके बारे में केवल सुना भर है ।[3] दूसरी ओर बारफील्ड श्रेष्ठ कवित्व और श्रेष्ठ समीक्षा को अन्योन्याश्रयी मानते हैं ।[4]

ऊपर कहा गया है कि आलोच्य भक्त कवि हैं, काव्यशास्त्री अर्थात् काव्य-दर्शन के निर्माता आचार्य नहीं । उन्होंने काव्य नहीं, भक्ति काव्य का प्रणयन किया है । वे भक्त कवि थे, भक्ति काव्यशास्त्री नहीं । उनकी रचनाओं भक्ति सम्बन्धी विचार अर्थात् भक्ति-दर्शन विषयक विचार तो मिलते हैं, पर काव्य-दर्शन के सम्बन्ध में बाते नहीं मिलती है । इस कारण दोनों भक्त कवियों की रचनाओं में प्राप्त भक्ति-दर्शन को ही एक सीमा तक भक्ति काव्यादर्श या भक्तिकाव्य-दर्शन मानना अनुचित नहीं होगा ।

विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों में से किसी ने भी भक्ति-काव्यशास्त्र नहीं लिखा है। भक्ति विषयक सिद्धांत ग्रंथ का भी उल्लेख इनमें से किसी ने नहीं किया है, लेकिन

उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र भक्ति एवं काव्य (भक्तिकाव्य) सम्बन्धी मान्यताएँ भी जाने अनजाने व्यक्त हो गयी हैं । भक्ति-काव्य के प्रणयन के क्रम में तत्सम्बन्धी कतिपय मान्यताएँ प्रासंगिक रूप में निर्दिष्ट हो गयी हैं ।

विष्णुदास कृत 'महाभारत' एवं 'रामायन कथा' एवं तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में भक्ति-काव्यादर्श विषयक कतिपय उल्लेख प्राप्त होते हैं। उन सभी बिखरे सूत्रों को आगे कतिपय शीर्षकों में प्रस्तुत किया जाता है ।

7.II काव्य का कर्त्ता : कवि

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने अपनी-अपनी रचनाओं में अपने को कई स्थलों पर कवि घोषित किया है । यथा --

क. विष्नुदास कवि विनवत सेवा । - रामायन कथा, 67/13

ख. नासै पाप विष्नु कवि भनै । - वही, 154/109

ग. कथा विचारि विष्नु कवि कही । वही, 235/28

घ. नगर समेत विष्नु कवि कह्यौ । वही, 246/67

ङ. सो (फलु) विष्नुदासु कवि भनहीं । महाभारत 170/8

च. विष्नुदास कवि विनय कराई । वही, 171/2

छ. रामचरितमानस कवि तुलसी । रामचरितमानस 1/35

ज. अस मानस मानस चख चाही,

यह कवि बुद्धि विमल अवगाही । रामचरितमानस 1/38/5

विनयशीलता आदि के कारण आलोच्य कवियों ने अपने को कवि नहीं होने की बात भी कही है, पर व्यंजना से वैसी उक्तियों का अर्थ कवि भी निकलता है । यथा --

क. गुनियन मोहि हँसहु जनि देवा । रामायन कथा 67/13

ख. कबित बिबेक एक नहि मोरे । रामचरितमानस 1/9/6

ग. कबि न होऊँ नहिं चतुर कहावउँ । रामचरितमानस 1/11/5

7. III काव्य-लक्षण

कविता या काव्यरूप के लिए विष्णुदास ने 'कविता' एवं तुलसीदास ने 'कवित्त' या 'कवित' शब्द का प्रयोग किया है । कविता अर्थात् काव्य-लक्षण के सम्बन्ध में विष्णुदास ने कुछ भी नहीं कहा है, किन्तु आनंदवादियों के दृष्टिकोण का किंचित् सन्निवेश हो गया प्रतीत होता है । 'रामायन कथा' में उत्तरकांड का प्रारम्भ करते समय पहले श्लोक में वे 'कुंजतं राम रामेति मधुर मधुराक्षरं' कहते हुए कवि कोविद वाल्मीकि की वंदना करते हैं। ऐसा अनुमान किया जायेगा कि 'मधुर मधुराक्षरं' कहकर वे काव्य में मधुरता अर्थात् रम्यता और मंगल की भावना को अनिवार्य मानते हैं ।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के आरम्भिक श्लोक में ही काव्य के लक्षण का निर्देश कर दिया है । उनके अनुसार काव्य में अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छंदों और मंगल की भावना का सन्निवेश होना चाहिए --

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ।

मङ्गलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ ।।[5]

साथ ही तुलसीदास यह भी मानते हैं कि कविता में निखार लाने के लिए अलंकारों और भावों का एकत्र आकलन भी होना चाहिए --

आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक विधाना ।।

भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुन विविध प्रकारा ।।

रामचरितमानस - 1/8/5

विष्णुदास ने अपनी काव्यरचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में केवल कुछ संकेत भर किये हैं । उन्होंने वाल्मीकि रामायण के आधार पर 'रामायन कथा' की रचना की है । इस कारण कई स्थलों पर वाल्मीकि का पुण्य-स्मरण तो किया ही है, रचना प्रक्रिया के सम्बन्ध

में भी कुछ संकेत हो गया है । यथा --

क. विष्णुदास मथि ग्रंथ अपार । काढ़ी कथा सु अमृत सार ।।[6]

ख. वालमीकि जो कहयौ पुरान । ताकौ अर्थ करन कौ जान ।।

जो जानै तो होइ पसार । ता लागि कह्यौ कथा अनुसार ।।[7]

इसी प्रकार 'महाभारत' में भी व्यास का नमन करते हुए 'महाभारत' के अनुसार ही कथा कहने की बात उल्लिखित है । उसमें विभिन्न सर्गों के प्रारंभ में भी कतिपय उक्तियाँ मिलती हैं । यथा --

क. स्वर्गारोहणि ग्रंथ कौ बरणों तत्व बखान ।[8]

ख. बरनौ पंडव-चरितु अभेऊ, जो परसाद करै गुरूदेऊ ।।[9]

उपरिवत् उल्लिखित उक्तियों से स्पष्ट है कि विष्णुदास ने आधार ग्रंथों 'वाल्मीकि रामायण' अथवा 'महाभारत' का अनुवाद नहीं किया है, वरन् उनका मंथन करने के बाद उनसे अमृत तत्त्व (सार तत्त्व) निकाल कर जनता के लिए 'रामायन कथा' अथवा 'महाभारत' (पांडव चरित) को भाषाबद्ध किया है । कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है आधार ग्रंथों में वर्णित विषयों को सार रूप में जनता की भाषा में उपस्थित करना । इस कार्य को विष्णुदास ने धर्म कार्य कहा है --

विष्णुदास चित मति मन लह्यौ । रामचरित्र धर्म हित कह्यौ ।।

रामायन कथा - 204/184

अपनी कृतियों की रचना के एक और कारण का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है--

मन रच्छा पूरण करौं, जा हरि होय सहाय ।

गुण गाऊँ गोपाल के, चरन कमल चित लाइ ।।[10]

अर्थात् ईश्वर का गुणकीर्तन करना भी कवि की इच्छा रही है, उनके गुण-कीर्तन के लिए भी विष्णुदास ने रचनाएँ की हैं ।

तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' की रचना धर्म कार्य के रूप में ही की है -- 'सकल कलि कलुष विध्वंसने' । उसके प्रत्येक काण्ड की पुष्पिका से यही सिद्ध होता है । पुनः कवि ने कहा है कि भगवान शंकर के द्वारा प्रणीत दुर्गम मानस-रामायन को ही 'रामचरितमानस' के रूप में उसने भक्ति-प्राप्ति द्वारा अन्तःकरण के अंधकार को दूर करने के लिए ही भाषाबद्ध किया है ।[11] इसमें दो मत नहीं कि 'रामचरितमानस' की रचना प्रक्रिया 'रामायन कथा' की रचना प्रक्रिया से पूरी तरह अलग प्रकार की है । तुलसीदास के अनुसार किसी भी उत्तम काव्य की रचना प्रक्रिया निम्नांकित रूप में हो सकती है :

हृदय सिंधु मति सीप समाना ।
स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ।।
जो बरषइ बर बारि बिचारू ।
होहि कबित मुकुतामनि चारू ।।
जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग ।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग ।।[12]

इस कथन से स्पष्ट है कि चौपाई में कवि के कर्त्तृत्व पक्ष का, दोहे के प्रथम चरण में कृतिपक्ष का और अंतिम चरण में पाठक तथा सहृदय अर्थात् ग्रहीता पक्ष का विचार हो गया है । पूरा कथन रूपक के माध्यम से किया गया है । जैसे मोती की उत्पत्ति के लिए समुद्र, सीपी स्वाति नक्षत्र और स्वाति बूँद आवश्यक हैं, वैसे ही कविता की रचना के लिए हृदय, मति, कविता की देवी शारदा की कृपा या वरदान से उत्पन्न सुविचारित भाव आवश्यक हैं जिन्हें रामचरित रूपी उत्तम धागे में कवि कौशलपूर्वक पिरोता है । तात्पर्य यह कि बुद्धिमान लोगों के हृदय समुद्र, बुद्धि सीप और सरस्वती स्वातिनक्षत्र स्वरूप हैं, जिसमें श्रेष्ठ विचार रूपी जल बरसने पर ही 'मुक्तामणि' के समान कविता बनती हैं । तुलसीदास के इस कथन पर शिक्षाविदों के दृष्टिकोण का प्रभाव प्रतीत होता है। इसमें लोकहित की

भावना प्रकट होती है । 'कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई[13] की उक्ति'लोकहित' को महत्त्व देती है ।

विष्णुदास ने केवल रचना-प्रक्रिया का उल्लेख किया है, पर तुलसीदास ने कई और काव्यशास्त्रीय बाते कही हैं । काव्य की सरलता में ही सार्थकता भी निहित होती है । तुलसीदास के शब्दों में कविता वही उत्तम होती है जिससे वैर भी अपनी सुधि भूल जाती है--

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।

सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ।।[14]

दोनों कवियों ने महान काव्य के लिए महान नायक होने की बात स्वीकार की है ।[15] तुलसीदास ने प्राकृतजन के गुनगान में सरस्वती के पछताने की घोषणा की है --

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना ।

सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।[16]

और विष्णुदास ने भाषा में काव्य-रचना करने के लिए ही पश्चाताप किया है । वे पश्चाताप करते हैं कि --

तुक्ष मति मोरी थोरी सी बौराई भाषा काव्य बनाई ।

रोम रोम रसना जो पाऊँ महिमा वर्ण नहिं जाई ।।[17]

वस्तुतः दोनों कवियों के कथा नायकों का जन्म लोक का मंगल करने के लिए ही हुआ हैं--

क. रामहिं प्रगेटे धरमु के काज ।। रामायन कथा - 125/30

ख. राम जनमु जग मंगलहेतु । रामचरितमानस - 2/253/2

वस्तुतः श्रीराम की कथा कलिमल का शमन करनेवाली आनंददायक कथा है --

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।[18]

भक्त कवि होने के कारण विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों ने काव्य का मुख्य

प्रतिपाद्य के रूप में अपने अपने आराध्यदेवों के गुण-वर्णन को ही स्वीकारा किया है । उनके अनुसार श्रेष्ठ कवि द्वारा रचित उत्तम कविता भी रामनाम के बिना निरर्थक प्रतीत होती है एवं कुकवि की दोषयुक्त रचना भी इष्टदेव के गुणगान के कारण सार्थक बन जाती है ।[19] इस कथन के मूल में तुलसीदास के भक्त मानस की भावुकता ही प्रकट हुई है, ऐसा मानना शायद गलत नहीं होगा । इस आधार पर यह माना जायेगा कि कविता में प्रतिपाद्य का आकर्षक ढंग से कथन एवं इष्टदेव विषयक उच्च भाव और विचार का होना आवश्यक है । 'रामचरितमानस' उपरिवत् उद्धृत प्रारम्भिक श्लोक को तुलसीदास द्वारा निरूपित काव्य लक्षण स्वीकार किया जाना चाहिए जिसमें वर्ण, अर्थ, रस, छंद और लोक मंगल इन पाँच तत्वों का स्पष्ट कथन किया है ; अर्थात् काव्य वह शब्दार्थ है जो रसात्मक, छंदोबद्ध और मंगलकारी होता है । विष्णुदास ने इस प्रकार की कोई भी परिभाषा उपस्थित नहीं की है, किन्तु अपनी रचनाओं में उन्होंने भी इन्हीं तत्वों को स्वीकार किया है । कहना चाहिए कि काव्य लक्षण विषयक मान्यता में तुलसीदास काव्य शास्त्रियों की मूलभावनाओं के निकट हैं।

7. IV काव्य का ग्रहीता

काव्य का कर्त्ता होता है कवि । इस सम्बन्ध में ऊपर विचार हो चुका है । दोनों आलोच्य कवियों ने अपने को कई स्थलों पर कवि स्वीकार किया हैं । विष्णुदास और तुलसीदास, दोनों ने भक्ति काव्यों की रचनाएँ की हैं । इस कारण इन रचनाओं के पाठक या श्रोता को ग्रहीता माना जायेगा । दोनों कवियों में से किसी ने भी ग्रहीता (अथवा अधिकारी, सहृदय अथवा प्रमाता) की कोटियाँ निर्धारित नहीं की है । भक्ति की महिमा आदि का कथन करते समय उनकी रचनाओं में भक्ति के अधिकारियों के सम्बन्ध में जो संकेत हुए हैं, उन्हें ही व्यापक अर्थ में स्वीकार कर ग्रहीता माना जायेगा । भक्ति के अधिकारी ही काव्य के अधिकारी भी माने जा सकते हैं । अस्तु, कहना पड़ेगा कि काव्य के अधिकारी के लिए परम प्रेम तथा स्थिर चित्त से काव्य का श्रवण-मनन करना आवश्यक

होता है । तुलसीदास ने मन-वचन-कर्म से रामभक्त होना ग्रहीता का लक्षण[20] बताते हुए इसकी व्याप्ति का कथन इस प्रकार किया है --

श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।[21]

काव्य के ग्रहीता अर्थात् भक्त पाठक-श्रोता वक्ता की प्रशंसा करते हुए तुलसीदास ने उन्हें 'ज्ञानी' शब्द से अभिहित किया है[22] तुलसीदास यह भी मानते है कि 'सुजान' (बुद्धिमान) काव्य के अधिकारी होते हैं । वे काव्य को पढ़ते-सुनते-गुनते है ।[23] उनकी स्पष्ट मान्यता है--

जे गावहिं यह चरित सँभारे । तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ।

सदर सुनहिं सादर नर-नारी । तेइ सुरवर मानस अधिकारी ।।[24]

जो दुष्ट एवं विषयी हैं, वे काव्य के अधिकारी हो नहीं सकते । उनकी तुलना तुलसीदास ने कौए और बगुले से की है ।[25] स्पष्ट है कि भक्ति विहीन लोग काव्य का अधिकारी नहीं होंगे, पर जिसके हृदय में राम के लिए प्रेम है, भले ही रामभक्त नहीं हो, तब भी तुलसीदास उन्हें काव्य का अधिकारी मानने के पक्षधर हैं --

ते नर यह सर तजहिं न काऊ । जिन्ह के राम चरन भल भाऊ ।।

जो नहाइ चह एहिं सर भाई । सो सतसंग करउ मन लाई ।।

रामचरितमानस - 1/38/4

ग्वालियर नरेश डूँगरेन्द्र सिंह कवियों की प्रतिष्ठा के लिए अपने हाथों पान का बीड़ा देते थे। वैसे ही किसी विशेष अवसर पर महाराज के मन में पाण्डव-चरित (महाभारत) सुनने की आकांक्षा हुई एवं उन्होंने स्वयं कवि विष्णुदास को अपने हाथों पान का बीड़ा सौंपते हुए पाण्डव-चरित सुनने की इच्छा प्रकट की थी ।[26] अस्तु, विष्णुदास के काव्य का प्रधान ग्रहीता तोमर नरेश डूँगरेन्द्र सिंह को ही मानना पड़ेगा । इसके अतिरिक्त विष्णुदास काव्य के बीच-बीच में श्रोता अथवा ग्रहीता को सावधान भी करते चलते हैं --

क. सुना सर्वलोक त्रिभुनस्वामी सुखरास । - विष्णुपद

ख. सुनहु देव इक चितह समानी,

भोगहु भारथु कहौं बखानी । - महाभारत - 5/41

तुलसीदास में भी इस प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं --

क. सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी । - रामचरितमानस - 2/30/1

ख. सादर सुनहु सुजन मन लाई । - रामचरितमानस - 1/35/7

अपनी-अपनी कृतियों में आलोच्य कवियों ने काव्य के ग्रहीता पर ध्यान तो रखा है, पर बीच-बीच में बार-बार वे उन्हें सम्बोधित करते हुए प्रतीत नहीं होते हैं । इससे ऐटकिन्स की मान्यता की पुष्टि होती है कि रचना करते समय कवि मानस में अनुमानित ग्रहीता अथवा प्रमाता की स्थिति अवश्य वर्तमान रहती है ।[27] यह आवश्यक नहीं उनका बार-बार संकेत किया ही जाये ।

तुलसीदास ने ग्रहीता के बारे में एक और बात कही है । वस्तुतः जो भक्त या भक्त हृदय नहीं होते उन्हें भक्तिकाव्य अच्छा लगे ही यह आवश्यक नहीं है । यही कारण है कि उन्होंने ग्रहीता की सीमा रामभक्तों तक ही स्थिर की है --

हरिहर पद रति मति न कुतरकी ।

तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की ।। - रामचरितमानस - 1/8/3

इस विवेचन से यही स्थिर होता है कि विष्णुदास और तुलसीदास दोनों के अनुसार काव्य के ग्रहीता अथवा अधिकारी का तात्पर्य भक्तिकाव्य के श्रोता से है । उसे भक्त नहीं तो कम से कम भक्त हृदय होना ही चाहिए । भक्तकाव्य के श्रवण-पठन-गायन में रूचि रखने वाला ही भक्तिकाव्य का वास्तविक अधिकारी या ग्रहीता हो सकता है ।

7. V काव्य की आत्मा

काव्य की आत्मा से तात्पर्य काव्य के उस सार तत्त्व से है जिसके अभाव में

काव्य को काव्य नहीं कहा जाता । विष्णुदास ने 'मधुर मधुराक्षरं' और तुलसीदास ने 'रसना' का संकेत कर उसकी प्रायः पुष्टि कर दी है कि काव्य की आत्मा रस होती है। इस आधार पर दोनों कवि रसवादी कहे जायेंगे ।

भक्त कवि होने के कारण विष्णुदास और तुलसीदास दोनों का साध्य है भक्ति का प्रचार करना जिसका साधन है भक्ति काव्य का गायन तुलसीदास की घोषणा है कि--

रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ।।

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहि निरंतर तेऊ ।।[28]

यहाँ रामचरित से मात्र 'राम' के चरित्र का अर्थ नहीं लेकर उसे कृष्ण आदि अर्थात् व्यापक अर्थ में भगवान् के 'चरित्र' का अर्थ ही स्वीकार करना अभीष्ट हैं । तात्पर्य यह है कि विष्णुदास और तुलसीदास दोनों की दृष्टियों में काव्य की आत्मा है -- भक्तिरस

7. VI काव्य-प्रयोजन

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने आचार्य मम्मट द्वारा निरूपित काव्य के छह प्रयोजन-यशलाभ, अर्थलाभ, व्यवहार ज्ञान, अमंगल निवारण, सद्यःपरिनिवृत्ति और कान्तासम्मित उपदेश को स्वीकार कर लिया है । अन्यों ने भी भाषा और शब्द-भेद से इन्हें ही स्वीकार किया है । किसी-किसी ने इसमें पुरुषार्थ चतुष्टय को भी सम्मिलित किया है। विष्णुदास और तुलसीदास एकत्र रूप में प्रयोजनों के उल्लेख नहीं किये हैं, पर कहीं-कहीं कुछ बाते अवश्य कही हैं जो इन्हीं में सिमटती हैं ।

आलोच्य दोनों कवियों का एकमात्र काम्य है -- अपने-अपने इष्टदेवों का गुणकीर्तन करना । अतः मूल प्रयोजन स्वान्तः सुखाय ही मानना पड़ेगा ।

क. अपने हित पद रचिलौं, रूक्मिणी मंगल भणिलौं ।।[29]

ख. स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा, भाषानिबन्धमतिमंञ्जुलमातनोति ।।[30]

यहाँ विष्णुदास का 'अपने हित' और तुलसीदास का 'स्वान्तः सुखाय' ही काव्य

का मूल प्रयोजन कथित है । इसके अतिरिक्त विष्णुदास ने 'गुण गाऊं गोपाल के, चरन कमल चित लाय' ।[31] की भी बात की है । साथ यह भी घोषणा हे कि "विष्णुदास रामायन कह्यौं, जाहि सुनत नर पातक तरै" । इसमें पाप से उद्धार करने को भी प्रयोजन रूप में उल्लेख किया गया है । विष्णुदास एवं तुलसीदास दोनों में कतिपय ऐसी भी पंक्तियाँ मिलती हैं जिनसे यश लाभ की अभिलाषा ध्वनित होती है । यथा --

विष्णुदास :

1. बिध्नहरून जो करै पसाऊ । रोगु कलंक न छीयै काऊ ।।[32]
2. मोहहिं सुभा सुनत यह ख्याती । कौरव पांडव की उतपाती ।।[33]
3. सरस बचन रामाइनु कहौं । - रामायन कथा - 1/9

तुलसीदास :

1. जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं । सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ।[34]
2. भाषा भनिति भोरि मति मोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ।।[35]
3. कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल ।।

   बालबिनय सुनि सुरूचि लखि मो पर होहु कृपाल ।।[36]

इनसे यह अनुमान होता है कि दोनों आलोच्य कवियों को किसी न किसी रूप में 'यश लाभ' प्रयोजन भी मान्य रहा है, भले ही उसे गौण स्थान क्यों न मिला हो। साथ जिन कृतियों की दोनों ने रचनाएँ की हैं उनके पीछे 'जनहित' अथवा 'लोकमंगल' का भाव भी निहित रहा है । इसलिए लोकमंगल को भी काव्य का प्रयोजन माना जायेगा । तुलसीदास ने तो 'सुरसरि सम हित' करनेवाली रचना को ही उत्तम कहा है । अन्यत्र भी उन्होंने रामकथा को 'मंगल करनि' और 'कलिमल हरनि' घोषित किया है । विष्णुदास ने यद्यपि ऐसी घोषणा नहीं की है, पर 'रामायन कथा' की फलश्रुति से इसी का संकेत मिलता है । यथा --

क. मन थिर बुद्धि सुनै जो कोइ । ता कहँ व्याधि पीर ना होइ ।।

अरसठ तीरथ कौ फल लहै । विष्णुदास निज गुरु वर कहै ।।[37]

ख. मन दे राम कथा जो सुनै । बाढ़े आयु विष्नु कवि भनै ।।

काटै व्याधि लक्ष्मि घर होइ । सोग व्याधि पीड़ित नहिं कोइ ।

जीव कंठ मुख अहि निसि जासु । यह अचिर्ज जम त्रास न तासु

राम राम जो राम कहाइ । सो नर नरक बास नहिं जाइ ।।[38]

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में पाप-नाश (1/11/3), पुण्य प्राप्ति (1/120/4), भक्ति में प्रवृति (1/10 (क)), मोक्ष प्राप्ति आदि का भी संकेत या उल्लेख किया है । इस विवेचन से पता चलता है कि दोनों के द्वारा मान्य काव्य-प्रयोजन हैं प्रायः एकसमान ही, पर तुलसीदास में उनका कथन अधिक स्पष्ट और विस्तृत भी है । वस्तुतः दोनों द्वारा स्वीकृत काव्य-प्रयोजन सर्वजन हिताय हैं जिसे तुलसीदास ने 'स्वान्तः सुखाय' कहा है वह भी सर्वसुख या जनहित का ही पोषक है ।

7. VII काव्य-हेतु

काव्याचार्यो ने काव्य हेतु के रूप में शक्ति अथवा प्रतिभा, व्युत्पत्ति अथवा निपुणता और अभ्यास को स्वीकार किया है । विष्णुदास ओर तुलसीदास की रचनाओं में काव्य-हेतु के रूप में तीन बातें मान्य हैं -- (क) देव-कृपा (ख) गुरू-कृपा एवं (ग) शास्त्र-अध्ययन ।

(क) देव-कृपा : विष्णुदास और तुलसीदास ने अपने-अपने आराध्य देवों अर्थात् श्रीराम की कृपा को ही सर्वस्व माना है । यहाँ 'राम' का तात्पर्य ईश्वर से है, वह कृष्ण या और भी कोई हो सकता है । ईश्वर की कृपा के अभाव में उनकी भक्ति भी नहीं हो सकती । ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिए उनका भजन-कीर्तन करना आवश्यक है । देव-कृपा विषयक किंचित् उल्लेख दोनों की रचनाओं में इस रूप में मिलता है --

क. जाकौ रूप न सकौं बखानि । हंस चढ़ी ता पुस्तक पानि ।।

ता पहँ विष्नुदास बरू लहयौ । सरस बुद्धि रामाइनु कह्यौ ।।[39]

ख. भारथु भाखौं तोहि पसाई । पुनि सारद कैं लागौं पाई ।

मोहहि सभा सुनत यह ख्याती । कौरव पांडव की उतपाती ।।[40]

ग. विष्नुदास कवि बिनय कराई । देहु बुद्धि ज्यौं कथा चलाई ।।[41]

तुलसीदास :

क. एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद पर धामा ।।

व्यापक बिस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ।।[42]

ख. तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा । कहिहउँ नाइ राम पद माथा ।।

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई ।।[43]

ग. सारद दारूनारि सम स्वामी । राम सूत्रधर अंतरजामी ।।

जेहिं पर कृपा करहि जनु जानी । कबि उर अजिर नचावहिं बानी ।।[44]

घ. संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी । रामचरितमानस कबि तुलसी ।।

करइ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ।।[45]

विष्णुदास ने सरस्वती[46], गणेश[47], ब्रह्मा[48], विष्णु[49], शिव-शक्ति[50], सूर्य[51], देवी[52] (त्रिभुवन भाई) आदि की वंदना 'महाभारत' में पूरे तैंतीस छंदों में की है । तदुपरान्त वे दोहरे में कहते हैं --

सुर तैंतीस मनाय कै व्यासहिं नाऊँ सीस ।

पढ़त गुनत पातक हरै रोगु कलंक न दीस ।। -- महाभारत 2/ दोहा - 3

तुलसीदास ने भी आराध्यदेव के अतिरिक्त गणेश[53], शिव-पार्वती[54], गंगा[55], सूर्य[56], देवी[57], यमुना[58], हनुमान[59], काशी[60], चित्रकूट[61], लक्ष्मण-भरत[62], आदि का स्तवन

किया है । वस्तुतः आराध्यदेव के अतिरिक्त दोनों कवियों ने एक समान ही महत्त्व दिया है। तात्पर्य यह कि आराध्यदेव के साथ ही अन्य देवों की कृपा को भी काव्य हेतु के रूप में दोनों कवियों ने समान महत्त्व दिया है ।

(ख) गुरू कृपा : भगवद् कृपा के पश्चात् गुरू-कृपा को दोनों कवियों ने काव्य हेतु के रूप में स्वीकार किया है । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' में अपने गुरू सुन्दरनाथ की कृपा का ही नहीं, वरन् गोपाचल गद्दी के संस्थापक गुरू सहजनाथ की कृपा को भी काव्य प्रयोजन के रूप में स्वीकार किया है जिसकी कृपा से उन्होंने 'रामायन कथा' का प्रणयन किया ।[63] विष्णुदास सहजनाथ की गुरू-कृपा का उल्लेख 'स्वर्गारोहण' में भी किया है ।[64] वे एक दोहरा छंद में गुरू के साथ ही देवताओं की कृपा का एक साथ उल्लेख किये हैं --

गुरु ब्रह्मा हरि ईसु धरि ध्याऊँ चरन मनाय ।
जिहि बल भाखौं भारथहिं अजर-अमर सिधि पाई ।।[65]

तुलसीदास की मान्यता है कि श्री गुरूजी के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसका स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है । वह प्रकाश अज्ञान-अंधकार का नाशक है । वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है जिसके हृदय में वह प्रकाश आ जाता है ।[66] गुरू की वंदना तुलसीदास ने बड़े विस्तार से एक बड़े भावपूर्ण ढंग से किया है ।[67] वे गुरू को 'नररूप हरि' ही स्वीकार करते हैं । तुलसीदास ने गुरू मुख से ही पहली बार रामकथा भी सुनी थी[68], पर बालपन के कारण वह उस समय पल्ले नहीं पड़ी थी ।[69] उसे ही वे 'रामचरितमानस' में भाषाबद्ध करते हैं । तुलसीदास की मान्यता बिल्कुल साफ है कि 'गुरु-पद-नख-मणि' के स्मरण मात्र से ही शिष्य के ज्ञान नेत्र खुलते हैं और उसी के पश्चात् वह रचना करने में समर्थ होता है । विष्णुदास ने गुरू के साथ ही 'विप्रों' की सेवा का भी महत्त्व स्वीकार किया है --

गुरू विप्रन की विनवै सेवा । भारथु भाखि सुनावहि देवा ।।[70]

(ग) शास्त्र-अध्ययन : काव्य शास्त्र के आचार्यों ने व्युत्पत्ति अथवा निपुणता के अन्तर्गत विभिन्न कलाओं, साहित्यिक विधाओं, काव्यशास्त्र, लोकजीवन और लोक व्यवहार आदि के ज्ञान[71], उचित-अनुचित का विवेक[72] को स्वीकार किया है एवं अभ्यास को तीसरा काव्यहेतु माना है । आलोच्य कवियों ने शास्त्र-अध्ययन के रूप में व्युत्पत्ति और अभ्यास दोनों को स्वीकार कर लिया है । दोनों कवियों ने अपने मुख्य ग्रंथों के उपजीव्य अथवा मुख्य आधार का उल्लेख किसी न किसी रूप में अवश्य किया है । विष्णुदास ने वाल्मीकि रामायण और महर्षि व्यास प्रणीत महाभारत का स्पष्ट कथन किया है । इन दोनों ग्रंथों का आद्योपान्त श्रमसाध्य अध्ययन करने के पश्चात् ही उन्होंने 'रामायन कथा' और 'महाभारत' (पाण्डव चरित) का प्रणयन किया है । तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' के आरम्भ में ही 'नाना पुराण निगमागम सम्मत यद् रामायणे निगदितं' की घोषणा की है । उसे ही उन्होंने अन्यत्र भी स्वीकार किया है ।[73]

विष्णुदास ने अपने पिता लावण्य श्री कर्ण (व्यास) का भी स्मरण किया है, क्योंकि उनके समरण करने मात्र से ही विष्णुदास को कविता करने की स्फूर्ति होती थी --

श्री करन लावन कौ पूतू । सुमिरत कवि जसु होई बहूतू ।।

महाभारत - 5/40

तुलसीदास ने 'शाबर मंत्रों के रचयिता', भगवान शिव[74] एवं 'कवीश्वर' वाल्मीकि के साथ ही 'कपीश्वर' हनुमान[75] का भी स्मरण किया है । वस्तुतः पूर्व कवियों का स्मरण काव्य परम्परा के सम्यक ज्ञान को संकेतित करता है । इतना अवश्य है कि आलोच्य कवियों को शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा देव-कृपा पर ही अधिक भरोसा है । तुलसीदास ने 'कबित्त बिबेक एक नहि मोरे' या 'कवि न होऊँ नहिं वचन प्रबीनू' जैसी उक्तियों में व्यंजना से व्युत्पत्ति की महत्ता को ही स्वीकार किया गया है । इसी प्रकार 'उल्टा नाम जपत जग जाना, बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना' जैसी उक्ति से अभ्यास के महत्त्व पर प्रकाश

पड़ता है । विष्णुदास में व्युत्पत्ति अथवा अभ्यास के सम्बन्ध में ऐसे स्पष्ट कथन नहीं मिलते हैं । विवेचन को समाप्त करते हुए कहा जायेगा कि दोनों कवियों ने मुख्य काव्य हेतु देव-कृपा (अथवा प्रतिभा) को स्वीकार किया है । तुलसीदास ने व्युत्पत्ति और अभ्यास की भी संगति बैठायी है । गुरू का महत्त्व दोनों को समान रूप में स्वीकार्य है ।

7. VIII काव्य का वर्ण्य-विषय

काव्य का वर्ण्यविषय कुछ भी हो सकता है । ऐतिहासिक पौराणिक आख्यानों से लेकर अति तुच्छ वस्तु को भी काव्य का उपादान बनाया जा सकता है । विष्णुदास व्यास (कथावाचक) के पुत्र थे, स्वयं भी भक्त थे। अतः उनमें धार्मिक विषयों के प्रति स्वाभाविक रूचि थी। पुनः राजाश्रित होने के कारण राजा की इच्छा का भी सम्मान करना आवश्यक होता था । इन सारी बातों का प्रभाव उनके काव्य के वर्ण्य-विषय पर पड़ा है । उन्होंने 'महाभारत' का प्रणयन ग्वालियर नरेश महाराज डूँगरेन्द्र सिंह तोमर की इच्छापूर्ति के लिए किया था । पान का बीड़ा अपने हाथों कवि विष्णुदास को दे उन्होंने पांडव चरित सुनने की इच्छा प्रकट की थी ।[76] इस कारण ही विष्णुदास ने 'महाभारत' का प्रणयन किया था। स्वयं व्यास-पुत्र और भक्त होने के कारण रामकथा के प्रति रूचि होना स्वाभाविक ही था। 'रामायन कथा' का वर्ण्य विषय उनके भक्त रूप को अग्रसारित करता है । भक्त होने के कारण वे भक्ति के पद गाया करते होंगे । उसी का परिणाम उनके पद 'विष्णुपद' हैं । वैसे ही पदों में 'रूक्मिणी मंगल' काव्य पूरा हुआ है । जनभाषा में काव्य रचना करना उन्हें यद्यपि अपमान जैसा लगता था,[77] तथापि भक्ति का विषय होने के कारण वह अपमान बोध से बचा लेता होगा । भक्त कवियों में तुलसीदास का मत है कि ग्राम्य-कथा का गायन करना वस्तुतः काव्यदेवी सरस्वती का अपमान करना है --

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।
हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ।।

रामचरितमानस - 1/10/4

किन्तु तुलसीदास की ही मान्यता है कि भक्ति के निरूपण में स्वयं सरस्वती भी दौड़ती हुई आती हैं --

तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ।।

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ।।

रामचरितमानस - 1/10/2

अस्तु, भक्ति को काव्य का वर्ण्य विषय बनाये जाने का कारण स्वतः स्पष्ट है । दोनों कवि इसी कारण भगवान का भजन करने या भगवान से सम्बद्ध किसी भी विषय को काव्य का उपादान स्वीकार करने से नहीं चूकते हैं । उनकी मान्यता है --

1. रामचरित धर्म हित कह्यौ ।।[78]
2. मन दै रामकथा जो सुनै । बाढ़ै आयु विष्नु कवि भनै ।।[79]
3. राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाई ।[80]
4. राम चरन रति जो चह अथवा पद निबौन ।

   भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ।।[81]

विष्णुदास ने 'सनेहलीला', 'रूक्मिणी मंगल' आदि में भगवान श्री कृष्ण के प्रसंगों को काव्य विषय बनाया है । उसका कारण भी भक्त हृदय ही है । आराध्यदेव श्रीराम से कृष्ण को भिन्न नहीं मानते । इस आदर्श पर ही वे सब काव्य के प्रतिपाद्य विषय स्वीकार किये गये हैं । तुलसीदास ने भी राम के अतिरिक्त कृष्णवृत्त और शिव-पार्वती वृत्त को काव्य वर्ण्य स्वीकार किया है । तुलसीदास की तो धारणा है कि काव्यगुणों से हीन कवि-वाणी भी राम-नाम से ओत-प्रोत होने के कारण ही समादृत होती है --

सब गुन सहित कुकबि कृत बानी । राम नाम जस अंकित जानी ।।

सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुनग्राही ।।[82]

7. IX काव्यांग

काव्यशास्त्रियों ने शब्दार्थ, रीति, गुण, रस अलंकार और छंद पर विचार करने की बात काव्यांग के अन्तर्गत स्वीकार की है । इनमें रस का सम्बन्ध काव्य के आंतरिक पक्ष से और शेष का सम्बन्ध कलापक्ष से है । शब्दार्थमयी रचना होने के कारण काव्य के शब्द-विन्यास और अर्थ-व्यंजना को कलापक्ष के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है । कविता के सम्प्रेषण का माध्यम ये ही होते हैं ।

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं के आधार पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि दोनों को काव्यशास्त्र का गंभीर ज्ञान था । शब्द-विन्यास, अर्थ-व्यंजना, छंद-विधान, अलंकार-विधान आदि से वे पूरी तरह परिचित थे । इन सब का सैद्धांतिक निरूपण उनकी रचनाओं में नहीं हुआ है, उनके सफल व्यवहार उनमें अवश्य हुए है । काव्य में रस परिपाक को दोनों ने स्वीकारा हैं । विष्णुदास का 'मधुर मधुराक्षरं' और तुलसीदास का 'रसानां' इस तथ्य का पोषक है कि उन्हें 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' मान्य है । इतना अवश्य है कि दोनों ने भक्ति रस को महत्त्वपूर्ण माना है । विष्णुदास का श्रृंगारिक प्रसंगों से बचना, सीता के सौंदर्य वर्णन को यह कहकर रोक देना कि इससे हँसी होगी[83], आदि में भी इसी का पोषण होता है कि भक्तिरस के अतिरिक्त अन्य रसों को इन कवियों ने विशेष महत्त्व नहीं दिया है । तुलसीदास को विष्णुदास की तरह कोई सफाई नहीं पेश करनी पड़ी है । वे श्रृंगार को कहीं भी मर्यादा से बाहर नहीं होने देते । सीता के सौंदर्य वर्णन में भी उन्हें मर्यादा का ध्यान रहा है । वे मानते हैं भक्तिरस वाली रचनाओं में साधारणीकरण की बेजोड़ शक्ति होती है --

रामचरितमानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ।।
मन करि विषय अनल बन जरइ । होई सुखी जौं एहिं सर परई ।।

रामचरितमानस - 1/34/4

तात्पर्य यह कि भक्ति रसात्मक काव्य के अनुशीलन से पाठक को ब्रह्मानंद और ब्रह्मानंद-सहोदर रस दोनों की प्राप्ति होती है ।

रसेतर काव्यांगो के बारे में विष्णुदास की रचनाओं से कोई सूचना नही मिलती है जबकि तुलसीदास की रचनाओं में विभिन्न काव्यांगो से सम्बन्धित उक्तियाँ प्राप्त होती हैं । यथा --

1. कीन्हि प्रस्न्न जेहि भाँति भवानी । जेहि बिधि संकर कहा बखानी ।।
सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ।।

रामचरितमानस - 1/32/1

2. भाव भेद रस भेद अपारा । कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ।

रामचरितमानस - 1/8/5

3. उघटहिं छंद-प्रबंध गीत-पद राग-तान बंधान ।
सुनि किन्नर गंधर्ब सराहत, बिथके है बिबुध-बिमान ।।[84]

4. भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ।।
सुगम अगम मृदु मंजु कठोर । अरथु अमित अति आखर थोरे ।।[85]

5. सुकृत पुंज मंजुल अलि माला । ग्यान बिराग बिचार मराला ।।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहुभाँती ।।[86]

6. आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक बिधाना ।।[87]

इन उक्तियों में कविता में प्रबन्धत्व, गुण-सन्निवेश और दोष-परिहार, नाद-योजना और व्यंजना (ध्वनि-योजना), शब्दार्थ के संतुलन, विविध छंदो के प्रयोग आदि विषयक काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ प्रकट हुई हैं । तुलसीदास की विभिन्न रचनाओं की पड़ताल से यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता कि वे कविता में विभिन्न काव्यांगों के सन्निवेश में कुशल थे । विष्णुदास की रचनाओं में भी उन सभी काव्यांगों के सन्निवेश हुए हैं, पर वैसी सैद्धांतिक

उक्तियों का अभाव है ।

7. X काव्यरूप

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों ने विभिन्न काव्यविधाओं में अपने भाव और विचार प्रकट किये हैं । मोटे तौर पर दोनों ने प्रबंध और मुक्तक शैली में रचनाएँ की हैं । विष्णुदास कृत 'रामायन कथा', 'महाभारत', 'रूक्मिणी मंगल' प्रबंध कोटि में आती हैं । तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भी प्रबंध ही है । मुक्तक शैली में विष्णुदास कृत 'विष्णु पदी' और तुलसीदास कृत 'विनयपत्रिका' समान महत्त्व की रचनाएँ हैं । शेष रचनाएँ भी प्रायः मुक्तक शैली में ही हैं । तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में काव्यरूप के किंचित् संकेत भी किये हैं --

क. कथा प्रबंध बिचित्र बनाई । -- रामचरितमानस - 1/32/1

ख. सुठि सुंदर संबाद बर बिरचै बुद्धि बिचारि । -- रामचरितमानस - 1/36

ऐसे संकेत विष्णुदास ने नहीं किये हैं । इन उक्तियों में कथा-प्रबंध अर्थात् प्रबंध काव्य, संवाद (संवाद-काव्य) के संकेत हुए है । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों कवियों ने चरितकाव्य, जिसे यहाँ प्रबंध कहा गया है, लिखा है यथा -- 'रामायन कथा, 'महाभारत' (पांडव-चरित), 'रामचरितमानस' । मुक्तक अथवा पदशैली में प्रणीत कृतियों के उत्तम उदाहरण 'रूक्मिणी मंगल', 'विष्णुपद', 'विनय पत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली' आदि माने जायेंगे ।

7. XI निष्कर्ष :

विष्णुदास और तुलसीदास दोनों भक्त कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य नहीं । वे अपने आराध्यदेव के नाम, लीला आदि का गायन कर रहे थे अथवा उन्हें योग्य काव्यरूप में प्रस्तुत कर रहे थे । तब भी उनकी रचनाओं से यह प्रतीत होता है कि वे काव्यशास्त्र की सुदीर्घ भारतीय परम्परा से पूरी तरह परिचित थे । साथ ही उनके मन में

शुद्ध-काव्य और भक्ति-काव्य का अन्तर पूरी तरह स्पष्ट था । वे शुद्ध-काव्य नहीं, भक्ति-काव्य की रचना कर रहे थे । उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शुद्ध काव्य-विषयक मान्यताएँ, वस्तुतः भक्तिकाव्य विषयक मान्यताओं के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टि में काव्य का तात्पर्य था ईश्वर कथा (अथवा अपने आराध्यदेवता के नाम, गुण, यश, चरित्र आदि का वर्णन या कीर्तन) । कवि का अर्थ उनके यहाँ ईश्वर का गुण गायक (अर्थात् भक्त) और प्रमाता का अर्थ है श्रोता या पाठक । काव्य के प्रयोजन रूप में वे पुण्य की प्राप्ति, पाप का नाश, भक्ति में प्रवृत्ति, मोक्षलाभ आदि को स्वीकार करते हैं । काव्य-हेतु अथवा काव्य की प्रेरक शक्ति के रूप में दोनों कवियों को भगवत्कृपा, गुरूकृपा एवं भक्ति-शास्त्र और भक्ति-काव्य आदि का अध्ययन मान्य हैं । दोनों कवि हैं रसवादी ही, पर प्रत्यक्ष रूप में किसी ने इसे स्वीकार नहीं किया है । काव्यरूपों के सम्बन्ध में उनमें विचारों का प्रायः अभाव है, पर उनके द्वारा प्रयुक्त काव्यरूप पारम्परीण काव्यरूपों से किंचित् नवीन अवश्य हैं ।

निष्कर्षतः कहा जायेगा कि आलोच्य कवियों के विचार परम्परा से पुष्ट होने के बावजूद गतानुगतिक नहीं हैं । दोनों की महत्ता परम्परागत काव्य-सिद्धान्तों को भक्ति काव्य सिद्धान्त बनाने की संभावना में निहित है । किसी प्रकार का नया सिद्धान्त प्रतिपादन करना उनका लक्ष्य नहीं है । यो भक्ति-काव्यशास्त्र विषयक सिद्धांत कथन एवं उनके व्यावहारिक निरूपण में विष्णुदास की तुलना में तुलसीदास बीस पड़ते हैं । तुलसीदास की रचनाओं में व्यक्त विचार अधिक महत्त्व के हैं ।

संदर्भ :

1. काव्यलंकार - 1/3
2. काव्यलंकार सूत्र - 1/2/2-3
3. If you wanted to know something about an automobile, would you go to a man who had made one and driven it, or to a man merely heard about it.

Quoted from "Modern Poets on Modern Poetry" p. 7

4. The perfect Poet is also the perfect critic. Ibid, p. 170
5. रामचरितमानस, बालकाण्ड का प्रथम श्लोक
6. रामायन कथा - 122/39
7. -वहीं- 205/3
8. महाभारत (भूमिका) - पृ. 36
9. -वहीं- पृ. 23
10. रूक्मिणी मंगल, छंद 3
11. यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
    श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिंश प्राप्त्यै तु रामायणम् ।
    मत्वा तद्रघुनाथनामनिरंत स्वान्तस्तमःशान्तये
    भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।। रामचरितमानस 7/अंतिम श्लोक
12. रामचरितमानस - 1/10-11
13. -वहीं- 1/13/5
14. -वहीं- 1/14 (क)
15. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - गोसाईं तुलसीदास, पृ. 55 एवं डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' - 'रामचरितमानस का क्वचिदयतोऽपि', पृ. 5
16. रामचरितमानस - 1/10/4
17. रूक्मिणी मंगल - छंद - 3
18. रामचरितमानस - 1/10/(क) छंद
19. -वहीं- 1/10/2-3
20. -वहीं- 1/46/2
21. -वहीं- 1/39
22. -वहीं- 1/30 (ख)
23. -वहीं- 1/9 एवं 1/10/3
24. -वहीं- 1/37/1
25. -वहीं- 1/37/2

26. महाभारत - 5/38
27. In all literary activity these are atleast two factors, apart from the individuality of the writer, which have to be taken into account. They are the medium of words and that human nature to which appeal is made.
-- J.W.H. Atkins, literary criticism in antiquity - voll II 8/352
28. रामचरितमानस, 7/52/1
29. रूक्मिणी मंगल - पद - 4
30. रामचरितमानस, 1/7 (श्लोक)
31. रूक्मिणी मंगल - पद - 3
32. महाभारत - 2/8
33. -वहीं- 2/10
34. रामचरितमानस, 1/13/4
35. -वहीं- 1/8/2
36. -वहीं- 1/14 (ग)
37. रामायन कथा - 246/70
38. -वहीं- 204/180-181
39. -वहीं- 1/4
40. महाभारत - 1/10
41. स्वर्गारोहण (महाभारत), पृ. 171/2
42. रामचरितमानस, 1/12/2
43. -वहीं- 1/12/5
44. -वहीं- 1/104/3
45. -वहीं- 1/35/1
46. रामायन कथा - 1/3-4, 205/2 ; महाभारत 1/1-3
47. -वहीं- 205/1 ; महाभारत - 2/1-3, दोहरा, आदि
48. महाभारत - 3/ दोहरा 2
49. रामायन कथा - 1/1 ; महाभारत 2/6, 2/4
50. महाभारत - 2/5, 2/6
51. -वहीं- 4/26
52. -वहीं- 3/11-20
53. विनयपत्रिका - 1

54. विनय पत्रिका 3-14
55. -वहीं- 17, रामचरितमानस - 1/15/1
56. -वहीं- 2
57. -वहीं- 15
58. -वहीं- 21
59. रामचरितमानस - 1/17
60. विनयपत्रिका - 22
61. -वहीं- 23
62. -वहीं- 37, 39
63. रामायन कथा - 1/7-9
64. महाभारत - 171/2
65. -वहीं- 3/ दोहरा 2
66. रामचरितमानस - 1/5/3
67. -वहीं- 1/5 सोरठा से 1/2/1 तक
68. -वहीं- 1/30
69. -वहीं- 1/30/1
70. महाभारत - 5/40
71. काव्यलंकार - भामह, 5/4 ; काव्य - प्रकाश, मम्मट, 1/3
72. काव्यमीमांसा - राजशेखर, पृ. 16
73. रामचरितमानस - 1/68/3
74. -वहीं- 1/14/3
75. -वहीं- 1 / श्लोक 4
76. महाभारत - 5/38-39
77. तुछ मंति मोरी थोरी सी बौराई भाषा काव्य बनाई । रूक्मिणी मंगल
78. रामायन कथा - 204/184
79. -वहीं- 204/180
80. रामचरितमानस - 1/141
81. -वहीं- 7/128
82. -वहीं- 1/9/3
83. कवि जन हँसै पाप बहु होइ ।
तातै बरनत करतु न लोइ ।।
इक बालक देवी अवतारू ।

कैसे कहि बरनौं सिंगारू ।। रामायन कथा - 11/118

84. गीतावली - 1/2/115

85. रामचरितमानस - 2/293/1

86. -वहीं- 1/36/4

87. -वहीं- 1/8/5

उपसंहार

उपसंहार

पूर्वपृष्ठों में विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का विभिन्न कोणों से अलग-अलग अध्यायों में तुलनात्मक अध्ययन किया गया । इससे स्पष्ट है कि दोनों हिन्दी भक्ति काव्य के महान कवि हैं । कहा जाता है कि काव्य की कठोर आवश्यकताएँ महान व्यक्तियों-महाकवियों, महात्माओं, संतो-भक्तों, महापुरुषों को उत्पन्न करती हैं । यह तथ्य दोनों आलोच्य कवियों के लिए सटीक है । अंतर इतना है कि विष्णुदास मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के आरंभिक दौर के कवि हैं । इसके विपरीत तुलसीदास उत्तरमध्यकालीन भक्ति आंदोलन के चरमोत्कर्ष के समय में हुए । दोनों वैष्णव भक्त, विचारक और कवि थे । उनकी वैचारिक प्रतिभा ने तत्कालीन समाज को नई चेतना दी, साथ ही असंख्य भारत वासियों को भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का संदेश भी दिया । आदर्श समाज की परिकल्पना को चरितार्थ किया । लोगो में अपनी संस्कृति एवं भाषा के प्रति जागरूकता फैलायी ।

विष्णुदास और तुलसीदास की विचारधाराओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि उनमें साम्य अधिक है, वैषम्य कम । व्यक्तित्व के विचार से अध्ययनीय कवियों में साम्य और वैषम्य दोनों ही मिलते हैं । दोनों अतीव लोकप्रिय कवि थे। दोनों कथावाचक, अतः व्यास थे । सगुण वैष्व्व भक्ति का प्रतिपादन दोनों का लक्ष्य था। दोनों जनभाषा के कवि थे । सम्प्रदाय सहिष्णु दोनों थे । श्रुतिपथ की अवहेलना के दोनों विरोधी थे । संत-समागम और इष्टदेव का कीर्तन दोनों करते थे, एवं इस पर दोनो ने अधिक बल दिया है । विष्णुदास की कृतियाँ राम और कृष्ण परम्परा की प्रायः पहली मौलिक हिन्दी रचनाएँ हैं । 'रामायन कथा' और 'महाभारत' अपने विषय की हिन्दी में पहली पूर्ण और ऐतिहासिक महत्त्व की रचनाएँ हैं । तुलसीदास का 'रामचरितमानस' हिन्दी की ही नहीं, समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की रामायणों की मुकुटमणि है । विष्णुदास

ने 'रामायन कथा' और 'महाभारत' की रचना 'धर्महित' को ध्यान में रखकर की है और तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की 'सुरसरि सम सब कर हित होई' को ध्यान में रखकर। अतः दोनों का लक्ष्य लोकहित और लोकरक्षण था ।

विष्णुदास को भौतिक सुख-सुविधा तुलसीदास से अधिक प्राप्त थी । आत्मगोपन दोनों की विशेषता है, पर तुलसीदास की अपेक्षा विष्णुदास में आत्मकथात्मक उक्तियाँ अधिक मिलती हैं । विष्णुदास के पिता व्यास थे । कथावाचन की परम्परा उन्हें पिता से मिली थी। तुलसीदास ने कथावाचन की कला संभवतः गुरु से सीखी होगी । विष्णुदास राजाश्रित कवि थे, पर तुलसीदास पूर्णतः धर्माश्रित ।

कृतित्व की दृष्टि से दोनों ने राम-कृष्ण विषयक प्रचुर काव्य रचना की है । दोनों की कई कृतियाँ सर्वथा प्रामाणिक हैं । विष्णुदास की अद्यावधि केवल तीन कृतियाँ पूरी तरह एवं शेष के अंश रूप ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं । पुनः वे सर्वसुलभ भी नहीं हैं । तुलसीदास की कृतियों के लिए सत्य इससे भिन्न है । उनकी प्रामाणिक मानी जाने वाली सभी कृतियाँ प्रकाशित और सर्वत्र सुलभ हैं । विष्णुदास की अधिकांश कृति कृष्ण-अवतार विषयक हैं । केवल 'रामायन कथा' ही राम विषयक है । उसके विपरीत तुलसीदास की केवल एक कृति 'कृष्ण गीतावली' कृष्ण विषयक है और शेष सभी राम विषयक । दोनों की कृतियों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि उनमें कालगत अन्तर होने के बावजूद परिवेशगत बहुत भिन्नता नहीं थी । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि दृष्टियों से अकबर पूर्व शासन में जैसा अंतर है, वैसा ही अंतर आलोच्य कवियों के परिवेश में भी मानना अनुचित नहीं होगा । पुनः विष्णुदास चूँकि हिन्दू शासक के अधीन थे, इसलिए भी वे दिल्ली सुलतानों के फौजी शासन से प्रभावित नहीं हुए थे । महाराज डूँगरेन्द्र सिंह का जो औदार्य उन्हें राजाश्रित कवि होने के कारण प्राप्त हुआ था, बहुत कुछ वैसा ही उदार और सहिष्णु वातावरण तुलसीदास को भी अकबर कालीन भारत में प्राप्त

हुआ था । हिन्दी की साहित्यिक परम्परा तुलसीदास को विष्णुदास से अधिक मिली थी । 'रामचरितमानस' की प्रौढ़ता का एक कारण यह भी माना जायेगा। यों युगीन परिस्थितियों और गतिविधियों ने दोनों के कृतित्वों को समान रूप में दिशा दी है, पर सांस्कृतिक पीठिका और साहित्यिक परम्परा का लाभ दोनों ने सर्वथा निजी और वैयक्तिक रूचि से ही लिया है।

विष्णुदास और तुलसीदास की दार्शनिक विचारधाराओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनमें वैषम्य नहीं के बराबर है । दोनों ही अद्वैत दर्शन के अनुयायी हैं । उनके काव्यों में अद्वैतवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप मिलता है । दोनों को दार्शनिक स्तर पर ब्रह्म के दो रूप मान्य हैं । पहला, शुद्ध परब्रह्म रूप जो निर्गुण, निराकार है । दूसरा है अवतार रूप जो सगुण-साकार है और मानवीय गुणों से युक्त होकर लीला में प्रवृत्त होता है । सिद्धान्ततः निर्गुण और सगुण में भेद नहीं मानने पर भी दोनों को सगुण लीलामय रूप ही अधिक मान्य है । दोनों के आराध्य सगुण ब्रह्म ही हैं । दोनों कवियों ने जीव को ब्रह्म का चिदंश स्वीकारा है, जो माया के अधीन होने के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है । दोनों की दृष्टि में जगत् और संसार एक नहीं है । जगत सत्य है, संसार मिथ्या, यह दोनों को स्वीकार्य है । तुलसीदास ने जगत के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से चर्चा की है । दोनों के मतानुसार माया ईश्वर की दासी है । माया के दो रूप हैं -- विद्या और अविद्या । माया के अविद्या रूप से मुक्त होना मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है । दोनों ने मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया । भक्तों को मुक्ति की अपेक्षा भक्ति ही प्रिय है । नाम नहीं लेते हुए भी दोनों ने राम द्वारा विभिन्न पात्रों को विभिन्न प्रकार की मुक्तियाँ देने के कथन किये हैं ।

विष्णुदास और तुलसीदास ने ईश्वर प्राप्ति के सभी साधनों में भक्ति मार्ग को अतीव महत्त्व दिया है । विष्णुदास की रचनाओं में भक्ति विषयक विचार भी तुलसीदास की तुलना में बहुत कम मिलते हैं । विष्णुदास के लिए भक्ति परम्परा का पालन अधिक है, पर

तुलसीदास के लिए भक्ति ही सब कुछ है । दोनों ही भगवान के ऐश्वर्य रूप से प्रभावित हैं, पर तुलसीदास की कृतियों में इसका अंकन अपेक्षया अधिक हुआ है ।

विष्णुदास और तुलसीदास ने आराध्य के रूप में राम और कृष्ण को प्रायः समान महत्त्व दिया है । किन्तु विष्णुदास का झुकाव जहाँ कृष्ण की ओर अधिक प्रतीत होता है, तुलसीदास का झुकाव राम के प्रति । विष्णुदास ने 'रामायन कथा' में जहाँ राम को आराध्य देव के रूप में स्वीकारा है, वहीं 'सनेहलीला', 'विष्णुपदी' एवं 'स्वर्गारोहण' और 'महाभारत' में राम की अपेक्षा कृष्ण को अधिक महत्त्व दिया है । तुलसीदास ने एकमात्र रचना 'श्रीकृष्णगीतावली' में कृष्ण को अपने आराध्यदेव राम के समान ही महत्त्व दिया है । शेष सभी रचनाओं में राम ही आराध्यदेव रूप में स्वीकृत एवं वर्णित हैं । भक्ति और उसके विभिन्न भेद दोनों को मान्य है । तुलसीदास ने भक्तों की कोटियों का उल्लेख किया है एवं आदर्श भक्ति भाव के वर्णन द्वारा उन्होंने भक्त के सम्बन्ध में भी बातें व्यक्त कर दी है । स्वरूप सेवा दोनों को मान्य है । तुलसीदास निर्गुणोपासना और सगुणोपासना को समान महत्त्व देने के बावजूद सगुण के ही अधिक विश्वासी हैं । विष्णुदास ने निर्गुणोपासना का उल्लेख प्रायः किया ही नहीं है । दोनों भक्ति का लक्ष्य भगवान की शरणागत प्राप्ति करना मानते हैं । भक्ति के मूल आदर्श और लक्ष्य में दोनों में किसी प्रकार का वैषम्य नहीं हैं । भगवान और भक्त के मध्य स्वामी-सेवक सम्बन्ध ही दोनों को मान्य है। दोनों दास्य भाव की भक्ति के हिमायती हैं ।

विष्णुदास और तुलसीदास के समय परम्परागत धार्मिक मान्यताओं का ह्रास हो गया था । तद्युगीन हिन्दू जाति एक प्रकार से सांस्कृतिक अपसारण का शिकार बनी हुई थी । धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के आडम्बर, वामाचारिता, तांत्रिकता, साम्प्रदायिकता, कटुता, भूत-प्रेतादि की पूजा के चलन थे । दोनों ने धार्मिक बाह्याडम्बर और आचारभ्रष्टता पर करारा चोट किया । ह्रासोन्मुखी धार्मिक चेतना को पुनः व्यवस्थित कर सही दिशा देने

की कोशिश दोनों ने की है । विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास के प्रयत्न इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । तद्युगीन समाज में व्याप्त विभिन्न पंथ-उपपंथ, पूजा-उपासना, बाह्याडम्बर, कोरे शास्त्रज्ञान की निरर्थकता, जन्म के आधार पर श्रेष्ठता आदि को त्यागने एवं कर्तव्यनिष्ठा, आत्मा-परमात्मा की एकता, योगमार्ग की प्रासंगिकता आदि की बातें कहीं। धार्मिक चेतना के विकास परिष्कार के लिए गुरू-कृपा, संत से प्रेम, सत्संगति, नाम स्मरण आदि को दोनों ने महत्त्वपूर्ण माना । आचरण की पवित्रता पर समान रूप में दोनों ने बल दिया । दोनों ने 'श्रुतिसम्मत हरि भक्ति पथ' के लिए नैतिक आधार को सर्वाधिक महत्त्व दिया है, जो उनके धार्मिक विचारधाराओं का मूलादर्श है । दोनों पांथिकता के पक्ष में नहीं थे । उनके विचारों में किसी पंथ विशेष की झलक दिखाई नहीं पड़ती है । विष्णुदास ने राम और कृष्ण दोनों की भक्ति के गीत गाये हैं, पर तुलसीदास की तुलना में वे संख्या और महत्त्व की दृष्टि से कम हैं । विष्णुदास को कभी किसी भी वैष्णव पंथ से जोड़ा नहीं गया, न उन्होंने इस बारे में किसी प्रकार का संकेत ही किया है । उन्होंने 'रामायन कथा' में जिस राम को जनता का ईश्वर बनाया, बाद में तुलसीदास ने उन्हें 'रामचरितमानस' के माध्यम से घर-घर तक पहुँचाया । तुलसीदास को न तो रामानंदी, न वैरागी अथवा किसी अन्य वैष्णव पंथ का अनुगामी माना जाता है , तब भी उनका 'रामचरितमानस' सभी वैष्णव पंथों में समान भाव से पढ़ा जाता है । उसे सर्वत्र समान आदरभाव से देखा जाता है । वस्तुतः धार्मिक विचारों की दृष्टि से विष्णुदास और तुलसीदास में मूलतः समानता होते हुए भी तुलसीदास की विशिष्टता इसमें निहित है कि उन्होंने प्रत्येक बिन्दु पर अधिक विस्तार से विचार किया है। दोनों के आदर्श प्रायः एक समान ही हैं । दोनों की सार्थकता यह भी है कि उनके व्यक्तित्व किसी प्रदेश से मुद्रांकित नहीं है । दोनों के भक्तिमूलक सौहार्द्र रूप ने भारत में राष्ट्रीय जागरण एवं मानव एकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । राष्ट्रीय एकता और आवश्यकता दोनों उनकी भक्त दृष्टि के पूरक हैं ।

विष्णुदास और तुलसीदास की सामाजिक विचारधाराओं पर युगीन परिस्थितियों से अधिक धार्मिक और पारम्परीण पुराण कथाओं का प्रभाव है । उनकी रचनाओं में सामाजिक मान्यताएँ दो रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं -- यथार्थ रूप में और आदर्श रूप में । यथार्थ रूप में दोनों ह्रासोन्मुखी सामाजिक व्यवस्था का अंकन करते हैं, जिसे वे कलियुग के प्रभाव के रूप में देखते हैं । वर्ण और आश्रम पर आधारित प्राचीन सामाजिक व्यवस्था सब प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है । दोनों कवि रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति भी समान रूप में चिन्तित दिखायी पड़ते हैं । धार्मिक और नैतिक दृष्टि से खोखले बने पतनोन्मुखी समाज को धर्मप्राण, निष्ठावान और सब प्रकार से उन्नत बनाने के लिए दोनों ने प्रायः समान प्रकार के उपाय सुझाये । दोनों की चेष्टा आदर्श समाज की स्थापना करना है। दोनों ने आदर्श समाज के लिए जनता की आर्थिक समृद्धि पर आवश्यक बल दिया है। दोनों ने वैयक्तिक स्तर पर आय-व्यय के समुचित समायोजन अर्थात् आय के अनुरूप ही व्यय के सिद्धान्त को स्वीकार किया है । विष्णुदास और तुलसीदास सही अर्थों में न तो सामाजिक चिंतक थे और न अर्थशास्त्री । अतः उनकी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक दृष्टि भक्त कवि के दृष्टिकोण के अनुरूप है । इसके बावजूद यह मानना पड़ता है कि विष्णुदास की अपेक्षा तुलसीदास की सामाजिक आर्थिक विचारधारा अधिक व्यावहारिक है । आदर्श मानव और आदर्श समाज की कल्पना दोनों ने की एवं इस निमित्त दोनों ने अपने-अपने समयों की त्रासदी को दरकिनार करते हुए नवीन आदर्श और पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया । समन्वयी मार्ग द्वारा उन परम्परागत विचारों, मान्यताओं, सिद्धान्तों को संशोधित करने पर बल दिया । भक्ति मार्ग के रूप में समता-स्थापित करने का राजमार्ग दोनों ने स्वीकार किया । समाज में जो कतिपय कुरीतियाँ, भ्रान्तियाँ, आत्मविस्मृतियाँ आदि घर कर गयी थीं, उन्हें भक्ति-पथ से दूर करने के प्रयत्न तो दोनों ने किये ही, समाज को बाहरी और असंस्कृत आक्रमणों से

छुटकारा दिलाने के प्रयत्न भी किये ।

विष्णुदास और तुलसीदास भक्त कवि थे, राजनैतिक विचारक नहीं । विष्णुदास राजाश्रित कवि होने के बावजूद राजनीति से बहुत परिचित नहीं लगते । भक्त कवि होने के बावजूद तुलसीदास को राजनीति की समझ विष्णुदास से ज्यादा थी । तत्कालीन राजनीति को उन्होंने निकट से देखा-समझा और भोगा भी था । विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूँगरेन्द्र सिंह की राजनीति से परिचित थे और तुलसीदास तत्कालीन मुगल राजनीति के भोक्ता थे । उनकी खूबियों और खामियों को उन्होंने गंभीरता से परखा था । उन्होंने तद्युगीन कलयुगी राजनीति और शासन नीति को पुराण वर्णित कलियुग की स्थिति के अनुरूप ही समझा । रावण और दुर्योधन की शासन नीतियों का प्रक्षेपण कर तद्युगीन स्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया है । दोनों ने उस कलयुगी शासन नीति को समाप्त कर आदर्श और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने के प्रयत्न किये थे । उन्होंने प्रजारक्षक और प्रजारंजक राजनीति को आदर्श राजनीति माना । दोनों की दृष्टि में योग्य राजा साक्षात् ईश्वर अथवा ईश्वर का प्रतिनिधि परम वैष्णव ही हो सकता है । दोनों ने राम की शासन नीति को आदर्श नीति, उनके राज्य (रामराज्य) को आदर्श राज्य और सर्वोपरि आदर्श राजा राम को स्वीकारा है । दोनों की दृष्टि में रामराज्य ही जनकल्याणकारी राज्य है ।

विष्णुदास और तुलसीदास की रचनाओं में व्यक्त काव्य सम्बन्धी विचार परम्परागत काव्य सिद्धांतों को भक्तिकाव्य बनाने की संभावना में निहित हैं । दोनों रसवादी कवि हैं । वे शुद्ध काव्य नहीं, भक्ति काव्य की रचना कर रहे थे । उनके काव्यों की प्रवृत्तियों पर विचार करने से विदित होता है कि उनके सम्पूर्ण काव्य मानवीय भावभूमि पर आधारित हैं । उनके काव्य हैं भक्तिकाव्य, इसके बावजूद सम्पूर्ण मानवता के उत्थान में लिखे गये हैं । कविता का केन्द्र बिन्दु भक्ति के माध्यम से मानव और मानवता को सही दिशा देना है । उनकी दृष्टि में काव्य का तात्पर्य ईश्वर के नाम, गुण, यश, चरित्र आदि

का वर्णन या कीर्तन करना है । कवि का अर्थ उनके यहाँ ईश्वर का गुणगायक अर्थात् भक्त है । दोनों ने काव्य के प्रयोजन रूप में पुण्य की प्राप्ति, पाप का नाश, भक्ति में प्रवृत्ति मोक्ष लाभ आदि को स्वीकार किया है । काव्य-हेतु अथवा काव्य स्वरूप की प्रेरक शक्ति के रूप में दोनों कवियों को भगवत्कृपा, गुरुकृपा एवं भक्तिकाव्य और भक्तिशास्त्र आदि का अध्ययन मान्य है । काव्यरूपों के सम्बन्धों में उनमें विचारों का प्रायः अभाव है, पर उनके द्वारा प्रयुक्त काव्यरूप पारम्परीण काव्यरूपों से किंचित नवीन अवश्य हैं ।

माना जाता है कि काल की कठोर आवश्यकताएँ महापुरुषों, महात्माओं, महान कवियों को जन्म देती हैं । विष्णुदास और तुलसीदास दोनों वैसे ही महापुरुष, महात्मा, वैष्णव भक्त और महान कवि थे । आज का भारतीय जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है उसमें भय, आतंक, त्रासदी, लुंठन, बैर-भाव, साम्प्रदायिकता आदि विद्रूपताओं का सामना करने वाला, एक ही देश का नागरिक होते हुए भी एक प्रदेश का व्यक्ति दूसरे प्रदेश के व्यक्ति के साथ नफरत करता हुआ दिखायी पड़ता है । इन सबके निषेध अथवा इनके परिष्करण में विष्णुदास और तुलसीदास के काव्य आज भी उतने ही प्रासंगिक बने हैं, जितने प्रासंगिक तब थे । सांसारिकता को नकारने के बावजूद दोनों ने सामाजिकता को पूरा महत्त्व दिया । प्रादेशिक संकीर्णता से उनके काव्य अछूत और पूरी तरह राष्ट्रीय हैं । वे आज भी सर्वभारतीयता के संदेशवाहक बने हैं । यह उनके काव्यों की विशेष प्रासंगिकता ही मानी जायेगी ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

अ. आधार ग्रंथ :

महाभारत (पाण्डव चरित), विष्णुदास, साहित्य भवन, प्रा.लि., इलाहाबाद, 1972 ई.
रामायन कथा, विष्णुदास, साहित्य भवन, प्रा.लि., इलाहाबाद, 1972 ई.
रूक्मिणी मंगल, विष्णुदास, साहित्य भवन, प्रा.लि., इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
सनेहलीला, विष्णुदास, साहित्य भवन, प्रा.लि., इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
रामलला नहछू, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
रामाज्ञा प्रश्न, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
जानकी मंगल, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
पार्वती मंगल, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
गीतावली, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
कृष्ण गीतावली, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
विनय-पत्रिका, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
बरवै रामायण, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
कवितावली, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
हनुमान बाहुक, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
वैराग्य संदीपनी, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण

ब. सहायक ग्रंथ

क. हिन्दी ग्रंथ :

1. असम प्रांतीय राम साहित्य, कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', मेरठ, 1968 ई.
2. अलंकार-विमर्श, कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', सागर, 1968 ई.
3. कविवर विष्णुदास और उनकी रामायन कथा, बलभद्र तिवारी, साहित्य भवन, प्रा. लि., इलाहाबाद, 1976 ई.
4. क्रांतिकारी कवि तुलसी, नारायण सिंह, साहित्य भवन, प्रा. लि., इलाहाबाद, 1974 ई.
5. काव्य के विभिन्न अंग, कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', सागर, 1968 ई.
6. कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, शिव प्रसाद सिंह, इलाहाबाद, 1955 ई.
7. कृतिवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, रमानाथ त्रिपाठी, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1972 ई.

8. गोस्वामी तुलसीदास, सीताराम चतुर्वेदी, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, 1956 ई.
9. गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल, अनु प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2006ई.
10. गोस्वामी तुलसीदास, बाबू शिवनन्दन सहाय, सं. नलिन विलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1961 ई.
11. गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में नारी और मानव जीवन में उसका महत्त्व, श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1966 ई.
12. गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुन्दर दास एवं पीताम्बर बडथ्वाल, इलाहाबाद, 1931ई.
13. गोस्वामी तुलसीदास - व्यक्तित्व : दर्शन : साहित्य - रामदत्त भारद्वाज, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1962 ई.
14. गोसाँई तुलसीदास - विश्वनाथ प्रसाद, वाराणसी, 2022 वि.
15. ग्वालियरी भाषा, वासुदेव शरण अग्रवाल, ग्वालियर, 1959 ई.
16. ग्वालियर राज्य का इतिहास, ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा, ग्वालियर, 1914 ई.
17. तुलसीदास, माता प्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 ई.
18. तुलसी के रचना सामर्थ्य का विवेचन, योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गाँधी मार्ग, 1994 ई.
19. तुलसीदास चिंतन और कला, इंद्रनाथ मदान, हिन्दी प्रकाशन, दिल्ली, 1965 ई.
20. तुलसी-दर्शन, बलदेव प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1938 ई.
21. तुलसी-दर्शन मीमांसा, उदयभानु सिंह, पुस्तक मंदिर, लखनऊ, 1962 ई.
22. तुलसी और उनका युग, राजपति दीक्षित, ज्ञानमंडल, काशी, सं. 1938 वि.
23. तुलसीपूर्व राम साहित्य, अमरपाल सिंह, रचना प्रकाशन, सं. 1948 वि.
24. तुलसी की विचारधारा, नारायण प्रसाद वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1970 ई.
25. तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, राजाराम रस्तोगी, साहित्य भवन, कानपुर, 1963 ई.
26. तुलसीदास विभिन्न दृष्टियों के परिप्रेक्ष्य में, सं. गोपीनाथ तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973 ई.
27. तुलसी और उनका साहित्य, विमल कुमार जैन, हिन्दी प्रकाशन, दिल्ली, 1957 ई.
28. तुलसी काव्य-दर्शन, रामलाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1972 ई.
29. तुलसी विविध संदर्भ में, बच्चन देव कुमार, आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 1977ई.
30. तुलसी दास - विचार और विवेचन, सं. रघुनन्दन मिश्र, मिलन मंदिर प्रकाशन, 1974 ई.

31. तुलसी संदर्भ और दृष्टि, सं. केशव प्रसाद सिंह और वासुदेव सिंह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 1974 ई.
32. तुलसी साहित्य की लोकतात्विक संरचना, गया सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1973 ई.
33. तुलसी साहित्य की भूमिका, भटनागर रामरत्न, प्र. राम नारायण लाल, इलाहाबाद, 1996 ई.
34. तुलसी रसायन (षष्टम् संस्करण), भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1968 ई.
35. तुलसी के हिय हेरि, विष्णुकांत शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003 ई.
36. तुलसीदास और उनके ग्रंथ, भगीरथ प्रसाद दीक्षित, अशोक प्रकाशन, लखनऊ, 1955 ई.
37. तुलसी के भक्तयात्मकगीत, बचन देव कुमार, साहित्य संसार, पटना, 1969 ई.
38. तुलसी काव्य मीमांसा, उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966 ई.
39. तुलसी आधुनिक वातायन से, रमेश कुंतल मेघ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1967 ई.
40. तुलसी की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन, श्रीधर सिंह, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, 1968 ई.
41. तुलसी नव मूल्यांकन, रामरतन भटनागर, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971 ई.
42. तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान, चन्द्रभान रावत, जवाहर पुस्तकालय, असमुण्डा बाजार, मथुरा, 1971 ई.
43. तुलसी का घरबार - महादेव पाण्डेय, बम्बई, वि. 1994
44. तुलसी काव्य चिन्तन - अम्बा प्रसाद 'सुमन', ग्रंथायन, अलीगढ़, 1982 ई.
45. बुन्देल वैभव - गौरी शंकर द्विवेदी, ग्वालियर, 1970 वि.
46. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, एम हिरियन्ना, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1 बी. नताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 1965 ई.
47. भारतीय दर्शन : सरल परिचय, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी. नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली, 1995 ई.
48. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा ओरियल्टालिया, वाराणसी, प्रथम संस्करण
49. भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, 2000 ई.
50. मानस एवम् कंदली रामायण का कथा शिल्प, दिनेश कुमार चौबे, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ई.
51. मानस का सामाजिक दर्शन, बैजनाथ सिंह, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1996 ई.
52. महाभारत (छह खण्ड) - गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण

53. महाकवि तुलसीदास और युग-संदर्भ - भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन, प्रा. लि. इलाहाबाद, 1980 ई.
54. युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि, काका कालेलकर, वाणी प्रकाशन, 1970 ई.
55. रामकथा - कामिल बुल्के : प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद्, सं. 2007 वि.
56. रामकथा और तुलसी, देवदत्त शर्मा, निर्माण प्रकाशन, दिल्ली, 1990 ई.
57. राम काव्यधारा-अनुसंधान और चिन्तन, भगवती प्रसाद सिंह, इलाहाबाद, 1939 ई.
58. रामकथा, गोपाल उपाध्याय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002 ई.
59. रामकाव्य की भूमिका, जगदीश प्रसाद शर्मा, हैदराबाद, 1965 ई.
60. रामकथा का तात्विक स्वरूप : एक तात्विक विवेचन, अर्चना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
61. रामभक्ति शाखा, रामनिरंजन पाण्डेय, साहित्य प्रकाशन, हैदराबाद, 1960 ई.
62. रामचरितमानस और पूर्वांचलीय रामकाव्य, रमानाथ त्रिपाठी, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1972 ई.
63. लोककवि तुलसी, सरला शुक्ल, हिमांशु प्रकाशन, 53, निराला नगर, लखनऊ, 1977 ई.
64. लोकदेवता श्री हनुमान, कृष्णनारायण प्रसाद मागध, टंकित प्रति
65. शंकरदेव और तुलसीदास की वैचारिक भावभूमि, भूपेन्द्र राय चौधरी, भारतीय संस्कृति परिषद्, गुवाहाटी, 1977 ई.
66. समाज और समाज दर्शन (भारतीय दृष्टिकोण), चमनलाल अग्रवाल, उषा गुप्त, प्र. अग्रवाल प्रकाशन, बी. 255 - ए, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली, 1985 ई.
67. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, शिव प्रसाद सिंह, वाराणसी, 1958 ई.
68. साहित्य विधाएँ, डॉ. शशिभूषण सिंघल, आधुनिक प्रकाशन, दिल्ली, 2002 ई.
69. हिन्दी और असमिया की प्रथम रामायन - दिनेश कुमार चौबे, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 2001 ई.
70. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2002 वि.
71. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेन्द्र, नई दिल्ली, 1978 ई.
72. हिन्दी साहित्य युग और धारा, कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', गुवाहाटी, 1974 ई.
73. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (भाग 1 एवं 2), गणपति चन्द्र गुप्त, चण्डीगढ़, 1965 ई.
74. हिन्दी रामकाव्य, कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', टंकित प्रति
75. हिन्दी को मराठी संतों की देन, विनय मोहन शर्मा, पटना, 1957 ई.
76. हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्वालियर का योगदान, राधेश्याम द्विवेदी, ग्वालियर, सं. 2115 वि.

77. हिन्दी रामकाव्य और विष्णुदास की रामायन कथा, मोहन सिंह तोमर, नई दिल्ली, 1979 ई.
78. हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ, त्रिवेणी प्रसाद सिंह, पटना, 1970 ई.
79. हिन्दू देवताओं के विविध रूप और वाहन, बनारसी लाल पाण्डेय 'आर्य', वाराणसी, सं. 2037 वि.

ख. संस्कृत ग्रंथ :

1. अध्यात्म रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित), श्री मुनि लाल, गीता प्रेस, गोरखपुर सं. 2007 वि.
2. काव्यनुशासन, हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस बम्बई
3. काव्यमीमांसा, राजशेखर, जयकृष्ण दास, हरिकृष्णादास गुपत, बनारस, 1931 ई.
4. काव्य प्रकाश, मम्मट, आनंद आश्रम प्रेस, पूना, 1922 ई. प्र. सं. गीता प्रेस
5. गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
6. नारद भक्तिसूत्र, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
7. मनुस्मृति, मनु, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1946 ई.
8. महाभारत (शांतिपर्व), सं. पं. एस. पंडी, प्रथम संस्करण
9. विष्णुपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
10. विशिष्टाद्वैत कोश, श्री रामानुज,
11. शांडिल्य भक्तिसूत्र, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
12. साहित्य-दर्पण, शालीग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास
13. श्रीमद्भागवत, गीता प्रेस, गोरखपुर
14. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण, अनु. श्री नारायण दत्त, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2014 वि. (हिन्दी भाषान्तर सहित भाग - 2)

ग. अंग्रेजी ग्रंथ :

1. A History of Sanskrit Literature, S. N. Das gupta and s.K. De, Unversity of Calcutta, Calcutta, 1947 A.D.
2. A New Approach to Ramayana, N. R. Navlekar, Jabalpur[1947 A.D.
3. Encyclopedia of Religion and Ethic's, Hastings (Edited) T & T Jarke, Adenbra, 1972 A.D.
4. Hindu Civiligation, Radha Kumud Mukerjee, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1977 A.D.
5. Lecture on the Ramayana, V. S. Srinivas Shastri, Madras Sanskrit Academy, Madras, 1984 A.D.

6. Tulsi Das, Devendra Singh, National Book Trust, Delhi, 1971 A.D.
7. Tulsi Das : His Mind and Art, Edited Dr. Nagendra, Pustik Mandir, Meerut, 1st Edition,
8. Theology of Tulsi Das, J. N. Carpantor D. D. ; Christian Literature, Madras, 1986 A.D.

च. कोश :

1. अमरकोश, संपा. हरगोविन्द्र शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी, 1970 ई.
2. अवधीकोश, रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'
3. भारतीय साहित्य कोश, डॉ. नगेन्द्र
4. मानस कोश, अमीर सिंह
5. मानस शब्द सागर, बद्रीनाथ अग्रवाल
6. लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, संपा. रामचन्द्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996 ई.
7. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराज आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1993ई.
8. हिन्दी शब्द सागर, संपा. रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं 2015 वि.
9. हिन्दी साहित्य कोश (भाग - 1 एवं 2), संपा. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लि., वाराणसी, 1985 ई.
10. बृहत् हिन्दी कोश, कलिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लि., वाराणसी, प्रथम संस्करण

घ. पत्र-पत्रिकाएँ :

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (विभिन्न अंक), काशी
2. मानस संगम वार्षिक (विभिन्न अंक), कानपुर
3. वर्तमान साहित्य, रामघाट रोड, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
4. वाक् (प्रवेशांक) सुदीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
5. सम्मेलन पत्रिका (विभिन्न अंक), प्रयाग
6. साहित्य अमृत, सं. पं. विद्यानिवास मिश्र, नई दिल्ली
7. हिन्दी अनुशीलन (विभिन्न अंक), भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग
8. राष्ट्र सेवक (विभिन्न अंक), असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

NEHU LIBRARY 103957
Acc No.
11-5-10

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : बिक्रम थापा

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी), बी. एड.

विभाग : हिन्दी

शोध-प्रबंध का शीर्षक : विष्णुदास और गोस्वामी तुलसीदास की विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

प्रवेश शुल्क का भुगतान की तिथि :- 01.09.2003

शोध प्रस्ताव **की संस्तुति** :

(i) बी. पी. जी. एस : 08.10.2003

(ii) स्कूल बोर्ड पंजीयन संख्या एवं तिथि : 780 दिनांक : 16.10.2003

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग